Published by
The Honorary Secretary
Nagari Pracharini Sabha
Benares City.

Printed by
N R Soman,
Shri Lakshmi Narain Press,
Benares City

परिचय

जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रांत में खेतड़ी राज्य है। वहाँ के राजा श्रीअजीतसिंहजी बहादुर बडे यशस्वी और विद्याप्रेमी हुए। गणित शास्त्र में उनकी अद्भुत गति थी। विज्ञान उन्हे बहुत प्रिय था। राजनीति में वह दक्ष और गुणग्राहिता में अद्वितीय थे। दर्शन और अध्यात्म की रुचि उन्हें इतनी थी कि विलायत जाने के पहले और पीछे स्वामी विवेकानंद उनके यहाँ महीनों रहे। स्वामीजी से घंटों शास्त्र-चर्चा हुआ करती। राजपूताने में प्रसिद्ध है कि जयपुर के पुण्यश्लोक महाराज श्रीरामसिंहजी को छोड़कर ऐसी सर्वतोमुख प्रतिभा राजा श्रीअजीतसिंहजी ही में दिखाई दी।

राजा श्रीअजीतसिंहजी की रानी आउआ (मारवाड़) चाँपावतजी के गर्भ से तीन संतति हुई—दो कन्या, एक पुत्र। ज्येष्ठ कन्या श्रीमती सूरजकुँवर थीं जिनका विवाह शाहपुरा के राजाधिराज सर श्री नाहरसिंहजी के ज्येष्ठ चिरंजीव और युवराज राजकुमार श्रीउमेदसिंहजी से हुआ। छोटी कन्या श्रीमती चाँदकुँवर का विवाह प्रतापगढ़ के महारावल साहब के युवराज महाराजकुमार श्रीमानसिंहजी से हुआ। तीसरी संतान जयसिंहजी थे जो राजा श्रीअजीतसिंहजी और रानी चाँपावतजी के स्वर्गवास के पीछे खेतड़ी के राजा हुए।

इन तीनों के शुभचिंतकों के लिये तीनों की स्मृति, संचित कर्मों के परिणाम से, दुःखमय हुई। जयसिंहजी का स्वर्गवास सत्रह वर्ष की अवस्था में हुआ। सारी प्रजा, सब शुभचिंतक, संबंधी, मित्र और गुरुजनों का हृदय आज भी उस आँच से जल ही रहा है। अश्वत्थामा के व्रण की तरह यह घाव कभी भरने का नहीं। ऐसे आशामय जीवन का ऐसा निराशात्मक परिणाम कदाचित् ही हुआ हो। श्री सूरजकुँवर बाई जी को एक मात्र भाई के वियोग की ऐसी ठेस लगी कि दो ही तीन वर्ष में उनका शरीरांत हुआ। श्रीचाँदकुँवर बाईजी को वैधव्य की विषम यातना भोगनी पड़ी और भ्रातृवियोग और पति-वियोग दोनों का

असह्य दुःख वे झेल रही हैं। उनके एकमात्र चिरंजीव प्रतापगढ़ के कुँवर श्रीरामसिंहजी से मातामह राजा श्रीअजीतसिंहजी का कुल प्रजावान है।

श्रीमती सूर्यकुमारीजी के कोई संतति जीवित न रही। उनके बहुत आग्रह करने पर भी राजकुमार श्रीउमेदसिंहजी ने उनके जीवन-काल में दूसरा विवाह नहीं किया। किंतु उनके वियोग के पीछे, उनके आज्ञानुसार, कृष्णगढ़ में विवाह किया जिसमें उनके चिरंजीव वंशांकुर विद्यमान हैं।

श्रीमती सूर्यकुमारीजी बहुत शिक्षिता थीं। उनका अध्ययन बहुत विस्तृत था। उनका हिंदी का पुस्तकालय परिपूर्ण था। हिंदी इतनी अच्छी लिखती थीं और अक्षर इतने सुंदर होते थे कि देखनेवाले चमत्कृत रह जाते। स्वर्गवास के कुछ समय के पूर्व श्रीमती ने कहा था कि स्वामी विवेकानंदजी के सब ग्रंथों, व्याख्यानों और लेखों का प्रामाणिक हिंदी अनुवाद मैं छपवाऊँगी। बाल्यकाल से ही स्वामीजी के लेखों और अध्यात्म विशेषतः अद्वैत वेदांत की ओर श्रीमती की रुचि थी। श्रीमती के निर्देशानुसार इसका कार्यक्रम बाँधा गया। साथ ही श्रीमती ने यह इच्छा प्रकट की कि इस संबंध में हिंदी में उत्तमोत्तम ग्रंथों के प्रकाशन के लिये एक अक्षय निधि की व्यवस्था का भी सूत्रपात हो जाय। इसका व्यवस्थापत्र बनते बनते श्रीमती का स्वर्गवास हो गया।

राजकुमार उमेदसिंहजी ने श्रीमती की अंतिम कामना के अनुसार बीस हजार रुपए देकर काशी नागरीप्रचारिणी सभा के द्वारा इस ग्रंथमाला के प्रकाशन की व्यवस्था की है। स्वामी विवेकानंदजी के यावत् निबंधों के अतिरिक्त और भी उत्तमोत्तम ग्रंथ इस ग्रंथमाला में छापे जायँगे और अल्प मूल्य पर सर्वसाधारण के लिये सुलभ होंगे। ग्रंथमाला की बिक्री की आय इसी में लगाई जायगी। यों श्रीमती सूर्यकुमारी तथा श्रीमान् उमेदसिंहजी के पुण्य तथा यश की निरंतर वृद्धि होगी और हिंदी भाषा का अभ्युदय तथा उसके पाठकों को ज्ञान-लाभ होगा।

विषय-सूची

अकबरी दरबार

—०—

तीसरा भाग

शेख अब्बुलफजल

बादशाह इस्लाम शाह के शासन-काल मे ६ मुहर्रम सन् ९५८ हि० का दिन था कि शेख मुबारक के घर मे मुबारक-सलामत होने लगा—उन्हें चारो ओर से बधाइयाँ मिलने लगी। साहित्य ने आँख दिखाई कि चुप रहो, देखो साहित्य और बुद्धि-मत्ता का पुतला गर्भ के परदे मे से निकल कर माता की गोद में आ लेटा। पिता ने अपने गुरु के नाम पर पुत्र का नाम अब्बुलफजल रखा। पर गुण और योग्यता मे वह उनसे भी कई आसमान और ऊपर चढ़ गया। और वैभव तथा प्रभुत्व का तो कहना ही क्या है। शेख मुबारक का हाल तो पाठक पहले पढ़ ही चुके हैं। इसी से समझ लें कि कैसे-कैसे कष्टो और आपत्तियो मे उनका पालन-पोषण हुआ होगा। उनका समस्त विद्यार्थी-जीवन दरिद्रता के कष्ट, चित्त की उद्विग्नता और शत्रुओं के हाथो कष्ट सहते सहते ही बीता। पर वे उपाय-रहित आघात

नित्य नई शिक्षा और अभ्यास के पाठ थे। जब इतना धैर्य रखते और सहन करते है और इस उत्तमता से मार्ग चलते हैं, तब अकबर सरीखे सम्राट् के मन्त्री के पद तक पहुँचते है। उन्होंने मुबारक पिता की गोद मे पलकर जवानी का रग निकाला और उन्ही के दीपक से जला कर अपनी बुद्धि का दीपक प्रज्व-लित किया। उन दिनो मखदूम और सदर आदि इतने अधिक अधिकार रखते थे कि उन्ही की बादशाही क्या बल्कि यो कहना चाहिए कि खुदाई थी। ज्यो-ज्यो उनकी अत्याचारपूर्ण आज्ञाएँ और फतवे प्रचलित होते थे, त्यो-त्यो इन के विद्याध्ययन की रुचि और शौक बढता जाता था। प्रताप बलपूर्वक उछला पडता था, वर्तमान काल भविष्य को खींचता था और कहता था कि शत्रुओ के नाश मे क्यो विलम्ब कर रहे हो।

अब्बुलफजल ने अकबरनामे का तीसरा खंड लिख कर उसकी समाप्ति पर अपने आरम्भिक विद्याध्ययन का विवरण कुछ अधिक विस्तार से लिखा है। यद्यपि उसमे की बहुत सी बाते व्यर्थ जान पडेगी, तथापि ऐसे लोगो की प्रत्येक बात सुनने योग्य हुआ करती है। इस घटना-लेखक के हाथ चूम लीजिए, क्योकि इसने जिस प्रकार और सब लोगो के हाल खुल्लम-खुल्ला लिखे है, उसी प्रकार अपना अच्छा और बुरा हाल भी साफ-साफ दिखलाया है। मनुष्य फिर भी मनुष्य ही है। भिन्न-भिन्न समयो मे उसकी भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होती है। परन्तु सज्जन लोग उससे भी सज्जनता की ही शिक्षा लेते है। मनुष्य के रूप मे रहनेवाले राक्षस या दुर्जन लोग फिसलते है और दलदल मे फँस कर रह जाते है।

आरम्भिक विवरण

वर्ष सवा वर्ष की अवस्था मे ही ईश्वर ने ऐसी कृपा की कि साफ बातें करने लगा। अभी पॉच ही वर्ष का था कि प्रकृति ने योग्यता की खिड़की खोल दी। ऐसी ऐसी बातें समझ मे आने लगी जो दूसरों को नसीब नहीं होतीं। पन्द्रह वर्ष की अवस्था मे अपने पूज्य पिता के बुद्धि-कोष का कोषाध्यक्ष और अर्थ रूपी रत्नो का रक्षक हो गया और भंडार पर पैर जमाकर बैठ गया।

पढ़ाई-लिखाई से वह सदा उदासीन रहता था और दुनियॉ के रंग-ढंग से उसकी तबीयत कोसो भागती थी। प्राय. वह कुछ समझता ही न था। पिता अपने ढब से बुद्धि और ज्ञान के मन्त्र फूँकते थे। प्रत्येक विषय का एक निबन्ध लिख कर याद कराते थे। यद्यपि ज्ञान बढ़ता जाता था, तथापि विद्या का कोई आशय मन मे न बैठता था। कभी तो कुछ भी समझ मे न आता था और कभी सन्देह मार्ग रोकते थे। कहीं जबान साथ नहीं देती थी और कहीं रुकाव हकला कर देता था। यद्यपि भाषण करने मे भी पहलवान था, तथापि अपने मन के भाव प्रकट नहीं कर सकता था। लोगों के सामने ऑसू निकल पड़ते थे। स्वयं ही अपने आपको बुरा-भला कहा करता था। इसी ग्रंथ मे एक और स्थान पर लिखते हैं—जो लोग विद्वान् कहलाते हैं, उन्हे प्राय अन्यायी पाया; इसलिये एकान्त मे रहने को जी चाहता था। दिन के समय पाठशाला मे विद्या का ज्ञान फैलाता और रात को उजाड़ स्थानो मे चला जाता। वहाँ

निराशा की गलियों के पागलों को ढूँढना और उन दरिद्र कोपाध्यक्षों से साहस की भिक्षा मांगता।"

इसी बीच में एक विद्यार्थी से प्रेम हो गया। कुछ समय तक ध्यान उसी ओर लगा रहा। अभी अधिक दिन नहीं बीते थे कि उसके साथ बातें करने और बैठने के लिये पाठशाला की ओर मन खिंचने लगा। उचाट मन और उखड़ी हुई तबीयत उधर झुक पड़ी। ईश्वर की माया देखो, मुझ को उड़ा दिया और मेरे स्थान पर किसी दूसरे को ला रक्खा। मानो मैं न रहा. बिलकुल बदल गया। लिखा है—

در دیر شدم ماحضرے آوردند -
یعنی ز شراب ساغرے آوردند -
کیفیت او مرا ز خود بیخود کرد -
بردند مرا و دیگرے آوردند -

अर्थात् मैं मन्दिर में था, खाद्य पदार्थ मेरे सामने ले आए. मानो प्याले में भर कर शराब ले आए। उसके आनन्द ने मुझे आपे से बाहर कर दिया। मुझे ले गए और दूसरे को मेरी जगह ले आए।

ज्ञान के तत्वों ने चाँदनी खिला दी। जो पुस्तक देखी भी न थी, उसका उतना अधिक ज्ञान हो गया, जितना पढ़ने में भी न होता। यद्यपि यह स्वयं ईश्वर की देन थी, यह उत्कृष्ट पदार्थ स्वयं पवित्र आकाश से मेरे लिये उतरा था, तथापि पूज्य पिता जी ने बड़ी सहायता की। उन्होंने शिक्षा का क्रम टूटने न दिया। मन के आकर्षण का सब से बड़ा कारण वही बात

हुई। दस वरस तक आप कविताएँ करता था और दूसरों को सुनाता था। दिन और रात की भी खबर न होती थी। पता ही न लगता था कि भूखा हूँ या पेट भरा है। चाहे एकान्त मे रहता था और चाहे समाज मे रहता था, चाहे प्रसन्नता होती थी और चाहे शोक होता था, पर ईश्वरीय सम्बन्ध या अध्यात्म और विद्या तथा ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही न था। इन्द्रियो के वशीभूत मित्र चकित होते थे, क्योकि दो-दो तीन-तीन दिन तक भोजन नहीं मिलता था। पर वह बुद्धि का भूखा था, उसे कुछ भी परवाह न होती थी। उन मित्रों का विश्वास बढ़ता जाता था कि ये पहुँचे हुए महात्मा हो गए। मै उत्तर देता था कि तुम्हे अभ्यास के कारण ही आश्चर्य होता है। और नहीं तो देखो कि जब रोगी की प्रकृति रोग का सामना करती है, तब वह भोजन की ओर से किस प्रकार उदासीन हो जाता है। उस पर किसी को आश्चर्य नहीं होता। इसी प्रकार यदि मन अन्दर से किसी काम मे लग जाय और सब कुछ भुला दे, तो इसमे आश्चर्य ही क्या है।

बहुत से ग्रन्थ तो यों ही कहते-सुनते कंठाग्र हो गए। विद्याओं के बड़े बडे आशय, जो पुराने पृष्ठो मे पडे पड़े घिस-पिस गए थे, मन-रूपी पृष्ठ पर प्रकाशमान होने लगे। अभी दिल्लगी ने वह परदा भी न खोला था और बाल्यावस्था के निम्न स्थान से बुद्धि के उच्च स्थान पर भी न चढ़ा था कि उसी समय से बड़े बड़े धर्माचार्यों के सम्बन्ध मे आपत्तियाँ सूझने लगीं। लोग मेरी बाल्यावस्था को देखते हुए मानते नहीं थे, मै झुँझलाता था। अनुभव न था। मन में आवेश आता था, पर उसे पी जाता

निराशा की गलियो के पागलो को ढूँढता और उन दरिद्र कोपा-ध्यक्षो से साहस की भिक्षा माँगता ।"

इसी बीच मे एक विद्यार्थी से प्रेम हो गया । कुछ समय तक ध्यान उसी ओर लगा रहा । अभी अधिक दिन नहीं बीते थे कि उसके साथ बाते करने और बैठने के लिये पाठशाला की ओर मन खिचने लगा । उचाट मन और उखड़ी हुई तबीयत उधर झुक पडी । ईश्वर की माया देखो, मुझ को उडा दिया और मेरे स्थान पर किसी दूसरे को ला रखा । मानो मै न रहा. बिलकुल बदल गया । लिखा है—

در دیر بدم ماحضرے آوردند -
یعنی شراب ساغرے آوردند -
کیفیت او مرا زخود بیخود کرد -
بردند مرا و دیگرے آوردند -

अर्थात् मै मन्दिर मे था, खाद्य पदार्थ मेरे सामने ले आए, मानो प्याले मे भर कर शराब ले आए । उसके आनन्द ने मुझे आपे से बाहर कर दिया । मुझे ले गए और दूसरे को मेरी जगह ले आए ।

ज्ञान के तत्वो ने चाँदनी खिला दी । जो पुस्तक देखी भी न थी, उसका उतना अधिक ज्ञान हो गया, जितना पढने से भी न होता । यद्यपि यह स्वय ईश्वर की देन थी, यह उत्कृष्ट पदार्थ स्वय पवित्र आकाश से मेरे लिये उतरा था, तथापि पूज्य पिता जी ने बडी सहायता की । उन्होने शिक्षा का क्रम टूटने न दिया । मन के आकर्पण का सब मे बडा कारण वही बात

हुई। दस बरस तक आप कविताएँ करता था और दूसरों को सुनाता था। दिन और रात की भी खबर न होती थी। पता ही न लगता था कि भूखा हूँ या पेट भरा है। चाहे एकान्त में रहता था और चाहे समाज में रहता था, चाहे प्रसन्नता होती थी और चाहे शोक होता था, पर ईश्वरीय सम्बन्ध या अध्यात्म और विद्या तथा ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही न था। इन्द्रियों के वशीभूत मित्र चकित होते थे, क्योंकि दो-दो तीन-तीन दिन तक भोजन नहीं मिलता था। पर वह बुद्धि का भूखा था, उसे कुछ भी परवाह न होती थी। उन मित्रो का विश्वास बढ़ता जाता था कि ये पहुँचे हुए महात्मा हो गए। मैं उत्तर देता था कि तुम्हे अभ्यास के कारण ही आश्चर्य होता है। और नहीं तो देखो कि जब रोगी की प्रकृति रोग का सामना करती है, तब वह भोजन की ओर से किस प्रकार उदासीन हो जाता है। उस पर किसी को आश्चर्य नहीं होता। इसी प्रकार यदि मन अन्दर से किसी काम मे लग जाय और सब कुछ भुला दे, तो उसमे आश्चर्य ही क्या है।

बहुत से ग्रन्थ तो यों ही कहते-सुनते कंठाग्र हो गए। विद्याओं के बडे बडे आशय, जो पुराने पृष्ठों मे पडे पड़े घिस-पिस गए थे, मन-रूपी पृष्ठ पर प्रकाशमान होने लगे। अभी दिल्लगी ने वह परदा भी न खोला था और बाल्यावस्था के निम्न स्थान से बुद्धि के उच्च स्थान पर भी न चढ़ा था कि उसी समय से बडे बड़े धर्माचार्यों के सम्बन्ध मे आपत्तियाँ सूझने लगीं। लोग मेरी बाल्यावस्था को देखते हुए मानते नहीं थे, मैं झुँझलाता था। अनुभव न था। मन में आवेश आता था, पर उसे पी जाता

था। विद्यार्थी जीवन के आरम्भ मे मै मुल्ला सदरुद्दीन और मीर सैयद शरीफ पर जो आपत्तियाँ किया करता था, वे सब कुछ मित्र लिखते जाते थे। अचानक मुतव्वल नामक पुस्तक पर ख्वाजा अब्दुलकासिम की टीका सामने आई। उसमे वे सब आपत्तियाँ लिखी हुई मिली। सब लोग चकित रह गए। उन्होंने मेरी बातो से इन्कार करना छोड दिया और मुझे कुछ दूसरी ही दृष्टि से देखने लगे। अब वह खिडकी मिल गई जिससे प्रकाश आता था, और अध्यात्म का द्वार खुल गया।

आरम्भ मे जब मै विद्यार्थियो को पढाने लगा, तब अस्फाहानी टीका की एक प्रति कहीं से मिल गई, जिसके आधे से अधिक पृष्ठ दीमको ने खा डाले थे। लोग निराश हो गए कि यह निकम्मा है। मैने पहले उसके सडे-गले किनारे कतर कर उस पर पैवन्द लगाए। प्रभात मे प्रकाश और ज्ञान के समय बैठता विषय का आरम्भ और अन्त देखता, कुछ सोचता और उसका अभिप्राय स्पष्ट हो जाता। उसी के अनुसार मसौदा बनाकर वहाँ लिख देता और उसे स्पष्ट कर देता। उन्ही दिनो वह पूरी पुस्तक भी मिल गई। मिलान किया तो ३२ स्थानो मे भिन्न भिन्न शब्दो मे कुछ अन्तर था और तीन चार जगह प्राय ज्यो का त्यो था। सब लोग देखकर चकित हो गए। वह प्रेम की लगन जितनी ही बढती जाती थी, मेरे मन को प्रकाश भी उतना ही अधिक प्रकाशमान करता जाता था। बीस वर्ष की अवस्था मे स्वतन्त्रता का शुभ समाचार मिला, पर उससे भी मन भर गया। अब पहला पागलपन फिर आरम्भ हुआ। विद्याओ और गुणो की सजावट हो रही थी, यौवन का आवेश खूब बढ रहा था, उच्चा-

कांक्षाओ का पल्ला फैला हुआ था। ज्ञान और बुद्धिमत्ता का संसार-दर्शक दर्पण हाथ मे था। नए पागलपन का शोर कान मे पहुँचने लगा और हर काम से रुकने के लिये जोर करने लगा। उन्हीं दिनो ज्ञान-सम्पन्न बादशाह ने मुझे स्मरण करके एकान्त के कोने से घसीटा, आदि, आदि।

अब्बुलफजल ने अपने पिता के साथ साथ शत्रुओ के हाथों भी बड़े बड़े कष्ट सहे थे। उनका अन्तिम आक्रमण सबसे अधिक कठोर और भीषण था। उसका कुछ विवरण शेख मुबारक के प्रकरण मे दिया गया है। मुल्ला की दौड़ मसजिद तक। शेख मुबारक तो भाग्य मे बँधे हुए कष्ट भोगकर फिर अपनी मसजिद मे आ बैठे। उस ज्ञानी वृद्ध को कभी सरकारो और दरबारों का शौक नहीं हुआ। पर इन होनहार युवकों को प्रताप ने बैठने न दिया। उनके मन मे अपने गुणो के प्रकाश की कामना उत्पन्न हुई। और सच भी है, चन्द्रमा और सूर्य अपना प्रकाश क्योंकर समेट लें? लाल और पुखराज अपनी चमक-दमक किस तरह पी जायँ? इसलिये सन् ९७४ हि० मे शेख फैजी बादशाह के दरबार मे पहुँचे। सन् ९८१ हि० में अब्बुलफजल की अवस्था बीस वर्ष की थी, जब कि उन पर भी ईश्वर का अनुग्रह हुआ। अब देखना चाहिए कि उन्होने इस छोटी अवस्था मे इस ईश्वरीय देन को किस सुन्दरता के साथ सँभाला।

अब्बुलफजल अकबर के दरबार में आते हैं

अकबर के साम्राज्य का निरन्तर विस्तार होता जाता था और उस साम्राज्य के लिये समुचित व्यवस्था की आवश्यकता

थी। विशेषत इस कारण और भी अधिक आवश्यकता थी कि व्यवस्था करनेवाला पुरानी व्यवस्था को बदलना चाहता था और उसे अधिक विस्तृत करना चाहता था। वह देखता था कि केवल तलवार के बल पर राज्य का विस्तार करना ठीक नहीं है। बल्कि वह उन देशवासियों के साथ मिल कर साम्राज्य को दृढ करना चाहता था जो जाति, धर्म और रीति-रवाज सब बातों में विरुद्ध पड़ते थे। इसके अतिरिक्त तुर्क लोग भी थे, जो थे तो उसके स्वजातीय ही, पर जो संकुचित विचारवाले, कट्टर और इस काम के लिये अयोग्य थे। अकबर ने अपने बाप-दादा के प्रति उनकी जो बद-नीयती देखी थी, उसके कारण उसका मन उन लोगों की ओर से बहुत ही दुःखी और खिन्न था। दरबार में धार्मिक विद्वान् और पुराने विचारों के अमीर भरे हुए थे। नई बात तो दूर रही, यदि समय के उपयुक्त कोई साधारण परिवर्त्तन भी होता, तो जरा सी बात पर चमक उठते थे। उस दशा में वे लोग समझते थे कि हमारे अधिकार छिन रहे हैं और हमारी अप्रतिष्ठा हो रही है। देश का पालन करनेवाले बादशाह ने इसी लिये एक विशाल भवन बनवा कर उसका नाम चार ऐवान रखा और विद्वानों, धर्मज्ञों और अमीरों आदि के अलग-अलग वर्ग बना कर रात के समय वहाँ अधिवेशन करना आरम्भ किया। उसने सोचा था कि कदाचित् समय की आवश्यकता और कार्य की उपयुक्तता देखकर लोगों में एक मत उत्पन्न हो, पर वे लोग वाद-विवाद में और आपस के ईर्ष्या-द्वेष के कारण परस्पर झगड़ने लगे। किसी प्रश्न का ठीक-ठीक स्वरूप ही स्पष्ट न होता था कि वास्तव में बात क्या है। वह हर एक को टटोल-

ता था और भाषणों तथा युक्तियों के चकमक को टकराता था; लेकिन वास्तविकता का पतिंगा न चमकता था। दुःखी होता था और रह जाता था। उसी अवसर पर मुल्ला साहब पहुँचे। उन्होंने यौवन के आवेश और कीर्त्ति तथा उन्नति की कामना से बहुतों को तोड़ा। उन्होंने ऐसे ढंग दिखलाए जिन से जान पड़ा कि नए मस्तिष्कों मे नए विचार उत्पन्न होने की आशा हो सकती है। लोगो मे इस नवयुवक के विचारों की भी चर्चा हो रही थी। जिस स्रोत मे मुल्ला साहब पले थे, यह भी उसी की मछली था। बड़ा भाई दरबार मे पहले ही से उपस्थित था। प्रताप ने उसे चुम्बक पत्थर के आकर्षण से दरबार की ओर खींचा। यद्यपि उस मैदान मे ऐसे लोग भरे हुए थे जो उसके पिता के समय से उसके वंश के रक्त के प्यासे थे, फिर भी यह मृत्यु से कुश्ती लड़ता और अभाग्य को रेलता ढकेलता दरबार मे जा ही पहुँचा। ईश्वर जाने फैजी ने किस अवसर पर बादशाह से निवेदन किया था और किस से कहलाया था। तात्पर्य यह कि दीपक से दीपक प्रकाशमान हुआ। स्वयं अकबरनामे में लिखा है और अपने आरम्भिक विचारो का नए ढंग से नक्शा खींचा है।

सन् ९८१ हि० मे अकबर के शासन-काल का उन्नीसवाँ वर्ष था, जब कि अकबरनामे के लेखक अब्बुलफजल ने अकबर के पवित्र दरबार में सिर झुका कर अपने पद और मर्यादा को उच्चासन पर पहुँचाया। एकान्त के गर्भ मे से निकलने पर पाँच वर्ष मे व्यवहार का ज्ञान प्राप्त हुआ। शब्द और अर्थ के पिता ने शिक्षा की दृष्टि से देखा (अर्थात् ज्ञान ने ही शिक्षा दी)।

पन्द्रह वर्ष की अवस्था मे परा और अपरा विद्याओ मे परिचित हो गया। यद्यपि उन्होने समझ का द्वार खोल दिया और ज्ञान के दरबार मे स्थान मिला, तथापि अभाग्य, अहम्मन्यता और आपा साथ था। कुछ दिनो तक रौनक और भीड-भाड पैदा करने का यत्न होता रहा। ज्ञान के इच्छुको के समूह ने विचार की पूँजी बहुत बढाई और इस वर्ग को ना-समझ और अन्यायी पाया। इसलिये विचार हुआ कि चल कर एकान्त-वास करना चाहिए और अपना स्थान छोड कर दूसरे स्थान मे रहना चाहिए। केवल ऊपरी बातें देखनेवाले बुद्धिमानो मे परस्पर विरोध था और बिना सोचे-समझे पुराने ढग पर चलने-वाले लोगो की चलती थी। मै आश्चर्य के मार्ग मे चकित होकर खडा देखता था। चुप रह नही सकता था और बोलने की शक्ति नही थी। पूज्य पिता जी के उपदेश पागलपन के जगल मे जाने न देते थे। परन्तु मन की विकलता की ठीक चिकित्सा भी न होती थी। कभी खता देश के बुद्धिमानो की ओर मन खिचता और कभी लुबनान पर्वत के तपस्वियो की ओर झुकता। कभी तिब्बत के लामा लोगो के लिये तडपता, कभी दिल कहता कि पुर्त्तगाल के पादरियो का साथी बनूं। कभी जी चाहता कि फारस के पडितो और जन्दावेस्ता के भेद जाननेवालो मे बैठ कर अपनी विकलता की आग बुझाऊँ, क्योंकि समझदारो और पागलो दोनो मे चित्त बहुत दुखी हो गया था आदि आदि।

इस जादू का सा वर्णन करनेवाले ने कई जगह अपना हाल लिखा है। पर जहाँ जिक्र आया है, एक नये ही रग मे

तिलस्मात बाँधा है। 'आजाद' उस से भी अधिक चकित है। न सब को लिख सकता है और न छोड़ सकता है।

शेख अब्बुलफजल के लेख का संक्षेप यह है कि सौभाग्य ने सहायता की और बादशाह के दरबार मे उनकी विद्या और गुणों आदि की चर्चा हुई। बादशाह ने बुलवाया, पर मेरा जी नहीं चाहता था। पूज्य बड़े भाइयो और शुभ-चिन्तक मित्रो ने एक स्वर से कहा कि बादशाह सब विषयो का तत्व जाननेवाला है। उसकी सेवा मे अवश्य उपस्थित होना चाहिए। यहाँ दिल का पागलपन सम्बन्ध की शृंखलाएँ तोड़े डालता था। लौकिक ईश्वर (पूज्य पिता जी) ने रहस्य खोल कर समझाया कि परम प्रतापी बादशाह अकबर के वास्तविक गुणो को कोई नहीं जानता। वह दीन और दुनियाँ का संगम और सब तत्वो का प्रकाशक है। तुम्हारे मन मे जटिल प्रश्नो के सम्बन्ध मे जो गाँठे पड़ गई है, वह वही जाकर खुलेंगी। मैंने उनकी प्रसन्नता को अपनी इच्छा से श्रेष्ठ समझा। सासारिक धन-सम्पत्ति से विद्या के कोषाध्यक्ष का (मेरा) हाथ खाली था। आयत उल् कुरसी की टीका लिखी। बादशाह आगरे मे आए हुए थे। वही जाकर उन्हे अभिवादन करने का सौभाग्य प्राप्त किया। उक्त पृष्ठो ने मेरे खाली हाथ होने का निवेदन किया (अर्थात् भेट की जगह कुछ नगद न देकर वही टीका दी)। वह अनुग्रह-पूर्वक स्वीकृत हुआ। मैंने देखा कि बादशाह के सेवा-रूपी रसायन से हृदय का ताप ठंडा पड़ गया और बादशाह के पवित्र व्यक्तित्व के प्रेम ने मेरे मन पर पूरा-पूरा अधिकार कर लिया। उस समय बंगाल की ओर युद्ध हो रहा था और उस पर चढ़ाई

की तैयारियाँ हो रही थीं। साम्राज्य के आवश्यक कार्यों के कारण अज्ञात एकान्तवासी की दशा पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। वे चले गए और मैं रह गया।

वहाँ से भी भाई के पत्रों में लिखा हुआ आता था कि बादशाह तुझे स्मरण किया करते हैं। मैंने सूर फतह (विजय मन्त्र) की टीका लिखना आरम्भ कर दिया *। जब पटने पर विजय प्राप्त करके लौटे और अजमेर गए, तब मालूम हुआ कि वहाँ भी स्मरण किया। जब प्रताप के झंडे फतहपुर में आए, तब पूज्य पिता जी से आज्ञा लेकर वहाँ गया। भाई के पास उतरा। दूसरे दिन जामे मसजिद में, जो बादशाही इमारत है, जाकर सेवा में उपस्थित हुआ। जब बादशाह आए, तब मैंने दूर से झुक कर अभिवादन किया और उनकी ज्योति समेटी। गुणग्राही बादशाह ने स्वयं दूरदर्शी दृष्टि से देख कर बुलाया। संसार और लोगों के हाल कुछ-कुछ पहले से ही मालूम थे। फिर पल्ला भी दूर का था। मैंने समझा कि कदाचित् मेरे किसी नाम-रासी को बुलाया हो। जब ज्ञात हुआ कि मेरे ही भाग्य ने साथ दिया

---

* इस वृद्ध शेख मुबारक और उसके नवयुवक पुत्रों का ढंग तो देखिए कि इनकी कोई बात बारीकी से खाली नहीं थी। पहली बार जब राजधानी में सेवा में उपस्थित हुए तब आयत-उल्‌कुरसी की टीका भेंट की। इसमें यह बारीकी थी कि आयत-उल्‌कुरसी का पाठ आपत्तियों से रक्षा करने के उद्देश्य से करते हैं। बादशाह युद्ध करने जा रहे हैं। ईश्वर सब आपत्तियों से उनकी रक्षा करता है। फतहपुर में सूर फतह की टीका भेंट की। इसमें यह बारीकी थी कि आपकी यह विजय शुभ हो और यह पूर्व के प्रदेशों पर विजयी होने की भूमिका है।

है, तव दौडा और उनके सिहासन पर मस्तक रख दिया। उस दीन और दुनियाँ के समुच्चय ने कुछ देर तक मुझ से बातें की।' सूर' फतह की टीका मैंने तैयार कर ली थी, वही भेंट की। बादशाह ने दरबार के लोगो से मेरे सम्बन्ध में वह वह बातें कहीं, जो स्वयं मुझे भी ज्ञात न थीं। इस पर भी दो वर्ष तक मेरा मन उचाट था। मन का पागलपन एकान्त की ओर खींचता था, लेकिन प्राणों के गले में बन्धन पड़ गए थे। अनुग्रह पर अनुग्रह बढ़ता जाता था। मैं तो कोई चीज नहीं था, पर फिर भी एक चीज बना दिया। पद मे धीरे-धीरे वृद्धि होती गई, यहाँ तक कि अन्त में अभीष्ट पवित्र मन्दिर की ताली हाथ आ गई।

तात्पर्य यह है कि जब से अब्बुलफजल दरबार मे उपस्थित हुए, तब से उन्होने अपने स्वभाव-ज्ञान, नम्रतापूर्ण सेवा, आज्ञा-पालन, विद्या, योग्यता और शिष्टतापूर्ण हास्य-प्रियता से अकबर का मन इस प्रकार अपने हाथ मे कर लिया कि अकबर जब बात करता था, तब इन्हीं दोनों भाइयो की ओर मुँह करके करता था। मखदूम और सदर के घर में तो मानो सोग छा गया। और ऐसा होना ठीक भी था, क्योकि यदि वे लोग शेख मुबारक के उत्कृष्ट गुणों और महत्व आदि को दबा सकते थे, तो स्वयं बादशाह के बल पर ही दबा सकते थे। पर अब यह मैदान भी उनके हाथ से निकल गया था। थोड़े ही दिनो मे उसके नवयुवक पुत्र दरबार के प्रश्नों और साम्राज्य के बड़े-बड़े कार्यों में सम्मिलित होने लगे।

मुल्ला साहब के वर्णन करने के ढंग मे भी एक विशेष प्रकार का आनन्द है। जरा देखिए, इस घटना का कैसे मजे से वर्णन

करते है। वह लिखते है कि सन ९८२ हि० मे बादशाह अजमेर से लौटकर फतहपुर मे ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होने खानकाह के पास एक प्रार्थना-मन्दिर प्रस्तुत कराया था जो चार ऐवान कहलाता था। इसका विवरण बहुत विस्तृत है। किसी और प्रकरण मे वह दिया जायगा। उन्ही दिनो नागौरवाले शेख मुबारक के सपूत बेटे शेख अब्बुलफजल ने, जिसे अल्लामी भी कहते है और जिसने ससार मे बुद्धि और ज्ञान की हलचल मचा दी है और जिसने सब्बाहियो (एक विशेष सम्प्रदाय के अनुयायियो) के धार्मिक विश्वासो का दीपक प्रज्वलित किया है और जो दिन के समय दीपक जलाता था और जिसने अपने प्रत्येक विरोधी का अन्त कर दिया और जिसने समस्त धर्मों का विरोध करना अपना कर्त्तव्य समझ लिया है और जिसने इसी काम के लिये कमर कसी हुई है, आकर बादशाह की सेवा को अपने मन मे स्थान दिया। उसने आयत उल् कुरसी की टीका भेट की और उसकी तारीख "तफसीर अकबरी" (अकबरी टीका) कही गई। उसमे कुरान के सम्बन्ध मे बहुत सी कठिन और सूक्ष्म बाते थी। लोग कहते है कि वह टीका उसके पिता की की हुई थी। बादशाह ने दुष्ट और अभिमानी मुल्लाओ (जिसका अभिप्राय मुझसे है) के कान मलने के लिये उसको यथेष्ट उपयुक्त पाया।

इसके उपरान्त मखदूम और सदर के द्वारा शेख मुबारक और उसके पुत्रो पर जो धुआँधार आपत्तियाँ आई थी, उनसे कुछ पक्तिया काली करके मुल्ला साहब लिखते है कि अब तो हर बात मे उन्ही की चलने लगी। शेख अब्बुलफजल ने बादशाह का पक्ष लेकर और सेवा, जमानासाजी, बेईमानी और मिजाज पहचानकर

हद से ज्यादा खुशामद करके उन लोगो की, जिन्होने उनके और उनके पिता के विरुद्ध चुगलियाँ खाई थीं और अनुचित प्रयत्न किए थे, बहुत बुरी तरह से बेइज्जत किया। उन पुराने गुम्बदों को जड से उखाड़ कर फेंक दिया। बल्कि ईश्वर के सभी सेवको, शेखो, विद्वानो, ईश्वरचिन्तन में रत रहनेवालो, अनाथो, वृद्धो और सब लोगो की आर्थिक वृत्तियाँ काटने और सहायताएँ बन्द करने का कारण भी वही हुआ। पहले वह प्राय. कहा करता था—

یارب بجهانیاں دلیلے بفرست -
فرعون صفت چو پشه پیلے بفرست -
فرعون و شاں دست براورده ستند -
موسے و عصار رد نیلے بفرست -

अर्थात्—हे ईश्वर, इस लोकवालो के पास कोई तर्क भेज जो फरऊन के से अभिमानी हाथी का अभिमान तोड़ने के लिए मच्छर के समान हो। फरऊन और उनके साथ के लोग अत्याचार करने के लिए निकले हैं। तू मूसा और असा को नील नदी की लहरो की ओर भेज दे (जिसमें वे तो सकुशल पार उतर जायँ और फरऊन तथा उनके साथी नील नदी मे डूब जायँ)। जब इस ढंग पर झगड़े उठने लगे, तब प्राय. कहने लग गया था—

آتش بدو دست خویش در خرمن خویش -
چوں خود زده ام چه نالم از دشمن خویش -
کس دشمن من نیست منم دشمن خویش -
اے وائے من و دست من و دامن خویش -

अर्थात्—मैने स्वयं अपने हाथ से अपने खलिहान मे आग लगाई है। यह काम मैंने स्वयं किया है, इसलिए मैं अपने शत्रु की कैसे निन्दा कर सकता हूँ। मेरा कोई शत्रु नहीं है। मैं स्वयं ही अपना शत्रु हूँ। मुझे अपने पर, अपने हाथ पर और अपने पल्ले पर बहुत दुःख और पश्चात्ताप है।

वाद-विवाद के समय यदि किसी प्रतिष्ठित विद्वान का वाक्य प्रमाण-स्वरूप उपस्थित किया जाता था तो कहता था कि अमुक हलवाई, अमुक मोची, अमुक चमार के कथन के आधार पर हमसे हुज्जत करते हो। सच तो यह है कि उसने सब शेखों और विद्वानों की बाते मानने से जो इन्कार किया, वह भी उसके लिये शुभ ही प्रमाणित हुआ।

हम तो कहते है कि शेख अब्बुलफजल के सम्बन्ध मे केवल मुल्ला साहब को ही यह ईर्ष्या नहीं हुई जो उनके समवयस्क और सहपाठी थे। बडे बडे वृद्ध और दरबार के बडे बडे गुणी स्तम्भ देख देखकर तडपते थे और रह जाते थे।

यदि हम यह जानना चाहे कि अकबर मे लोगों का मिजाज पहचानने की कितनी योग्यता थी तो केवल एक बात का जान लेना यथेष्ट है। वह यह कि अब्बुलफजल और मुल्ला साहब दोनो आगे पीछे दरबार मे पहुँचे थे। बादशाह की दृष्टि किसी पर कम नहीं थी। मुल्ला साहब को बीस्ती का मन्सब प्रदान किया गया और व्यय के लिये रुपये भी दिए गए। कहा गया कि घोडे उपस्थित करके दाग करा लो। पर उन्होंने स्वीकृत नहीं किया। अब्बुलफजल भी मसजिद मे बैठनेवाले एक मुल्ला के ही पुत्र थे और सीधे मसजिद से निकल दरबार मे पहुँचे थे। उन्होंने

तुरन्त आज्ञा का पालन किया। जो सेवा उन्हे मिली, की। वह क्या से क्या हो गए और यह बेचारे मुल्ला के मुल्ला ही रह गए। जरा देखिए, मुल्ला साहब कैसे मजे मे इस आपत्ति का रोना रोते हैं।

अब्बुलफजल लेखन-कला का परम पंडित बल्कि सम्राट् था। अकबर ने भी परख लिया था कि इसका मस्तिष्क हाथो की अपेक्षा अधिक लड़ेगा। बल्कि हाथ की कलम तलवार से अधिक काट करेगी। इसलिये लेखन विभाग की सेवा उन्हें सौंपी गई और साम्राज्य की चढ़ाइयों आदि का इतिहास लिखने का काम भी उन्हीं को मिला। अब्बुलफजल प्रत्येक आज्ञा का पालन बहुत ही यत्न तथा परिश्रमपूर्वक करते थे। धीरे-धीरे बादशाह के मन मे अपने प्रति बहुत अधिक विश्वास उत्पन्न कर लिया। सब प्रकार के परामर्श आदि में उनकी सम्मति आवश्यक हो गई। यहाँ तक कि जब बादशाह के पेट में दर्द होता था, तब हकीम भी उन्हीं की सम्मति से नियुक्त होता था। यदि फुन्सी पर मरहम लगता था तो भी नुसखे मे इनकी सम्मति सम्मिलित रहती थी। अब अब्बुल फजल ने मुल्लाई की गलियो से घोड़ा दौड़ाकर मन्सबदार अमीरो के मैदान मे झंडा गाडा।

सन् ९९२ हि० के जशन का विवरण लिखते हुए कहते हैं कि अमुक अमुक मन्सबदार अमीरो को इन-इन सेवाओ के पुरस्कार-स्वरूप ये मन्सब प्रदान किए गए। इस लेखक के लिये किसी सेवा ने सिफारिश न की। पर फिर भी हुजूर से हजारी मन्सब प्रदान किया गया। आशा है कि अच्छी सेवाएँ आज्ञाकारिता का मुख उज्वल करें।

सन् ९९७ हि० मे जब अब्बुलफजल बादशाह के साथ लाहौर मे थे, तब उनके पिता शेख मुबारक का देहान्त हो गया। बहुत अधिक दु ख हुआ। उनके उस दु ख की दशा इसी बात से जानी जा सकती है कि विकल होते थे और बार बार यह शेर पढते थे जो अरफी ने अपने अवसर पर कहा था—

> خونی که از مهر تو شد شیر و بطفلی خوردم -
> باز آں خون شد و از دیده برون مے آید -

अर्थात्—मैने बाल्यावस्था मे वह रक्त पान किया था जो तेरी कृपा से दूध हो गया था। पर पीछे मे वह फिर रक्त ही हो गया और आँखो के मार्ग मे बाहर निकल पडा।

स्वयं लिखते है कि आज बादशाह के प्रताप रूपी चित्र का चित्रकार मै जरा बेहोश हो गया और नाना प्रकार के दु खो मे डूब गया। समाचार मिला कि मेरे वंश की परम उज्वल रमणी, सतीत्व की माता और कृपा करनेवाली इस असार ससार को छोडकर परम धाम को सिधारी।

दीन-दु खियो पर कृपा करनेवाले बादशाह ने आकर अपने अनुग्रह की छाया की और मोती बरसानेवाले श्रीमुख से कहा कि यदि ससार के सब लोग अविनस्वर होते और एक के सिवा कोई नाश के मार्ग मे न जाता तो भी उसके मित्रो के लिये उसकी इच्छा के सामने सिर झुकाने के सिवा और कोई उपाय नही था। पर जब यात्रियो के इस निवास-स्थान मे कोई अधिक समय तक न ठहरेगा, तब सोचो कि अधीरता के परिताप का क्या अनुमान किया जा सकता है। हृदय शीतल करनेवाले इस वचन से मन मे

ज्ञान उत्पन्न हो गया और उस समय के लिये जो उपयुक्त काम थे, उनमे लग गया।

सन ९९९ हि० में स्वयं लिखते हैं कि आज पुत्र अब्दुल-रह्मान के घर में प्रकाशमान तारे ने प्रकाश बढ़ाया। अनेक प्रकार से आनन्द-मंगल होने लगा। अकबर बादशाह ने पशवतन नाम रखा। आशा है कि वह वैभव और सफलता या विजय की वृद्धि करे और सभ्यता उसके दीर्घायुष्य में सम्मिलित हो।

इसी सन् मे लिखते हैं कि शाहजादा सलीम जहाँगीर के अल्पवयस्क पुत्र खुसरो की पढ़ाई के आरम्भ का दरबार हुआ। सबसे पहले बादशाह ने ईश्वर के दरबार में नम्रता और अधीनता दिखलाई और शाहजादे से कहा—'कहो अलिफ'। फिर इन्हे आज्ञा दी कि थोड़ी देर तक नित्य बैठकर इसे पढ़ाया करो। इन्होंने थोड़े दिनो बाद पढ़ाने का काम अपने छोटे भाई शेख अब्बुलखैर को सौंप दिया।

सन १००० हि० मे लिखते हैं कि शाही प्रताप की बातें लेखबद्ध करनेवाले (मुझ) को दो-हजारी मन्सब प्रदत्त हुआ है। आशा है कि सेवाएँ स्वयं ही अपने मुँह से इसके लिये धन्यवाद दें और हजूर की गुणग्राहकता पास और दूर सभी जगहो मे प्रकट हो।

सन् १००४ हि० (१५९५ ई०) मे फैजी के लिखे हुए ग्रन्थो को देखा। उनके खंड खंड इधर उधर बिखरे पड़े थे। बड़े भाई के कलेजे के टुकडे इस दुर्दशा मे देखे नहीं गए। उनका क्रम लगाने की ओर प्रवृत्त हुआ। दो वर्ष इस काम मे लगे। इसी बीच मे ढाई हजारी मन्सब मिला। आईन-अकबरी मे

मन्सबदारों की जो सूची दी है, उसमें अपना नाम और पद भी लिखा है।

अब्बुलफजल बड़े सुरते और सयाने थे। वह यह भी जानते थे कि सारे दरबार में एक अकबर को छोड़कर और कोई मेरा हृदय से शुभचिन्तक नहीं है। लेकिन फिर भी वे एक चाल चूके और बहुत चूके। शेख मुबारक ने कुरान की टीका लिखी थी। उन्होंने उसकी प्रतियाँ प्रस्तुत कीं और ईरान, तूरान तथा मूर आदि देशों में भेजीं। ईर्ष्यालु लोग हर समय ताक लगाए बैठे रहते थे। उन्होंने ईश्वर जाने किस ढंग और रूप में यह बात अकबर से निवेदन की। उसे कुछ बुरा मालूम हुआ। चुगली खानेवालों की बातें किसने सुनी हैं कि किसने क्या क्या मोती पिरोए होंगे। कदाचित् यह कहा हो कि यह श्रीमान के सामने धर्मनिष्ठ मुसलमानों को अन्ध-परम्परा का अनुयायी कहता है और अनुकरण तथा धर्म के दोष बतलाता है। वास्तव में इसके विचार धर्म के विरुद्ध हैं। या यह कहा हो कि ऊपर से तो हुजूर से कहता है कि मैं आपके सिवा और किसी को नहीं जानता, बल्कि हुजूर को धर्म और शरअ के अनुसार चलनेवाला मानता है। और कदाचित् गुप्त रूप से यह भी कहा हो कि इसने उस टीका के खुतबे में हुजूर का नाम सम्मिलित नहीं किया। सम्भव है कि यह उक्त बादशाहों के दरबार में अपना प्रवेश करने के लिये मार्ग बना रहा है। तात्पर्य यह कि उन लोगों की बातों ने अथवा अब्बुलफजल के इस कृत्य ने अकबर के हृदय पर बुरा प्रभाव डाला। एक इतिहास में लिखा है कि जहाँगीर ने यह विषय अपने पिता के सामने उपस्थित किया था। अब्बुलफजल खुद

रंग-ढंग पहचाननेवाले आदमी थे। उन्होंने इस बात पर बहुत अधिक दु ख प्रकट किया। जैसे कोई किसी के मर जाने पर सोग मे बैठता हो, उसी तरह घर में बन्द होकर बैठ रहे। दरबार मे आना-जाना छोड़ दिया। लोगों से मिलना-जुलना भी छोड़ दिया और अपने-पराए सब का आना-जाना भी बन्द कर दिया। जब बादशाह को यह समाचार मिला, तब उसने बहुत उदारता से काम लिया और कहला भेजा कि आकर अपनी सेवाएँ सँभालो। इस बीच में कई बाते कहलाई गई और उनके उत्तर भेजे गए। अन्त में स्वयं लिखते हैं कि मैं अन्तर्यामी के रास्ते पर बैठा और सोचने लगा कि अरे मन, तू दूरदर्शी बादशाह की कम-समझी को क्या दोष देता है। नासमझी तो तेरी है। इस प्रकार की बातें शत्रुओ की आकांक्षाएँ पूरी करती हैं। यह तुझे क्या खयाल आ गया कि तू उलटा चलने लगा। यह समय इस प्रकार की शिकायतें और दु'ख करने के लिये उपयुक्त नहीं है, आदि आदि। तात्पर्य यह कि फिर जब बादशाह ने बुलवाया, तब मन से पहली बातें दूर करके दरबार में गए और अनेक प्रकार के अनुग्रहो ने दु खो और चिन्ताओ से हल्का कर दिया।

सन् १००५ हि० में लिखते हैं कि बादशाह ने काश्मीर जाते समय रजौडी मे पड़ाव डाला। शाहजादा सलीम जहाँगीर बिना आज्ञा लिए दरबार मे उपस्थित हुआ। मार्ग मे कुछ अव्यवस्था हो गई थी। ऐसा प्राय' हो जाया करता था, इस-लिये बादशाह ने उसे कुछ दिनो तक दरबार में उपस्थित होने से वंचित रखा और अपनी अप्रसन्नता प्रकट करने के लिये आज्ञा दे दी कि इसका डेरा पीछे हट कर रहा करे। शाहजादे ने

कोई अवसर न मिल सकता था। लेकिन बुरहान उलमुल्क के राज्य के नष्टप्राय हो जाने के कारण दक्षिण का परोसा हुआ थाल भी सामने था। बहुत दिनो से अमीरो और सेनाओ का उधर आना-जाना भी हो रहा था। मुराद की अवस्था के सब समाचार सुन कर उसने जान लिया था कि दक्षिण की सेना सेनापति से खाली होना चाहती है। उसने अपने दोनो पुत्रो को बुलाया। उसका विचार यह था कि सलीम को सेना देकर तुर्किस्तान की चढाई पर भेजे। लेकिन वह शराबी कबाबी लडका बदमस्त हो रहा था। दानियाल के सम्बन्ध मे समाचार मिला कि वह इलाहाबाद से भी आगे निकल गया है। यह भी सुना कि उसका उद्देश्य अच्छा नहीं जान पडता। इसलिये वह विवश होकर स्वय ही इस विचार से लाहौर से निकला कि उसे साथ लेता हुआ अहमदनगर को जाय और दक्षिण की ओर से पहले निश्चिन्त होकर तब तूरान की चढाई की व्यवस्था करे।

अकबर को अब्बुलफजल की नेक-नीयती, बुद्धिमत्ता और उपायो पर इतना भरोसा था कि वह उसके कथन को स्वय अपने कथन के तुल्य समझता था। जिस विषय मे अब्बुलफजल किसी को कोई वचन देता था, उस विषय मे उस वचन को वह स्वय अपना वचन समझता था। इस बात की पुष्टि उस पत्र की लिखावट से होती है जो अब्बुलफजल ने शाहजादा दानियाल को लिखा था। यह मूल पत्र फारसी मे है और इसका आशय इस प्रकार है—

"श्रीमान् सम्राट् ने कल रात को स्नानागार मे स्वय अपने श्रीमुख से कहा था कि अब्बुलफजल, मैने अच्छी तरह सोच

समझ कर यही निश्चय किया है कि दक्षिण की चढ़ाई पर या तो तुम जाओ और या मैं जाऊँ। इसके अतिरिक्त और किसी प्रकार काम में न सफलता हो सकती है और न होगी। यदि तुम जाओगे तो विश्वास है कि शाहज़ादा तुम्हारे कहने के बाहर या विरुद्ध न जायगा। जब तक तुम वहाँ रहोगे, वह किसी दूसरे से परामर्श या मन्त्रणा न करेगा और कम साहसवाले, अदूरदर्शी और अयोग्य व्यक्तियों की बातें न सुनेगा। इसलिये उचित यही है कि तुम पहली तारीख को अपने रहने आदि का सामान पहले से भेज दो और आठवीं तारीख को तुम चले जाओ। सेवक ने यह निवेदन कर दिया है कि बकरियाँ और भेड़ें या तो बलिदान के काम आती हैं और या मांस पकाने के लिये। दूसरा क्या उपयोग हो सकता है? जब श्रीमान् की ऐसी आज्ञा है, तब मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं है।"

सन् १००७ हि० में शेख को यह आज्ञा हुई कि सुलतान मुराद को अपने साथ ले आओ। साथ ही यह भी आज्ञा हुई कि यदि दक्षिण पर चढ़ाई करनेवाले अमीर उस देश की रक्षा का भार लें तो शाहज़ादे के साथ चले आओ। और नहीं तो शाहज़ादे को भेज दो और स्वयं वहीं रहो। आपस में एका रखो और सब लोगों से ताकीद कर दो कि मिरज़ा शाहरुख की अधीनता में रहें।

मिरज़ा को भी झंडा और नक्कारा देकर मालवे की ओर भेज दिया जहाँ उसकी जागीर थी। उसके भेजने का उद्देश्य यह था कि वह वहाँ जाकर सेना का प्रबन्ध करे और जब दक्षिण में बुलाहट हो, तब तुरन्त वहाँ पहुँच जाय।

शेख बुरहानपुर के पास पहुँचा। खान्देश का शासक बहादुरखाँ आसीर के किले से उतर कर चार कोस लेने के लिये आया। उसने बहुत आदरपूर्वक बादशाह का आज्ञापत्र और खिलअत लेकर नम्रतापूर्वक अभिवादन किया। उसने शेख को ठहराना चाहा, पर वह नहीं रुके और सवार होकर बुरहानपुर जा पहुँचे। बहादुरखाँ भी वहाँ जा पहुँचे। शेख ने बहुत सी ऐसी बातें कहीं जो ऊपर से देखने मे तो कड़वी थीं, पर जिनका प्रभाव बहुत मधुर हो सकता था। उन्होंने यही समझाया कि तुम्हारे लिये सबसे अच्छी बात यही है कि तुम चढ़ाई मे शाही सेना के साथ मिल जाओ। उसने इस सहज सी बात के लिये बड़े मुश्किल हीले-हवाले किए। हाँ अपने पुत्र कबीरखाँ को दो हजार सैनिक देकर रवाना किया। साथ ही उसने शेख को उनकी दावत करने के लिये अपने घर ले जाना चाहा। लेकिन उन्होंने कहा कि यदि तुम युद्ध मे हमारे साथ चलते तो हम भी तुम्हारे यहाँ चलते। उसने बहुत से उपहार आदि उपस्थित किए। भला अबुलफजल को बातें बनाना कौन सिखा सकता था! उन्होंने ऐसे तोते-मैना उड़ाए कि उसके होश उड़ गए। वह आसीर चला गया और ये आगे बढ़े। ऐसी अवस्था मे वह जो कुछ नाज दिखलाते थे, वह सब ठीक था, क्योंकि उसके चाचा खुदावन्दखाँ से इनकी बहन ब्याही हुई थी। साथ ही उसका पिता राजीअलीखाँ अकबर के दरबार मे बहुत आना-जाना रखता था और वहाँ उसकी बहुत राह-रस्म थी। इसी लिये वह सुहेलखाँ दक्खिनी की चढ़ाई मे खानखानाँ के साथ गया था और वहाँ बहुत वीरतापूर्वक लड़ कर युद्ध-क्षेत्र मे मारा गया था।

अब्बुलफजल स्वयं लिखते हैं कि बहुत से अमीरो को इस चढाई का काम मेरे सपुर्द होना अच्छा नहीं लगा। उन्होने आपस मे मिल कर ऐसा पेच मारा कि उनकी बातो मे आकर मेरे पुराने पुराने साथी मुझ से अलग हो गए। विवश होकर मैंने नई सेना की व्यवस्था की। भाग्य सहायक था। बहुत सा लश्कर जमा हो गया। अशुभचिन्तकों ने भर्त्सना की जाली लगा कर मुझसे कहा कि यह क्या करते हो, इसमे धोखा खाओगे। लेकिन मैं अपने विचार और कार्य से न हटा। वे उपद्रव खड़ा होने की आशा मे आँखें खोले ही रहे और मैं शाह-जादे की छावनी से तीस कोस पर जा पहुँचा। वहाँ तेज चलने-वाले पत्रवाहक मिरजा यूसुफखाँ आदि शाहजादे के लश्कर से पत्र लेकर पहुँचे कि विलक्षण रोग ने घेर लिया है। सबको छोड़ कर अकेले तुरन्त यहाँ पहुँचो। सम्भव है कि हकीमो को बदल देने से कुछ लाभ हो और छोटे-बड़े सब नष्ट होने से बच जायँ। यद्यपि दरबारियो की ओर से मेरा मन सन्तुष्ट नहीं था और साथी भी रोकते थे, पर मैंने सब को शैतानों का मिथ्या विश्वास समझा और जितनी शीघ्रता से हो सका, आगे बढ़ा। सारी चिन्ता यही थी कि मैं अपना जीवन सम्राट् के काम मे खपा दूँ और मौखिक निष्ठा को कार्य रूप मे परिणत करके दिखला दूँ। देवलगाँव पहुँच कर और भी तीर हो गया और सन्ध्या होते होते वहाँ जा पहुँचा। वहाँ मैंने वह दृश्य देखा जो किसी को न देखना पड़े। अवस्था चिकित्सा की सीमा से आगे बढ़ चुकी थी। साथ मे आदमी तो बहुत अधिक थे, पर सब व्यग्र और चिन्तित थे। किसी को कुछ सूझता न था। सरदारो का यह

विचार था कि शाहजादे को लेकर शाहपुर लौट चलो। मैंने कहा कि इस समय सभी छोटे-बड़ो के दिल टूट रहे है। विलक्षण बलवा सा हो रहा है। शत्रु पास है और देश पराया है। ऐसी अवस्था मे यहाँ से चलना मानो जान-बूझ कर आफत का शिकार होना है। इस बात-चीत मे शाहजादे की विकलता और भी बढ़ गई। अवस्था और भी खराब हो गई और शाहजादे का शरीरान्त हो गया। कुछ लोग तो बद-नीयती से, कुछ लोग असबाब सँभालने की चिन्ता मे और कुछ लोग बाल-बच्चो की रक्षा के विचार से अलग हो गये। पर इस विकट विपत्ति के समय भी ईश्वर ने मेरी सहायता की और मै हिम्मत न हारा। जो कुछ कर्त्तव्य था, उसी मे लग गया। रथी को स्त्रियो समेत शाहपुर भेज दिया और उस यात्री को वही गड़वा दिया। कुछ लोग पुरानी छावनी से निकल कर उपद्रव करने लगे। उन लोगो को जितना ही दबाने का प्रयत्न किया गया, उतना ही उनका दिमाग और खराब होता गया। इसी बीच मे मेरी वह सेना आ पहुँची जो पीछे रह गई थी। वह तीन हजार से अधिक थी। अब मेरी बात और भी चमकी। जो लोग सीधी तरह से बात करने पर टेढ़े चलते और लड़ते थे, वे अब मानने की बात पर कान धरने लगे। लेकिन छोटे से बड़े तक सब का यही विचार था कि यहाँ से लौट चलना चाहिए। उन्होने मुनइमखाँ के मरने की, बंगाल के विद्रोह की, शहाबउद्दीन अहमदखाँ के गुजरात से निकल आने की, और इस देश के उपद्रवो तथा उत्पातो की बाते अलग अलग रंग से सुनाई। मेरी प्रवृत्ति स्वयं परमात्मा की ओर थी और आँखे बादशाही प्रताप के प्रकाश से

प्रकाशित थी। इसलिये जो बात सारे संसार को अच्छी लगती थी, वह मुझे बुरी जान पड़ती थी। बहुत से दुष्ट विचारोवाले लोग अलग हो गए। मैंने वास्तविक काम बनानेवाले परमात्मा की ओर दृष्टि रखी और आगे ही बढ़ने का विचार किया। दक्षिण पर विजय प्राप्त करने के लिये झंडा आगे बढ़ाया। इस बढ़ने से लोगों के मन मे कुछ और ही बल आ गया। सीमा पर के लोगो को उपकृत और कृतज्ञ ही कर रखा था। उन्हे तथा इस देश के बहुत से रक्षकों को दबाए रखने के लिए जोरदार पत्र लिख भेजे। दरिद्रों की ओर से हाथ रोके। शाहजादे के खजाने मे जो कुछ हुजूर की सेवा मे भेजने योग्य नहीं था, जो कुछ अपने पास था और जो कुछ ऋण मिल सका, वह सब कुछ निछावर कर दिया। जो लोग चले गए थे, वे भी थोड़े समय मे लौट आये और फिर सब काम जोरो से होने लगा। शाहजादे के कुल इलाके का प्रबन्ध अच्छी तरह हो गया। हाँ, नासिक का रास्ता भी खराब था और वह स्थान भी दूर था, इसलिये वहाँ देर मे समाचार पहुँचा और वहाँ के लोग न आ सके। जब शाहजादे की मृत्यु का समाचार वहाँ पहुँचा, तब वहाँ का शासक देश का सब काम करता था। उसने निराश होकर सेना को तितर-बितर कर दिया। जिन लोगो को मैंने भेजा था, उन्होंने साहस से काम नहीं लिया। इसलिये जो देश हाथ से निकल गया था, वह तो न आ सका। हाँ, और बहुत से इलाके सम्मिलित हो गये।

अकबर के प्रताप ने आकर इस घटना की भविष्यद्वाणी कर दी होगी, इसी लिये उसने पहले से शेख अब्बुलफजल को भेज

दिया था। यदि शेख वहाँ न जा पहुँचते और उस दशा मे शाहजादे की मृत्यु हो जाती तो सारी सेना नष्ट हो जाती। सब देशो मे बडी बदनामी होती और ऐसी कठिनाइयाँ उपस्थित होतीं कि बरसो मे भी देश न सॅभलता। सम्राट् के पार्श्ववर्त्तियो ने मेरे निवेदन न सुने और दुष्ट उद्देश्य से शाहजादे के मरने का समाचार छिपाया। यदि बादशाह को इस दुर्घटना का समाचार मिल जाता तो वह तुरन्त सेना और कोष भेज देता। मै तो ईश्वर के दरबार मे अपना निवेदन कर रहा था और कृपालु सम्राट् की मुझ पर कृपा नित्य बढती जाती थी। सेना का ऐसा प्रबन्ध हो गया जिसका लोगो को सहज मे अनुमान भी न हो सकता था। दूर और पास के लोग चकित हो गए। ईश्वर की महिमा का ज्ञान होना मनुष्य की शक्ति के बाहर है। भला मुझ दुर्बल से क्या हो सकता है!

दरबार मे जो लोग मेरे सम्बन्ध मे व्यग्य-वचन कहते थे और उलटी-सीधी बाते बनाते थे, उन्हे मौन और पश्चात्ताप ने दबा लिया। अशुभचिन्तक लोग अनेक प्रकार की झूठी बाते बनाते थे और कहते थे कि बादशाह ने स्वय जान-बूझकर शेख को दरबार से दूर फेंक दिया है। पर उस वास्तविक काम बनानेवाले परमात्मा ने इसी को मेरा सिर ऊँचा करने का साधन बना दिया और उन लोगो को सदा के लिये लज्जा के घर मे बैठा दिया। मै युद्ध की व्यवस्था करने लगा। सुन्दरदास को सेना देकर तुलनुम के किले पर भेजा। उसने बुद्धिमत्ता से वहा के कुछ निवा-सियो को बुलाया। उन्ही मे से एक जाकर किलेदार को अपने साथ ले आया। थोडी ही रगड-झगड मे किला हाथ आ गया।

सोईदवेग और मेरा पुत्र दोनों कारागार मे थे। थोड़े ही दिनो मे वादशाह ने मेरे पुत्र को भी दक्षिण की चढ़ाई मे सम्मिलित होने के लिए नियुक्त करके दौलतावाद भेजा। किलेवाले ने लिखा कि यदि आप पक्का वचन दें और हमारा सन्तोष हो जाय कि हमारा माल-असवाव न छीना जायगा तो हम किले की चाभियाँ दे देते हैं। इसका भी प्रवन्ध हो गया। कुछ हवशी और दक्खिनी उपद्रवी इधर के इलाके मे थे। अपने पुत्र अब्दुर्रहमान को पन्द्रह सौ सवार अपने और उतने ही वादशाही सवार देकर उन लोगों को दमन करने के लिये भेजा। जव शाहजादे की मृत्यु का समाचार फैला, तव मैंने मिरजा शाहरुख को वुलाया। ऐसी दुर्घटनाएँ होने पर लोग हजारों हवाइयाँ उड़ाते हैं, इसलिये ईश्वर जाने मिरजा क्या सोच कर रह गए। मुझे तो मिरजा से यह आशा थी कि यदि आज्ञापत्र न भी पहुँचेगा और समय आ पडेगा तो वह वेचैन हो कर आप ही मेरी सहायता के लिये आ पहुँचेंगे। लेकिन वह कहनेवालों की वातों में आ गए। जव वरावर क्रोधयुक्त आज्ञापत्र पहुँचे और अन्त में वादशाह ने हुसैन सजावल को भेजा, तव विवश होकर उन्होंने भी अपने स्थान से प्रस्थान किया। अव वे भी आकर शाही सेना में सम्मिलित हो गए। मैं स्वागत कर के डेरों में ले आया। ऐसे वीर और सच्चरित्र रत्न के आने से दिल खुल गया। शेर ख्वाजा नामक पुराना अनुभवी सरदार सुलतान मुराद के साथ एक सेना का अफसर होकर गया था और सीमा पर वीर नामक परगने की रक्षा कर रहा था। वर्षा ऋतु आई। समाचार मिला कि दक्खिनियों ने सेनाएँ एकत्र करना आरम्भ किया है और

अम्बर तथा फरहाद पाँच हजार हब्शी तथा दक्खिनी सवार और साठ मस्त हाथी लेकर आनेवाले है। शेर ख्वाजा के पास केवल तीन हजार सेना थी। लेकिन वह आप ही निकल कर और नगर से कई कोस आगे बढ कर शत्रु पर जा पडा। लेकिन उसके पास सेना कम थी, इसलिये वह लडता-भिडता पीछे हटा और किले मे बन्द होकर बैठ गया। उस युद्ध मे वह घायल भी हो गया था। लेकिन फिर भी यह समाचार फैल गया कि उसने शत्रु को परास्त कर दिया। उसने मेरे पास भी पत्र भेजा था। मैने और सेना भेज दी। जब यह समाचार पहुँचा, तब मन्त्रणा के लिये सभा हुई। किसी की सम्मति नहीं थी। पानी मूसल-धार बरस रहा था। उसी समय मै बिना सेना आदि लिए अकेला चल पडा। लश्कर की व्यवस्था शाहरुख के सुपुर्द कर दी। अपने पुत्र शेख अब्दुर्रहमान को दौलताबाद से बुलाया और कहा कि गग नदी के तट पर जाओ और सैनिको को समेटो। कहीं मैं और कहीं मेरा लडका, दोनो जगह-जगह चौकियाँ जमाते फिरते थे। उद्देश्य यह था कि आगे का काम चलता रहे और पीछे की ओर से निश्चिन्त रहे। बादशाही सर-दारो मे कोई अच्छा साहसी दिखाई नहीं पडता था। मिरज़ा यूसुफखाँ बीस कोस पर थे। मै अकेला उधर चल पडा। रात के समय वहाँ पहुँच कर उसे भी सहायता के लिये प्रस्तुत किया। इधर-उधर की सेनाओ को समेट कर साथ लिया। लश्कर की अवस्था ठीक करके आगे बढा। गोदावरी नदी चढाव पर थी। परन्तु सौभाग्यवश वह सहसा आप ही उतर गई। सेना पैदल ही चल कर पार उतर गई। शत्रु की जो सेना नदी किनारे

पड़ी थी, वह हरावल की झपट में आ गई। दूसरे दिन लश्कर वीर के किले के चारों ओर से भी उठ गया। मैंने ईश्वर को अनेकानेक धन्यवाद दिए और खुशी के जलसे किए। गंग नदी के तट पर छावनी डाली। अब उस देश मे आतंक छा गया। जब अकबर ने देखा कि यहाँ के सरदारों से दक्षिण का युद्ध नहीं सँभलता, तब उसने दानियाल को और सेना देकर भेजा। साथ ही खानखानाँ को शिक्षक का मन्सब दिया *।

अब्बुलफजल लिखते हैं कि उसी दिन बड़े शाहजादे सलीम अर्थात् जहाँगीर को अजमेर का सूबा देकर राणा पर चढ़ाई करने का काम उसके सपुर्द किया। सम्राट् को उससे बहुत प्रेम है और वह प्रेम निरन्तर बढ़ता ही जाता है। परन्तु वह मद्यप है और उसे अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं है। कुछ दिनों तक बादशाह ने उसे अपनी सेवा में उपस्थित होकर सलाम करने से रोक दिया था। लेकिन मरियम मकानी के सिफारिश करने पर सलाम करने की आज्ञा मिल गई। उसने फिर वचन दिया कि मैं ठीक मार्ग पर चलूँगा और साम्राज्य की सेवा करूँगा। बादशाह मालवे में जाकर शिकार खेलने लग गए जिसमे चारों ओर जोर रहे। खानाखानाँ को दानियाल के साथ रहने के लिये भेज दिया। साथ ही यह भी आज्ञा दे दी कि जिस समय खानखानाँ वहाँ पहुँचे, उस समय अब्बुलफजल दरबार के लिये प्रस्थान करे। मैंने बहुत खुशियाँ मनाई और इसी बीच मे तबाले का किला जीत लिया।

---

* विशेष बातें जानने के लिये खानखानाँ का प्रकरण देखो।

अकबर को समाचार मिला था कि बडा शाहजादा मार्ग मे विलम्ब कर रहा है। इसलिये उसने भी अब्दुलअहीं मीर-अदल को अनेक प्रकार के उपदेश देकर भेजा। मै अहमद-नगर की ओर चल पडा। बुरहान-उल्-मुल्क की बहन चाँद बीबी अब उसके पोते बहादुर को दादा का उत्तराधिकारी बनाकर सामना करने के लिये तैयार हुई। कुछ सेना ने उसकी अधीनता स्वीकृत कर ली। आभंगखाँ बहुत से उपद्रवी हवशियो को साथ लिए हुए उस बालक को बादशाह मानता था। पर साथ ही वह चाँद बीबी के प्राण लेने की चिन्ता मे था। वह बेगम बादशाही अमीरो के पास खुशामद के सँदेसे भेजा करती थी। साथ ही उधर दक्खिनियो से भी मित्रता की बातें करती थी। मुझसे भी वह उसी प्रकार की बाते करने लगी। मैने उत्तर दिया कि यदि तुम दूरदर्शिता तथा बुद्धिमत्तापूर्वक आकर बादशाही दरबार के साथ सम्बद्ध हो जाओ तो इससे अच्छी और कौन सी बात हो सकती है। सब शर्तें तै करने और पक्का वचन देने का भार मै अपने ऊपर लेता हूँ। और नही तो व्यर्थ बाते करने से कोई लाभ नही और आगे से बात-चीत बन्द। उसने शुभचिन्तक समझ कर मित्रता का बन्धन दृढ किया। सच्ची शपथो के साथ अपने हाथ का लिखा निश्चय-पत्र भेजा। उसमे लिखा था कि जब तुम आभगखाँ को परास्त कर लोगे, तब मै किले की कुजियाँ तुम्हारे सपुर्द कर दूँगी। लेकिन इतना है कि दौलताबाद मेरी जागीर रहे। साथ ही यह भी आज्ञा हो कि मै कुछ दिनो तक वहाँ जाकर रहूँ। जब चाहूँ, तब दरबार मे उपस्थित होऊँ। बहादुर को दरबार मे भेज दूँगी। मुझे दु ख है कि साथियो के

सहायता न देने से काम मे देर हो गई। शाहगढ़ में लश्कर देर तक पड़ा रहा और शाहजादे के आने मे बहुत विलम्ब हुआ। आभगखाँ की अशुभ-चिन्तना और भी बढ़ गई। उसने शमशेर-उल्-मुल्क को, जिसके वंश मे बरार का शासन था, कैदखाने से निकाल कर सेना को साथ लिया और दौलताबाद से होता हुआ वह बरार की ओर चल पड़ा। उसने सोचा था कि वहाँ शाही सेना की सब सामग्री और बाल-बच्चे हैं। यह लोग घबरायँगे और लश्कर मे खलबली मच जायगी। मुझे तो पहले से ही इसकी खबर थी। मैं मिरजा यूसुफखाँ आदि को सेना देकर उधर भेज चुका था। परन्तु वे लोग निश्चिन्त होकर मधुर स्वप्न देखते रहे। उसने बरार प्रदेश में पहुँच कर खलबली मचा दी। बहुत से रक्षकों के पैर उखड़ गए। बहुत से लोग प्रेम से विह्वल होकर बाल-बच्चों की रक्षा करने के लिये उठ दौड़े। मैंने उधर सेना भेजी और स्वयं अहमदनगर की ओर चल पड़ा कि बाहर के उपद्रवियो की गरदन दबाऊँ और चाँद बीबी की बात का खरा-खोटा देखूँ। एक ही पड़ाव चले थे कि शत्रुओं ने सब ओर से सिमट कर अहमदनगर की रक्षा के लिये उधर प्रस्थान किया। लेकिन अकबर के प्रताप ने खबर उड़ा दी कि शमशेर-उल्-मुल्क मर गया। यूसुफखाँ भी चौंक कर दौड़े। कई सरदारों को आगे बढ़ा दिया। उन्होंने दम न लिया। मारामार चले गए। रात के समय एक जगह जा पकड़ा। बड़ी हलचल मची। इसी अवस्था मे शमशेर-उल्-मुल्क मारा गया और विजय का डंका बजा।

युद्ध विजय के मार्ग पर चल रहा था। लश्कर गंग

नदी के तट पर सेग-पटन नामक स्थान में था। इतने में शाह्-जादे की आज्ञाएँ निरन्तर पहुँचने लगीं कि तुम्हारा परिश्रम पास और दूर सब जगह के लोगों को विदित हो गया है। हम चाहते हैं कि हमारे सामने अहमदनगर फतह हो। तुम अपना विचार छोड़ दो। अब हमें मार्ग में विलम्ब न होगा। यहाँ लश्कर में एक नया उपद्रव खड़ा हुआ। जब शाहजादा बुरहान-पुर पहुँचा, तब बहादुरखाँ आसीर के किले से नीचे न उतरा। शाहजादे ने चाहा कि उस उद्दंड की गरदन मसल डाले। मिरज़ा यूसुफखाँ अहमदनगर के युद्ध-क्षेत्र में था। वह और आगे बढ़ना चाहता था। उसे भी बुला लिया। यह देखकर और लोगों ने भी उधर का ही रुख किया। बहुत से सरदार बिना आज्ञा के भी उठ दौड़े। जो शत्रु अब तक मन ही मन काँप रहा था, वह अब शेर हो गया। कई बार उसने रात के समय छापे मारे। बहादुरों ने खूब दिल लड़ाए और अच्छी धकापेल की। ईश्वर ने रक्षा की जिससे बराबर विजय पर विजय होती गई और शत्रु तितर-बितर हो गए। अब आभगखाँ ने नम्र बन कर खुशामद करना शुरू किया

अहमदनगर

अकबर के पास दानियाल और बहादुरखाँ के सम्बन्ध के सब समाचार पहुँचे। (कदाचित् अब्बुलफजल ने भी लिखा होगा कि शाहजादा लड़कपन करता है। अहमदनगर का बनता हुआ काम बिगड़ जायगा। आसीर का काम तो हुजूर जब चाहेंगे बना-बनाया है ही।) शाहजादे के नाम आज्ञापत्र निकला कि

अहमदनगर पर चढ़े चले जाओ। बहादुरखाँ का न आना उद्दंडता के कारण नहीं है। इस मामले को हम समझ लेंगे। शाहजादा चल पड़ा। बादशाह आगे बढ़े। बहादुरखाँ ने अपने पुत्र कबीरखाँ को कुछ खवासों के साथ हुजूर की सेवा में भेजकर अच्छे अच्छे उपहार भेंट किए। यद्यपि अमीरों का आना-जाना बराबर हो रहा था और उसे लिखा भी जा रहा था, तथापि वह स्वयं सेवा मे उपस्थित न हुआ। विवश होकर उस पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी गई। अब्बुलफजल के पास आज्ञापत्र पहुँचा कि सेना की व्यवस्था मिरजा शाहरुख को सौंप कर बुरहानपुर में चले आओ। यदि बहादुरखाँ उपदेश मान कर साथ दे तो उसे पिछले अपराधों की क्षमा का सुसमाचार सुनाकर साथ ले आओ। नहीं तो शीघ्र सेवा मे उपस्थित हो, क्योंकि कुछ परामर्श करना है।

जब ये बुरहानपुर के पास पहुँचे, तब बहादुरखाँ आकर मिला। वह उनके उपदेश सुन कर साथ चलने को प्रस्तुत हो गया। लेकिन घर जाकर फिर बदल गया। वहाँ से उसने कुछ उट-पटाँग उत्तर भेज दिया। ये आज्ञानुसार आगे बढ़े। यहाँ नौरोज के जशन की धूमधाम हो रही थी। रात का समय था। परियाँ नाच रही थीं। गवैए तान ले रहे थे। तारो भरे आकाश और चाँदनी रात की बहार थी। पास ही फूलो से भरा चमन था। दोनो के मुकाबले हो रहे थे। शुभ मुहूर्त में पहुँच कर बादशाह के चरणों के आगे सिर रख दिया। अकबर के हृदय के प्रेम का इसी से अनुमान कर लेना चाहिए कि उसने उसी समय यह शेर पढ़ा—

فرخنده شبے باید وخوش مہتابے –
تا با تو حکایت کنم از ہر بابے –

अर्थात्—रात हॅस पडे और चन्द्रमा प्रसन्न हो (अर्थात् सुहावनी और चॉदनी रात हो) जिसमे मै तुझसे प्रत्येक विषय मे बाते करूँ ।

शेख इसके धन्यवाद मे बहुत देर तक उसी प्रकार चुपचाप खड़े हैं । खान आजम शेख, फरीद बखशी बेगी को और उन्हे आज्ञा हुई कि आसीर की जागीर को घेर लो और उस पर मोरचे लगा दो । शीघ्र ही इस आज्ञा का पालन हो गया । शेख फरीद अपनी सेना की कमी और शत्रु की सेना की अधिकता के विचार से दूरदर्शिता करके तीन कोस पर थम गए । लेकिन कुछ उच्च दृष्टिवाले लोगो ने (सम्भवत खान आजम से अभिप्राय है) शिकायत की जिससे हुजूर मन मे कुछ दु खी हुए । जब शेख सेवा मे आए और उन्होने वास्तविक समाचार सुनाया, तब बादशाह का चित्त शान्त हो गया । उसी दिन अब्बुलफजल को चार-हजारी मन्सब और खानदेश प्रान्त का प्रबन्ध दिया गया । उन्होने जगह-जगह आदमी बैठाए । एक ओर अपने भाई शेख अब्बुल बरकात को बहुत से बुद्धिमानो के साथ भेजा और दूसरी ओर अपने पुत्र शेख अब्बुर्रहमान को । बादशाही सेवको के साहस ने थोडे ही समय मे उद्दडो की गरदने खूब मसल दी । बहुतो ने आज्ञा-पालन का सुख भोगा । सेना ने अधीनता स्वीकृत की । जमींदारो को सन्तोष हो गया और उन्होने अपने अपने खेत सॅभाले ।

अब्बुलफजल ने बादशाह की कृपाओ और अनुग्रहो तथा

अपनी योग्यता और बुद्धिमत्ता से अपने लिये ऐसी पहुँच कर ली थी कि उसके उपायों और लेखों की कमन्दों ने इलाकों के हाकिमों को खींच कर दरबार में उपस्थित कर दिया। भाई और बेटा खान्देश प्रदेश मे घोर परिश्रम कर रहे थे। बादशाह ने शेख को चार-हजारी मन्सब देकर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। सफदर अलीखाँ, जो राजी अलीखाँ का पोता और शेख का भान्जा था, बादशाह के बुलाने पर आगरे से चल कर उसकी सेवा मे उपस्थित हुआ। वह खानदानी सरदार था, इसलिये उसे हजारी मन्सब प्रदान किया गया और यह सोचा गया कि इसके कारण देश में अच्छा प्रभाव उत्पन्न होगा। अब्बुलफजल को प्रबन्ध के लिये जहाँगीर के इलाके से बड़ा इलाका मिला था। अकबर-नामे का अध्ययन करने से लोगों के मन के हाल जगह-जगह खुलते हैं। इस युद्ध मे जो घटना घटी थी, यहाँ केवल उसके विवरण का अनुवाद दे दिया जाता है। शेख स्वयं लिखते हैं—
"इस वर्ष साम्राज्य मे जो बडी बड़ी घटनाएँ हुई, उनमे सब से बडी घटना शाहजादे की अयोग्यता और अनुचित आचरण है। वह राणा उदयपुर के कान उमेठने के लिये भेजा गया था। लेकिन उसने आनन्द-मंगल, मद्य-पान और बुरे लोगों के साथ मे कुछ समय अजमेर में ही बिता दिया। फिर उदयपुर को उठ दौडा। उधर से राणा ने आकर हलचल मचा दी और बसे हुए स्थान लूट लिए। माधवसिंह को सेना देकर उधर भेजा। राणा फिर पहाड़ो में घुस गया और लौटती हुई सेना पर उसने रात के समय छापा मारा। बादशाही सरदार अड़े, परन्तु क्या हो सकता था। विफल होकर लौट आए। यह कार्य अच्छी तरह

से होता हुआ न दिखाई दिया। मुसाहबों के कहने से शाहजादे ने इसलिये पंजाब जाने का विचार किया कि वहाँ चलकर मन के हौसले निकाले जायँ। अचानक समाचार मिला कि बंगाल में अफगानों ने उपद्रव मचाना आरम्भ कर दिया है। राजा मानसिंह ने उधर का मार्ग दिखलाया। उस चढाई को अपूर्ण छोड कर चढ़ दौडा। आगरे से चार कोस ऊपर चढ कर जमना पार उतरा। मरियम मकानी को सलाम करने भी न गया। इन चालों से वह दु खी हुई। फिर भी प्रेम के मारे आप पीछे गई। सोचा कि सम्भव है कि आज्ञाकारिता के मार्ग पर आ जाय। उनके आने का समाचार सुनते ही शाहजादा शिकारगाह से नाव पर बैठा और झट नदी के मार्ग से आगे बढ गया। वह निराश होकर लौट आई। उसने इलाहाबाद पहुँच कर लोगों की जागीरें जब्त कर लीं। विहार का खजाना तीस लाख से भी अधिक था। वह ले लिया और बादशाह बन बैठा। बादशाह को उसके साथ असीम प्रेम था। कहनेवालों ने वास्तविक से भी अधिक बातें बनाई और लिखनेवालों ने प्रार्थना-पत्र भेज कर समझाई। परन्तु पिता को किसी बात पर विश्वास न हुआ। आज्ञा-पत्र भेज कर उससे समाचार पूछा तो उसने अपनी राजनिष्ठा की एक लम्बी-चौडी कहानी लिख भेजी और कहा कि मैं निर्दोष हूँ और सेवा मे उपस्थित होता हूँ।"

इस बीच मे अब्बुलफजल निरन्तर अपना काम कर रहे थे। बहादुरखाँ और उसके सरदारों को बराबर पत्र लिखते थे जिनका कहीं थोडा और कहीं पूरा प्रभाव प्रकट होता था। एक अवसर पर अपने प्रिय सम्राट् के सम्बन्ध मे लिखते हैं—

"लाल बाग मे आकर विश्राम किया। उस बाग की शोभा वर्णन करने का काम इस लेखक के सपुर्द था। मैं देर तक नम्रता तथा अधीनतापूर्वक धन्यवाद देता रहा। मेरे लिये आज्ञा-कारिता तथा सेवकों के उपयुक्त आचरण करने के द्वार खुले।"

आसीर की विजय

आसीर * पर्वत के ऊपर एक बहुत अच्छा और मजबूत किला है। ऊँचाई और मजबूती में और कोई किला उसकी समता नहीं कर सकता। उत्तर की ओर पर्वत के बीच मे माली का किला है। जो आसीर के उस अनुपम और अद्भुत किले में जाय, वह इस किले मे से होकर जाय। इस किले के उत्तर मे छोटी माली है। इसकी थोडी सी दीवार तो हाथ की बनाई हुई है और बाकी पहाड़ की धार दीवार बन गई है। दक्षिण मे ऊँचा पहाड़ है जिसका नाम करदह है। इसके पास की पहाड़ी साँपिन कहलाती है। विद्रोहियो ने प्रत्येक स्थान को तोपों और सैनिको से दृढ़ कर रखा था। वे अदूरदर्शी सोचते थे कि यह टूट न सकेगा। अनाज मँहगा, मंडियाँ दूर, अकाल से सब लोग दु:खी हो रहे थे। उधर किलेवालो ने आस-पास के लोगों को धन देकर फुसला लिया था।

बादशाही सरदार अपने अपने मोर्चों से आक्रमण करते थे, पर शत्रु पर कुछ भी प्रभाव न पड़ता था। शेख ने एक पहाड़

---

* यह किला आसा अहीर का बनवाया हुआ है जो किसी समय में बड़ा साहसी और विजयी वीर था। वह असंख्य धन-सम्पत्ति और कोष उस किले की नींव में दबाकर संसार से उठ गया था।

की घाटी से एक ऐसे चोर रास्ते का पता लगाया जहाँ से अचानक माली की दीवार के नीचे जा खड़े हो। बादशाह से निवेदन करके आज्ञा ले ली। जो अमीर घेरे में परिश्रम कर रहे थे, उन सबसे मिल कर निश्चय किया कि अमुक समय में आक्रमण करूँगा। जब नगाड़े और करनाय का शब्द सुनाई पड़े, तब तुम सब लोग भी नगाड़े बजाते हुए निकल पड़ना। सब लोगों ने विवश होकर यह बात मान तो ली, पर बहुतों को यह बात कहानी सी ही जान पड़ी।

एक दिन बहुत अँधेरी रात थी और वर्षा हो रही थी। कुछ विशिष्ट सिपाहियों की टोलियाँ बना कर अपने साथ ले लीं और धीरे-धीरे साँपिन पहाड़ी पर चढ़ते रहे। पिछली रात के समय सेना ने उसी चोर रास्ते से होकर माली का द्वार जा तोड़ा। बहुत से साहसी वीर किले में घुस गए और वहाँ नगाड़े तथा करनाय बजाने लगे। यह सुनते ही अब्बुलफजल स्वयं दौड़े। पौ फटने के समय सब लोग वहाँ जा पहुँचे। अब्बुलफजल दूसरी ओर से रस्से डाल कर सब से पहले आप किले में जा कूदे। फिर और वीर भी च्यूँटियों की तरह पंक्ति बाँध कर चढ़ गए। थोड़ी ही देर में सब शत्रु नष्ट हो गए। वहाँ से शेख आसीर के किले की ओर चल पड़े, क्योंकि माली पर अधिकार हो ही गया था। इस पराजय के कारण बहादुरखाँ का साहस जाता रहा। उधर से समाचार आया कि दानियाल और खानखानाँ ने अहमदनगर जीत लिया। सब से बड़ी कठिनता यह हुई कि किले में बीमारी फैल गई और अनाज के खेत ऐसे सड़ गए कि मनुष्यों का तो कहना ही क्या, पशु तक मुँह न

डालते थे। प्रजा और सरदार सब के जी छूट गए। कुछ समय तक आगा-पीछा होता रहा। अन्त मे उन्होंने घबरा कर आसीर का किला भी सौंप दिया। यह घटना सन् १००९ हि० (सन् १६०१ ई०) की है।

सुलतान बहादुर गुजराती के गुलामों या दासों में से एक पुराना बुड्ढा था जो सुलतान का अधिकार और वैभव नष्ट हो जाने पर (हुमायूँ के शासन-काल के आरम्भ मे) यहाँ आ बैठा था। किले की कुंजियाँ उसी के सपुर्द थीं। अब वह अन्धा हो गया था। उसके कई जवान लडके थे। चौकसी के बुर्ज उनमे से एक एक के हवाले थे। जब उसने सुना कि किला शत्रुओं को सौंप दिया गया, तब उसने प्राण त्याग दिए। अब जरा उसके पुत्रों का साहस देखिए। पिता की मृत्यु का समाचार सुन कर वे बोले कि अब इस राज-लक्ष्मी का प्रताप नष्ट हो गया। अब जीवित रहना निर्लज्जता-पूर्ण है। यह कह कर उन सब ने भी अफीम खा ली। नासिकवालो ने पहले तो शरण माँगी थी, पर अमीरो की उदासीनता के कारण वे भी बलवान् होते गए और उनका विषय भी एक विकट प्रश्न बन गया। खानखानाँ को अहमदनगर और उन्हे अच्छी खिलअत और खासे का घोड़ा और झंडा तथा नगाडा देकर उधर रवाना किया।

उधर तो अकबर का प्रताप देशो पर विजय प्राप्त करने में अद्भुत चमत्कार दिखला रहा था, उधर शुभचिन्तको के निवेदन-पत्र तथा मरियम मकानी का पत्र आया कि जहाँगीर खुल्लम-खुल्ला विद्रोही हो गया। बादशाह ने सब काम उसी प्रकार छोड़े और अमीरो को सेवाएँ सौंप कर आप उधर चल पड़ा।

नासिक का झगडा आरम्भ हो गया था। जब उन्हे बादशाह का आज्ञापत्र पहुँचा कि खानखानाँ के साथ जाओ, तब वे चकित रह गए। यहाँ तो उन्होने बहुत से वीरो को समेटा था। नासिक का किला और विद्रोहियो की गरदन टूटना चाहती थी, ईश्वर जाने, जो बहाने बनानेवाले बादशाह की सेवा मे उपस्थित थे, उन्होने (अर्थात् खानखानाँ के पक्षपातियो ने) बादशाह की मति बदल दी या उन्हे वास्तविक बातो का पता न लगा। खानखानाँ का पक्षपात सीमा से बढ गया जो मुझे यहाँ से बुला लिया। विवश होकर अपने पुत्र अब्दुर्रहमान को वहाँ का काम सौप कर बादशाह की आज्ञा का पालन किया। जब यहाँ पहुँचे, तब खानखानाँ कभी तो उन्हे मन्त्रणा और परामर्श मे रखते थे, कभी किसी उद्दंड को दबाने के लिये और कभी किसी दक्खिनी सरदार को डराने-धमकाने के लिये भेजते थे। शेख मन मे तो दु खी थे, परन्तु उनकी प्रकृति ही कुछ ऐसी थी कि बादशाह की आज्ञाओ का पालन इस प्रकार करते थे कि मानो स्वयं अपनी इच्छा से ही कर रहे है। उनका हृदय धैर्य का पर्वत था और साहस किसी बहुत बडे नद के समान था। यहाँ भी आज्ञापालन को अपना कर्त्तव्य समझ कर समय की प्रतीक्षा करते थे।

यह दुनिया भी बहुत ही विलक्षण और चालबाज है। यह धर्मनिष्ठ व्यक्ति को भी नास्तिक बना देती है। पहले शेख और खानखानाँ मे इतनी अधिक मित्रता थी कि यदि दोनो के पत्रव्यवहार देखे जायँ तो ऐसा मालूम होगा कि मानो प्रेमी और प्रेमिका के पत्र है। जब दोनो का मामला इस बूढी दुनिया पर आ पडा तो ऐसे बिगडे कि सब भूल गए।

शेख और उनका पुत्र दोनो ही बुलाए जाने पर भी अकबर के दरबार मे अपनी बुद्धिमत्ता और वीरता से ऐसे ऐसे काम करते थे कि देखनेवाले चकित हो जाते थे।

अकबर-नामे के ३६ सन् जलूसी के अन्त में एक स्थान पर कुछ ऐसी लिखावट मिलती है जो अच्छी तरह देखनेवाले को यह बतला देती है कि उस योग्य कार्यकर्त्ता को चाहे जो सेवा सौंपी जाय, परन्तु उसका आतंक कितना अधिक था।

लिखते हैं—"इस लेखक को नासिक की चढ़ाई पर भेजा। मार्ग मे शाहजादे की सेवा का सौभाग्य प्राप्त किया। उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि हमारी सेवा मे आ जाओ। मैंने भी स्वीकृत कर लिया। वही राज्य की चढ़ाई थी जिसकी आफत मेरे सिर रखना चाहते थे। मैंने उत्तर दिया कि मुझे श्रीमान् की आज्ञा का पालन करने मे कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु आप काम पर पूरा ध्यान नहीं देते। आपने ऐसा भारी काम कुछ लोभी अदूरदर्शियो पर छोड दिया है। जहाँ इतनी लापरवाही और सकुचित दृष्टि हो, वहाँ काम किस प्रकार चल सकता है? खैर, किसी प्रकार कुछ समझे। स्वयं सब काम करने का भार लिया और खिलअत तथा एक घोड़ा देकर मुझे उधर भेजा। जमधर और नामवर हाथी भी प्रदान किया।"

मोतमिदखाँ ने इकबालनामे में लिखा है कि सन् १००९ हि० (१६०१ ई०) मे हयनाल सहित बीस हाथी और दस बढ़िया घोडे पुरस्कार में मिले। सन् १०१० हि० मे एक खासे का घोड़ा और उसके साथ एक घोड़ा अब्दुर्रहमान को भी प्रदान किया। इसके बाद बीस घोड़े फिर भेजे। एक घोड़ा शेख अब्दुलखैर

को भी प्रदान किया और कहा कि शेख को भेज दो। इसी सन् मे शेख को पचास हजार रुपया पुरस्कार मिला। लेकिन इस प्रकार के पुरस्कारो की कोई सीमा नहीं थी, क्योंकि ऐसे पुरस्कार सदा मिलते रहते थे। इसी वर्ष शेख को पंज-हजारी मन्सब भी प्रदान किया गया। तात्पर्य यह कि लगभग तीन वर्ष इसी प्रकार दक्षिण मे बीते। एक हाथ मे झंडा और तलवार थी और दूसरे हाथ मे कागज और कलम थी। सन १०१० हि० के रमजान मास में वहीं अकबर-नामे का तीसरा खंड समाप्त किया होगा, और उसी से उनकी रचनाओ का अन्त भी हो गया।

इस अरस्तू ने अपने सिकन्दर के हृदय पर यह बात भली भाँति अंकित कर दी थी कि सेवक केवल श्रीमान् के व्यक्तित्व से ही सम्बन्ध रखता है। और वास्तव मे यही बात थी भी। वह कहता था और सच कहता था कि आपकी शुभ कामना करना और आपके कामो के लिये अपने प्राण निछावर कर देना ही मेरा धर्म और कर्त्तव्य है। मैं इसी को सब कामो से बढ कर समझता हूँ। जिसकी बात होगी, स्पष्ट रूप से निवेदन कर दूँगा। मुझे अमीरो बल्कि शाहजादो से भी कोई मतलब नहीं है। शेख वास्तव मे सदा ऐसा ही करते भी थे, इसलिये अकबर के हृदय मे भी यह बात भली भाँति अंकित हो गई थी। सब शाहजादे और उनमें भी विशेषत सलीम इन्हें अपना चुगली खानेवाला समझता था, और इसी लिये सब इनसे अप्रसन्न रहते थे। अकबर ने दक्षिण के युद्ध से लौटकर सलीम (जहाँगीर) के साथ ऊपर से देखने मे अपना सम्बन्ध बिलकुल ठीक कर लिया था। सन–
१०११ हि० (१६०२ ई०) मे फिर सलीम ने सीधा मार्ग

छोड़कर उलटे मार्ग पर चलना आरम्भ किया। इस वार वह ऐसा विगड़ा कि अकवर घवरा गया। उसे इस वात का भी ध्यान था कि शाहजादा सलीम को अमीर लोग साम्राज्य का उत्तराधिकारी समझते हैं, इसलिये वे अवश्य ही अन्दर अन्दर उससे मिले होंगे। मानसिह की वहन उससे व्याही हुई थी, जिसके गर्भ से शाहजादा खुसरो उत्पन्न हुआ था। खान आजम की कन्या खुसरो से व्याही हुई थी। इसलिये वादशाह ने अव्वुलफजल को लिखा कि युद्ध की सव व्यवस्था अपने पुत्र अव्दुर्रहमान को सौंप दो और तुम अकेले इधर चले आओ। अव्वुलफजल ने इसके उत्तर में वहुत ही धैर्यपूर्वक निवेदन-पत्र भेजा जिसमें लिखा था कि ईश्वर के अनुग्रह और आपके प्रताप से सव काम ठीक हो जायगा। चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह सेवक श्रीमान् की सेवा में उपस्थित हो रहा है।

इस प्रकार अव्वुलफजल ने अहमदनगर में अव्दुर्रहमान को युद्ध सम्वन्धी सव वातें समझा-वुझा कर लश्कर और सामान वहीं छोड दिया और स्वयं केवल उन आदमियो को लेकर चला, जिनके विना काम नहीं चल सकता था। शेख से सलीम वहुत अप्रसन्न था। वह यह भी जानता था कि यदि शेख वादशाह की सेवा मे पहुँच जायँगे, तो मेरी ओर से वादशाह और भी अप्रसन्न हो जायँगे। इसलिये वह इधर उधर के राजाओ और सरदारो से मिल कर ऐसे उपाय करने लगा जिसमे स्वयं उनका काम खराव न हो। जव उसने सुना कि शेख दक्खिन मे अकेला चला है, तव उसने सोचा कि यह वहुत अच्छा अवसर है। उन दिनो राजा मधुकर शाह का पुत्र राजा नरसिंह-

देव, जो वीरसिंह देव जी उडेछा (ओडछा) बुंदेला का सरदार था, डाके डाल कर अपना समय बिताता था। वह इस विद्रोह में शाहजादे के साथ था। सलीम ने उसे गुप्त रूप से लिख भेजा कि किसी प्रकार मार्ग में शेख को मार डालो। यदि ईश्वर की कृपा से मुझे राज-सिंहासन प्राप्त हुआ, तो तुम्हें यथेष्ट पुरस्कार और पद आदि से सम्मानित किया जायगा। वह बादशाही दरबार में बहुत अप्रतिष्ठित हुआ था, इसलिये उसने बहुत प्रसन्नता से यह सेवा स्वीकृत कर ली और दौडा हुआ अपने इलाके में जा पहुँचा।

जब शेख उज्जैन में पहुँचा, तब समाचार मिला कि राजा इस प्रकार इधर आया हुआ है। शेख के जान निछावर करने-वाले साथियों ने कहा कि हमारे साथ बहुत ही थोडे आदमी हैं। यदि यह समाचार सत्य हो तो उसका सामना करना बहुत कठिन होगा। इसलिये अधिक उत्तम यह है कि यह मार्ग छोड कर चाँदे की घाटी से चलें। परन्तु शेख की मृत्यु आ चुकी थी इसलिये उन्होंने ला-परवाही से कहा कि ये सब लोग बकते हैं। चोर में इतना साहस कहाँ जो बादशाह के सेवकों का मार्ग रोके।

सन १०११ हि० के रबी उल् अव्वल मास की पहली तारीख थी। शुक्र का दिन और प्रातःकाल का समय था। शेख अपने पडाव से उठा। दो तीन आदमी साथ थे। बाग डाले जंगल का आनन्द लेता हुआ, ठंढी-ठंढी हवा खाता हुआ और बातें करता हुआ चला जाता था। बरा की सराय वहाँ से आध कोस रह गई थी और अन्तरी का कस्बा तीन कोस था। सवार ने दौड कर निवेदन किया कि वह सामने धूल उड रही है और

इधर को ही आती हुई जान पड़ती है। शेख ने बाग रोकी और ध्यान से देखा। उसके साथ जान निछावर करनेवाला गदाईखाँ अफ़गान था। उसने निवेदन किया कि यह ठहरने का समय नहीं है। शत्रु बहुत वेग से आता हुआ जान पड़ता है। हमारे साथ आदमी बहुत थोडे हैं। इस समय उचित यही है कि तुम धीरे-धीरे चले जाओ। मै इन भाइयों और साथियों सहित यथा-साध्य प्रयत्न करके रोकता हूँ। हमारे मरते-मारते तक अवकाश है। यहाँ से अन्तरी कस्वा दो तीन कोस है। अच्छी तरह वहाँ पहुँच जाओगे। फिर भय की कोई बात न रह जायगी। राय-रायान और राजा राजसिंह दो तीन हजार आदमियो के साथ वहाँ उतरे हुए हैं। शेख ने कहा कि गदाईखाँ, बडे आश्चर्य की बात है कि ऐसे अवसर पर तुम ऐसा परामर्श देते हो। जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह ने मुझ फकीर को मसजिद के कोने से निकाल कर सदर मसनद पर बैठाया। मैं आज उनकी इस निशानी को मिट्टी मे मिला दूँ और इस चोर के आगे से भाग जाऊँ, तो भला किस मुँह से और फिर किस प्रतिष्ठा से मैं अपने बराबरवालो के साथ बैठ सकूँगा? यदि जीवन समाप्त हो चुका है और भाग्य मे मरना ही लिखा है, तो क्या हो सकता है? यह कहकर बहुत वीरता से घोड़ा उठाया। गदाईखाँ फिर घोडा मार कर आगे आया और बोला कि सिपाहियो को ऐसे मौके बहुत पड़ते है। यह अड़ने का समय नहीं है। पहले अन्तरी में जाओ और वहाँ से आदमियों को साथ लाकर फिर इनपर आक्रमण करो। अपना बदला चुकाना तो सिपाहियो का पेच है। परन्तु शेख की मृत्यु आ

चुकी थी, इसलिये वह किसी प्रकार न माना। यहाँ यह बातें हो रही थीं कि शत्रु लोग सिर पर आ पहुँचे। उन्होंने हाथ हिलाने का भी अवकाश न दिया। शेख बहुत वीरता से तलवार पकड कर डटा। कुछ अफगान साथ थे, जो जान निछावर करके कीर्तिशाली बने। शेख को यों तो कई घाव लगे थे, लेकिन बरछे का एक ऐसा घाव लगा कि घोडे से नीचे गिर पडा। जब युद्ध का निपटारा हो गया, तब लाश की तलाश होने लगी। जो साहसी किसी समय अकबर का सिंहासन पकड कर निवेदन और आपत्तियाँ करता था और चिन्तन रूपी घोडे पर चढ कर विचार-जगत् को परास्त करता था, एक वृक्ष के नीचे निर्जीव पडा है। घावों से रक्त बह रहा है और इधर उधर कई लाशें पडी है। उसी समय सिर काट लिया और शाहजादे के पास भेज दिया। शाहजादे ने पाखाने में डलवा दिया। कई दिनों तक वहीं पडा रहा। भाग्य में यही लिखा था! और नहीं तो शाह-जादे की अप्रसन्नता कौन-सी ऐसी बडी बात थी। वह कितना ही अधिक अप्रसन्न होता, पर कह सकता था कि देखो, खबर-दार, शेख का बाल न बाँका होने पावे। उसे जीवित पकड लाओ और हमारे समक्ष उपस्थित करो। लेकिन शराबी-कबाबी और अनुभवहीन लडके को इतना ज्ञान कहाँ था कि समझता कि जीवित व्यक्ति पर तो हर समय अधिकार रहता है। जब मर ही गया, तब क्या हो सकता है!

अकबर के अमीरों के हृदय का भाव एक इस बात से प्रकट हो जाता है कि सोफजनाशर्या ने तारीख कही थी—

تیغ اعجاز نبی الله سر باغی برید -

अर्थात्—ईश्वर के नबी की करामात रूपी तलवार ने विद्रोही का सिर काटा।

लेकिन कहते हैं कि स्वप्न में स्वयं शेख ने उससे कहा था कि मेरे मरने की तारीख तो स्वयं "वन्द. अब्बुलफजल" के अक्षरों से निकलती है। दुःख है कि मुल्ला वदायूनी उस समय जीवित नहीं थे। यदि होते तो बड़ी खुशियाँ मनाते और ईश्वर जाने क्या-क्या फूल-पत्तियाँ लगा कर इस घटना का उल्लेख करते।

जहाँगीर जिस प्रकार हर एक काम ला-परवाही से कर गुजरता था, उसी प्रकार लापरवाही से अपनी तुजुक मे लिख भी लेता था। जब उसने सिंहासन पर आसीन होकर अमीरों को मन्सब प्रदान किए हैं, तब लिखता है कि बुँदेले राजपूतों मे से राजा नरसिंह देव पर मेरी कृपादृष्टि है। वीरता, सज्जनता और सरलता आदि गुणो में वह अपनी बराबरी के और लोगों से विशेषता रखता है। उसे तीन हजारी मन्सब प्रदान किया गया है। उसकी इस पद-वृद्धि का कारण यह है कि आखीर के दिनो मे पिता जी ने अब्बुलफजल को दक्षिण से बुलाया। भारतवर्ष के शेखजादो मे वह अपने पांडित्य तथा बुद्धिमत्ता के कारण विशेषता रखता था और उसने अपनी इस प्रकट अवस्था को प्रेमपूर्ण व्यवहार के अलंकार से अलंकृत कर के भारी मूल्य पर पिता जी के हाथ वेचा था। उसका हृदय मेरी ओर से स्वच्छ नहीं था। सदा प्रकट तथा गुप्त रूप से मेरी चुगली खाया करता था। उन दिनों, जब कि दुष्ट उपद्रवियो के उपद्रव तथा बहकाने के कारण पिता जी मुझसे कुछ अप्रसन्न थे, यह निश्चित

था कि यदि वह पिता जी की सेवा मे उपस्थित हो जायगा, तो इस उडती हुई धूल को और भी अधिक बढा देगा, और मेरे सम्बन्ध मे बाधक होगा और ऐसा कर देगा कि मुझे विवश होकर उपयुक्त सेवाएँ करने से वंचित रहना पडेगा। नरसिह देव का देश उसके मार्ग मे पडता था, और उन दिनो वह भी विद्रोहियो मे था। मैने बार बार उसके पास संदेसे भेजे कि यदि तुम इस उपद्रवी को रोक कर इसकी हत्या कर डालोगे तो तुम पर पूर्ण अनुग्रह किया जायगा। सामर्थ्य ने उसका साथ दिया। जिस समय शेख उसके प्रान्त मे से होकर जा रहा था, उस समय वह आकर उस पर टूट पडा। थोडे से साहस मे उसके साथियो को तितर-बितर कर डाला और उसका सिर इलाहाबाद मे मेरे पास भेज दिया। यद्यपि इस घटना से स्वर्गीय पिता जी को बहुत दु ख हुआ, लेकिन कम से कम इतना अवश्य हुआ कि मै निश्चिन्त और निर्भय होकर उनकी सेवा मे उपस्थित होने के लिये गया। फिर धीरे धीरे मन की मैल सफाई मे बदल गई।

भारतवर्ष के इतिहास-लेखक आखिर इन्ही बादशाहो की प्रजा थे। यदि वे वास्तविक बाते लिखते तो बेचारे रहते कहाँ ?

मुल्ला मुहम्मद कासिम फरिश्ता अपने विश्वसनीय इतिहास मे इस घटना के सम्बन्ध मे केवल इतना लिखते है कि इस सन मे दक्षिण से शेख अब्बुलफजल बादशाह की सेवा मे उपस्थित होने के लिये आ रहे थे। मार्ग मे डाकुओ ने उन्हे मार डाला। बस। और इनका यह लिखना कुछ अनुचित भी नहीं था। पाठक देख सकते है कि वास्तविक बाते लिखने के अपराध मे मुल्ला अब्दुल कादिर के घर और उनके पुत्र पर जहाँगीर ने

हाथों क्या क्या विपत्तियाँ पड़ीं। और यदि वे स्वयं जीवित रहते तो ईश्वर जाने उनकी क्या गत होती।

डिलीट नामक एक डच यात्री ने इस घटना का विवरण लिखा है। उसे अपने लेख में किसी का भय नहीं था। इसलिये उसने जो कुछ लिखा, वह यदि ठीक ही लिखा तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। उसने लिखा है कि सलीम इलाहाबाद में आया और साम्राज्य पर अपना अधिकार जताने लगा। उसने अपने नाम का खुतबा पढवाया और अशर्फियाँ तथा रुपए भी अपने नाम से ढलवाए। बल्कि इस प्रकार की अशर्फियाँ और रुपए आदि महाजनों के लेन-देन में डलवा कर आगरे तक भेजवाए। उद्देश्य यह था कि बाप देखे और जले। बाप ने यह सब हाल शेख को लिखा। उसने उत्तर दिया कि श्रीमान् निश्चिन्त रहें। जहाँ तक शीघ्र हो सकता है, मैं सेवा में उपस्थित होता हूँ और शाहजादे को, चाहे उचित और चाहे अनुचित रूप से, आपकी सेवा में उपस्थित होना पड़ेगा।

कई दिनों में सब कामों की व्यवस्था करके शेख ने दानियाल से आज्ञा ली। दो तीन सौ आदमी साथ लेकर चल पड़ा। आज्ञा दी कि असबाब पीछे आवे। सलीम को सब समाचार मिल रहे थे। वह जानता था कि शेख के मन में मेरे प्रति कैसे भाव हैं। वह भयभीत हुआ कि अब पिता और भी अप्रसन्न होगा। इसलिये जिस प्रकार हो, शेख को रोकना चाहिए। राजा उज्जैन के सूबे में रहता था। उसे लिखा कि नरवर और ग्वालियर के आस-पास घात में लगे रहो और जहाँ अवसर पाओ, उसका सिर काट कर भेज दो। इसके लिये बहुत कुछ

पुरस्कार तथा पंज-हजारी मन्सब का वचन दिया। राजा ने प्रसन्नता से स्वीकृत कर लिया। एक हजार सवार और तीन हजार पैदल लेकर घात मे आ लगा और जासूसी के लिये करावल इधर-उधर फैला दिए कि समाचार देते रहे। शेख को इस बात का बिलकुल पता न था। जब काले बाग मे पहुँचा और नरवा की ओर बढ़ा, तब राजा को समाचार मिला। वह अपने साथियो के साथ आकर अचानक टूट पडा और चारो ओर से घेर लिया। शेख और उसके साथी बहुत वीरतापूर्वक लडे, पर शत्रुओ की संख्या बहुत अधिक थी, इसलिये सबके सब कटकर खेत रहे। शेख का शव देखा गया तो उसमे बारह घाव थे। एक वृक्ष के नीचे पडा था। वहाँ से उठाकर सिर काटा और शाहजादे के पास भेज दिया। वह बहुत प्रसन्न हुआ।

इस विषय मे तैमूरी वश के सभी इतिहास-लेखक शेख को दोषी ठहराते है और कहते है कि वह अहमन्य था और अपनी बुद्धि के आगे किसी को कुछ समझता ही न था। यहाँ भी उसने अहमन्यता की और उसका फल पाया। परन्तु वास्तव मे यह विषय विचारणीय है। इसमे कोई सन्देह नहीं कि उसे अपने उत्कृष्ट गुणो तथा बुद्धिमत्ता का ज्ञान था। अकबर के दरबार मे उसने जी तोड कर जो जो परिश्रम किए थे, और जान निछावर करके जो जो सेवाएँ की थीं, उन पर उसे पूरा भरोसा था। साथ ही उसने यह भी सोचा होगा कि मेरे जैसे व्यक्ति के लिये शाहजादा कभी ऐसी आज्ञा न देगा कि जान से मार डालो। बल्कि यह भी सोचा होगा कि उस शराबी-कबाबी लडके ने कह भी दिया होगा तो भी जो सरदार होगा, वह मुझे मार डालने का कभी

विचार न करेगा। बहुत होगा तो बाँध कर उसके सामने उपस्थित कर देगा। अमीर लोग विद्रोह करते हैं, सेना की सेना काट डालते हैं, देश लूट कर उजाड़ देते हैं, फिर भी तैमूरी दरबारो मे उनके अपराध इस प्रकार क्षमा कर दिए जाते हैं कि उनका देश और मन्सब ज्यों का त्यो उनके पास बना रहता है, बल्कि पहले से भी अधिक उच्च पद प्राप्त करते हैं। यहाँ तो कोई बात भी नहीं है। इतना ही है कि शाहजादा यह समझता है कि मैं उसके पिता से उसकी चुगलियाँ खाता हूँ। फिर इतनी सी बात के लिये मैदान से भागने और भगोडा कहलाने की क्या आवश्यकता है। मैं नामर्दी और कायरता का कलंक क्यों अपने सिर लूँ। क्यो न यहीं डट जाऊँ। अधिक से अधिक परिणाम यही होगा कि ये लोग मुझे पकड़ कर शाहजादे के सामने ले जायँगे। यदि ये सिकन्दर और अफलातून क्रोध के भूत बन जायँ, तो भी मैं इन्हे परी बनाकर शीशे मे उतार लूँ। वह तो मूर्ख शाहजादा है। दो मन्तर ऐसे फूँकूँगा कि उठ कर मेरे साथ हो जाय और हाथ बाँध कर पिता के पैरो पर जा पड़े। लेकिन वही बात है कि भावी बहुत प्रबल होती है। उसने सोचा कुछ और था, लेकिन वहाँ कुछ और ही मामला निकला। और पाठक भी जरा विचार करके देखें कि वह बुँदेला भी धाड़-मार लुटेरा ही था जो ऐसा काम कर गुजरा। कोई राजा होता और राजनीति की रीति बरतनेवाला होता तो इस जंगलीपन से शेख की हत्या न करता। न बात, न चीत, न लड़ाई का आगा, न पीछा, कुछ मालूम ही न हुआ। सैंकड़ों भेडिए थे जो थोड़ी सी भेड़ों पर आ पड़े और बात की बात मे चीर-फाड कर भाग गए।

अब इधर का हाल सुनिए कि जब शेख के मरने का समाचार दरबार में पहुँचा, तब वहाँ सन्नाटा छा गया। सब लोग चकित हो गए। सोचते थे कि बादशाह से क्या कहे, क्योंकि अकबर जानता था कि वही एक अमीर ऐसा है जो सब प्रकार से मेरा सच्चा हितैषी है, और इनमें से कोई अमीर ऐसा नहीं है जो हृदय से मेरी शुभ कामना करता हो। इसलिये लोग सोचते थे कि बादशाह के मन में न जाने क्या-क्या विचार उत्पन्न हो और किधर बिजली गिरे। तैमूरी वंश में यह पुरानी प्रथा थी कि जब कोई शाहजादा मरता था, तब उसकी मृत्यु का समाचार बादशाह के सामने बेधड़क नहीं कह देते थे। उसका वकील या प्रतिनिधि हाथ में काला रूमाल बाँध कर सामने आता था और चुपचाप खड़ा रहता था। इसका अर्थ यही होता था कि मेरे स्वामी का देहान्त हो गया।

शेख को अकबर अपनी सन्तान से भी बढ कर प्रिय समझता था, इसलिये उसका वकील भी चुपचाप सिर झुकाए हुए और हाथ में काला रूमाल बाँधे धीरे-धीरे सिंहासन की ओर बढ़ा। अकबर चकित हो गया। उसने पूछा—कुशल तो है? क्या हुआ? जब उसने सारी घटना निवेदन की, तब वह इतना अधिक शोकाकुल और विकल हुआ, जितना किसी पुत्र के लिये भी नहीं हुआ था। कई दिनों तक उसने दरबार नहीं किया और न किसी अमीर से बात की। दुःख करता था, रोता था, बार-बार छाती पर हाथ मारता था और कहता था कि हाय शेख् जी, यदि तुम्हें साम्राज्य लेना था तो मुझे मार डालना चाहिए था, शेख को भला क्या मारना था। जब सिर कटा हुआ उसका शव

आया, तब यह शेर पढ़ा—

شیخ ما از شوق بےحد چوں سوئے ما آمدہ—
زاشتیاق پائے بوسی بےسروپا آمدہ—

अर्थात्—जब मेरा शेख बेहद शौक से मेरी ओर आया, तब मेरे पैर चूमने की प्रबल कामना से बिना सिर और पैर के आया।

उस समय शेख की ५२ वर्ष और कुछ महीनो की अवस्था थी। मरने के दिन नहीं थे। परन्तु मृत्यु न दिन देखती है और न रात। जब आ जाय, तभी उसका समय है।

अब्बुलफजल की कबर अब तक अन्तरी मे मौजूद है जो ग्वालियर से पाँच छ. कोस की दूरी पर है। वहाँ महाराज सिन्धिया का राज्य है। उस पर एक छोटी-सी साधारण इमारत बनी है। अब्बुलफजल ने अपने पिता और माता की हड्डियाँ लाहौर से इसलिये आगरे पहुँचाई थीं, जिसमे उनकी वसीयत पूरी हो। परन्तु स्वयं उसकी लावारिस लाश का उठानेवाला कोई न हुआ। वह जहाँ गिरा, वही मिट्टी मे मिल गया। यह उनके मन के प्रकाश तथा अच्छी नीयत की बरकत है कि आज तक अन्तरी के लोग प्रत्येक बृहस्पतिवार को वहाँ हजारो दीपक जलाते और चढ़ावे चढ़ाते हैं।

अकबर अपने लडके को तो क्या कहता, राय-रायान को सेना देकर भेजा कि जाकर नरसिंहदेव को उसके दुष्कृत्य का दड दो। अब्दुर्रहमान को आज्ञापत्र लिख भेजा, जिसका आशय यह था कि तुम राय-रायान के साथ हो जाओ और अपने पिता का बदला चुका कर संसार पर यह बात प्रकट कर दो कि तुम

अपने पिता के पुत्र हो। ये दोनो बहुत दिनों तक जंगलो और पहाडो मे उसके पीछे मारे मारे फिरे, लेकिन वह कहीं न ठहरा। लडता रहा और भागता रहा। शेख ने सच कहा था कि डाकू है। वह किस तरह जम कर लडता! आखिर दोनो थक कर चले आए।

दु ख की कलम और अभाग्य की स्याही से लिखने योग्य बात यह है कि जो कुछ योग्यता और गुण था, वह अब्बुलफजल और फैजी के साथ इस संसार से उठ गया। इतने भाई थे और इकलौता लडका था। सब खाली रह गए।

अब्बुलफजल का धर्म

अकबरी दरबार की सैर करनेवालो को मालूम है कि शेख मुबारक का क्या धर्म था। अब्बुलफजल भी उन्हीं के अनुकरण पर चलनेवाला उनका पुत्र था। इसी से पाठक समझ सकते है कि उसके धार्मिक विचार भी पिता के ही विचारो से उत्पन्न हुए होगे। हाँ, ससार के रग-ढग से उसकी रगत मे भी कुछ अन्तर आ गया था। यद्यपि ये सब बाते शेख मुबारक, फैजी और मुल्ला साहब आदि के प्रकरणो मे बतलाई जा चुकी है, तथापि सच तो यह है कि मुझे भी इनके बार-बार कहने मे कुछ विशेष आनन्द आता है। इसलिये मै फिर एक बार अपने दिल का अरमान निकालता हूँ। सम्भव है कि बातो मे वास्तविक बात के ऊपर से परदा उठ जाय और उसका सच्चा स्वरूप सामने आ जाय। पाठको को इस बात का पहले से ही ज्ञान है और अब फिर उन्हे यह बात मालूम होनी चाहिए कि शेख मुबारक एक

वहुत वड़ा तत्वज्ञ पंडित था और ऐसा प्रकाशमान् मस्तिष्क लेकर आया था जो विद्या रूपी दीपक के लिये उसका प्रकाश वढ़ानेवाली कंदील के समान था। उसने प्रत्येक विद्या के ग्रन्थ पूर्ण पंडितों से पढे थे और स्वयं भी विद्यार्थियो को पढ़ाता था। उसकी दृष्टि सव प्रकार की विद्याओ पर समान रूप से छाई हुई थी। इसके अतिरिक्त उसे विद्या सम्बन्धी जो कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ था, वह ग्रन्थो के शब्दों तक ही परिमित नहीं था, और वात वही थी जो उसकी समझ में आ गई थी।

उस समय और भी कई विद्वान् थे जो पुस्तकी विद्या मे चाहे पूरे रहे हो या अधूरे, परन्तु भाग्य के पूरे अवश्य थे, जिसके कारण वे अपने समय के वादशाह के दरवार में पहुँच कर वादशाही ही नहीं, वल्कि खुदाई के अधिकार जतला रहे थे। उन लोगो के हाथ घी मे तर और उँगलियो को सम्पत्ति की कुंजियाँ देखकर वड़े वड़े गद्दी-नशीन विद्वान् शेख और मसजिदो के अधिकारी उनके चारों ओर वैठकर उन्हीं के नाम जपा करते थे। शेख मुवारक को शाही दरवार मे जाने का शौक नहीं था। ईश्वर ने उसका हृदय ही ऐसा वनाया था कि जव वह अपनी मसजिद के चवूतरे पर वैठता था और उसके सामने कुछ विद्यार्थी पुस्तकें खोलकर वैठते थे, तव वह ऐसा लहकता और चहकता था कि उस प्रकार का आनन्द वाग मे न तो फूल को मिलता था और न वुलवुल को। सच वात तो यह है कि वादशाहो के दरवार और अमीरों की सरकार की ओर उसके शौक का पैर उठता ही नहीं था। हाँ, जव उक्त विद्वान् लोग किसी दीन पर अनुचित रूप से अधिकार जतलाते थे और फतवो के वल

पर अत्याचार करते थे और वह आकर इनकी सेवा मे निवेदन करता था, तब ये उसे आयतो आदि की ढाल मे तैयार कर देता था, जिससे उसके प्राण बच जाते थे। इस बात मे वह किसी की परवाह नही करता था। उन लोगो को भी इस बात की खबर मिल जाती थी और वे अपने जलसो मे उग्र शब्दो मे इसकी चर्चा करते थे। कभी शीया बतलाते थे, कभी महदवी ठहराते थे, और उन दिनो ऐसे अपराधो के लिये प्राण-दण्ड ही हुआ करता था। परन्तु वह अपनी योग्यता और गुणो के बल से बलवान रहता था। सुनकर हॅस देता था और कहता था कि ये लोग है कौन और क्या है और समझते क्या हैं! कभी बात-चीत का अवसर आ पडेगा तो समझा देगे।

शेख मुबारक के इस रग-ढग ने उसे प्राय विपत्ति मे डाला। उस पर बडे बडे कष्ट आए। लेकिन उसे कुछ भी परवाह नही हुई। उनके विरोधो को वह हॅसी-खेल समझ कर निबाहता रहा। उस समय के एशिया मे प्रचलित धर्मो तथा विशेषत इस्लाम के भिन्न भिन्न सम्प्रदायो की पुस्तको पर उसका ज्ञान चॉदनी की तरह खिला हुआ था। जब शत्रुओ ने इस प्रकार पीडित करना आरम्भ किया, तब वह भिन्न भिन्न ग्रन्थो को कुछ और ही दृष्टि मे देखने लगा। जब इस प्रकार का कोई प्रश्न उपस्थित होता था, तब वह तुरन्त ग्रन्थो के वचनो से शत्रुओ की चालो को रोक देता था या उसके जोड का विरुद्ध प्रश्न दिखला कर ऐसा सन्देह उत्पन्न कर देता था कि वे लोग दिक होकर रह जाते थे। लेकिन जो कुछ कहता था, वह सोच-समझ कर, वास्तविकता की जॉच कर के और प्रमाणो

आदि के आधार पर कहता था, क्योंकि विरोधियो के फतवो मे बादशाही बल होता था। यदि इसका कथन सत्य न ठहरता तो प्राणों पर संकट आ बनता।

हुमायूँ, शेर शाह और सलीम शाह के शासन-काल मे उन लोगों की खुदाई थी। अकबर के शासन-काल मे भी कुछ वर्षों तक साम्राज्य उन्हीं के कथनानुसार चलता रहा। नवयुवक बादशाह चाहता था कि समस्त भारत मे मेरे साम्राज्य का विस्तार हो। इस देश मे भिन्न-भिन्न धर्मों और जातियो के लोगो का निवास था, इसलिये यह आवश्यक था कि वह सब लोगों के साथ अपनायत और प्रेम के साथ पैर आगे बढ़ावे। इस प्रयत्न मे उसे कुछ सफलता भी हुई थी, परन्तु उक्त विद्वान् लोग इस मार्ग मे चलने को कुफ्र और धर्म-भ्रष्टता समझते थे। अब देश का पालन करनेवाले के लिये यह आवश्यक हुआ कि ऐसे कर्मचारी रखे जो इस ढब के हो। फैजी और अब्बुलफजल सर्वथा विद्वान् थे और उनकी तबीयत मे सभी रंग थे। उन्होंने अपने स्वामी की आज्ञा और सेवा-धर्म का पालन उसकी इच्छा से भी बढ़ कर अच्छी तरह कर दिखाया। साम्राज्य के कार्यों का मूल सिद्धान्त यह रखा कि ईश्वर सब का स्वामी और सृष्टि के सब लोगो को सुखी तथा सम्पन्न करनेवाला है। हिन्दू, मुसलमान और अग्नि-पूजक आदि सब उसकी दृष्टि मे समान हैं। बादशाह ईश्वर की छाया है। उसे भी इसी बात पर ध्यान रखना उचित है। इस छोटी सी बात मे कई काम निकल आए। साम्राज्य की नींव दृढ़ हो गई। सम्राट् का सामीप्य प्राप्त हो गया। जिन शत्रुओं से प्राणों का भय था, वे आप से आप

टूट गए। हाँ, जो लोग पहले से यह समझे बैठे थे कि साम्राज्य और वैभव केवल इस्लाम का ही हक है, उनका तथा उनके वंशजो का कार-बार पहले की तरह चमकता हुआ न रह गया। उन लोगो ने इन्हे बदनाम कर दिया। पर वास्तव मे बात यही है कि ये लोग बादशाह की आज्ञा का उसकी इच्छा से भी कई दरजे बढ कर पालन करते थे। यदि बादशाह की इच्छा देखी तो अम्मामा हटा कर उसके स्थान पर खिडकीदार पगडी पहन ली, अबा उतार कर जामा पहन लिया, आदि आदि। एक हिन्दू को शेख सदर ने शरअ के अनुसार फतवा देकर मरवा डाला। इन लोगो ने बात पडने पर शेख सदर का साथ नही दिया, बल्कि बादशाह के कथन का समर्थन करते रहे। इसी सम्बन्ध मे मुल्ला साहब इन लोगो पर चोट करते है। फिरग देश के त्यागी धर्माधिकारियो को पादरी कहते है, और जो पूर्ण विद्वान साधु समय के अनुसार आज्ञाओ मे परिवर्त्तन कर सकते है और बादशाह भी जिनकी आज्ञा के विरुद्ध नही चल सकता, उन्हे पापा कहते है। वे लोग इंजील लाए और उन्होने ईश्वर, ईसा और मरियम के सम्बन्ध के तर्क उपस्थित किए और ईसाई धर्म की सत्यता प्रमाणित करके उस धर्म का प्रचार किया। बादशाह ने शाहजादा मुराद को आज्ञा दी और उसने ईश्वरीय अनुग्रह का शुभ शकुन समझ कर उसके कुछ पाठ पढे। अब्बुल-फजल अनुवाद के लिये नियुक्त हुए। उसमे बिस्मिल्लाह के स्थान पर था—

اے نامے تو ژژو کرستو -

अर्थात्—हे ईश्वर, तेरा नाम जेसस क्राइस्ट है।

शेख फैजी ने कहा—

سبحانک لاشریک یا ھو -

अर्थात्—हे ईश्वर, तू पवित्र है और कोई तेरा शरीक या साझी नहीं है।

फिर एक स्थान पर आक्षेप करते हैं कि गुजरात के नौसारी नामक स्थान से अग्नि-पूजक लोग आए। उन्होंने जरदुश्त के धर्म के तत्व बतलाए और अग्नि की पूजा को सब से बड़ी पूजा बतलाकर अपनी ओर खींचा। कियानियों का रंग-ढंग और उनके धर्म के सिद्धान्त बतलाए। आज्ञा हुई कि शेख अब्बुल-फजल इसकी व्यवस्था करे और जिस प्रकार अज्म देश के अग्नि-कुंड हर समय प्रज्वलित रहते हैं, उसी प्रकार यहाँ भी हर समय दिन और रात प्रज्वलित रखो; क्योंकि यह अग्नि भी ईश्वर के प्रभुत्व के लक्षणों में से एक लक्षण है और उसके प्रकाशों में से एक प्रकाश है।

अस्तु, इन बातों से तो कोई हानि नहीं, क्योंकि साम्राज्य की बातें कुछ और हैं, देश की राजनीति का धर्म अलग है। इन बातों के लिये स्वयं अकबर पर भी आक्षेप नहीं हो सकता, फिर ये तो उनके सेवक थे। स्वामी की जो आज्ञा होती थी, उसका पालन करना इनका धर्म था। यहाँ तक तो सब कुछ ठीक है, पर आगे कठिनता यह है कि जब शेख मुबारक का देहान्त हो गया, तब शेख अब्बुलफजल ने अपने भाइयों सहित सिर का मुंडन कराया। वास्तव में बात केवल यही थी कि बादशाह प्रत्येक धर्म के साथ प्रेम तथा अनुराग प्रकट करता था और हिन्दुओं

से उसका चोली दामन का साथ था, इसलिये इस विषय मे ये लोग उससे भी बढ़कर थे।

जब पहले अनका का देहान्त हुआ था, और फिर मरियम मकानी का शरीर छूटा था, तब दोनो बार अकबर ने सिर मुँडाया था। उस समय यह तर्क उपस्थित किया गया था कि प्राचीन काल मे तुर्क बादशाह भी इसी प्रकार सिर मुँडाया करते थे। इन्होने भी इसी मे बादशाह की प्रसन्नता देखी, इसलिये सिर मुँड़ाया। ये सब बातें केवल बादशाह को प्रसन्न करने के लिये और उसकी नीति का समर्थन करने के लिये थीं। और नहीं तो फैजी और अब्बुलफजल अपने विचार तथा वाक् शक्ति से अफलातून और अरस्तू के तर्कों को रूई की भाँति धुनकते थे। भला वे लोग अकबर के दीन इलाही पर हृदय से विश्वास रखते होंगे या इस प्रकार के कृत्यो पर उनका विश्वास हुआ होगा? तोबा! तोबा!

ये लोग सब कुछ करते होंगे, और फिर आकर अपने जलसो मे कहते होंगे कि आज कैसा मूर्ख बनाया! देखा, एक मसखरा भी न समझा। और वास्तव मे बात यह है कि इनके शत्रु जैसे प्रबल थे, और जैसे कठिन अवसर इन पर आकर पडते थे, वे इस प्रकार की युक्तियो के बिना टूट भी नहीं सकते थे। याद कीजिए, मखदूम उल्मुल्क आदि का सँदेसा और अब्बुलफजल का उत्तर कि हम बादशाह के नौकर है, बैगनो के नौकर नहीं है।

अब्बुलफजल के पत्र देखिए जिनमे खानखानाँ का वह पत्र दिया है जो उन्होने अब्बुलफजल के नाम भेजा था। उसमे यह

भी लिखा था कि यदि तुम्हारी सम्मति हो तो ऐरज को दरबार में भेज दूँ जिसमे उसे धर्म और नियम आदि का ज्ञान हो। यहाँ मेरे साथ लश्कर मे है और जंगलो मे मारा-मारा फिरता है। शेख ने इस पत्र के उत्तर मे जो पत्र भेजा था, उसमे इस सम्बन्ध में लिखा था कि दरबार मे ऐरज को भेजने की क्या आवश्यकता है। कदाचित् तुम यह समझते हो कि यहाँ आने से उसके धार्मिक विश्वास मे सुधार हो जायगा। पर यह आशा रखना व्यर्थ है। अब पाठक समझ सकते हैं कि जब उसकी कलम से यह वाक्य निकला था, तब दरबार के सम्बन्ध मे उसके वास्तविक विचार क्या थे।

इसके रचे हुए ग्रन्थो को देखिए। जहाँ जरा-सा अवसर मिलता है, कितने शुद्ध हृदय से ईश्वर की वन्दना करता है और अध्यात्म दर्शन के प्रश्नो के रूप में उपस्थित करता है। यदि अफलातून होता तो वह भी इसके हाथ चूम लेता। अब्बुलफ़जल के दूसरे और तीसरे खंडो को देखिए। उनकी प्रशंसा या तो शेख शिबली ही कर सकते हैं और या जुनैद बुगदादी ही। आजाद क्या कहे!

लाहौरवाले शेख अब्बुल मआली ने अपने एक निबन्ध में लिख दिया है कि मैं पहले शेख अब्बुलफजल को अच्छा नहीं समझता था। लेकिन एक रात को देखा कि उसी को लाकर बैठाया है और वह हजरत मुहम्मद साहब का कुरता पहने हुए है। पूछने पर विदित हुआ कि उसे एक प्रार्थना के कारण क्षमा मिली है, जिसका पहला वाक्य इस प्रकार है—

الهی نیکاں رابوسیله نیکی سرفرازی بخش و بداں را
بمقتضاے کرم دلنوازی کن-

५

अर्थात्—हे परमात्मा, जो लोग पुण्यात्मा है, उनके पुण्यो के कारण तू उनका सिर ऊँचा कर, और जो लोग पापी हैं, उनको अपने अनुग्रह के द्वारा प्रसन्न कर।

जखीरत उल् अखवानैन नामक ग्रन्थ मे लिखा है कि अब्बुलफजल रात के समय फकीरो की सेवा मे जाया करता था, उन्हे अशर्फियाँ भेट देता था और कहता था कि अब्बुलफजल का धर्म ठिकाने रखने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करो। और यह तो बार-बार कहा करता था कि हाय, क्या करूँ। कहता था और ठढी साँस लेता था।

अकबर ने काश्मीर मे एक विशाल भवन बनवाया था और आज्ञा दे दी थी कि हिन्दू मुसलमान जिसका जी चाहे, वहाँ जाकर बैठे और ईश्वर का चिन्तन करे। इस पर निम्न लिखित लेख अंकित था जो अब्बुलफजल का लिखा हुआ था। जरा इन शब्दो को देखिए कि किस शुद्ध हृदय से निकले है—

लेख का आशय*

हे ईश्वर, जिस घर मे देखता हूँ, सब तुझको ही ढूँढते है और जिसके मुँह से सुनता हूँ, तेरी ही प्रशसा सुनता हूँ। मुसल-

---

* मूल इस प्रकार है—

الٰہی بہرخانہ کہ مے نگرم جویائے تواند، و بہر زباں کہ مے شنوم گویائے تو—

کفر و اسلام در رہت پویاں—

وحدہ لاشریک لہ گویاں—

मान और अन्य धर्मवाले यही कहते हैं कि तू एक है और तेरे समान कोई दूसरा नहीं है। मसजिद में तुझे ही लोग स्मरण करते हैं और मन्दिर मे तेरे ही लिए शंख बजाते हैं। सब तुझको स्मरण करते हैं और तेरा उनमे पता ही नहीं है। मैं कभी मन्दिर मे जाता हूँ और कभी मसजिद में। तुझको ही मैं घर-घर ढूँढ़ता हूँ। जो तेरे सच्चे सेवक हैं, उनके लिए इस्लाम और गैर-इस्लाम

اگر مسجد است بیاد تو نعرہ قدوس میزنند و اگر
کلیساست بشوق تو ناقوس مے جنبانند —

رباعی

اے تیر غمت رادل عشاق نشانه -
خلقے بتومشغول و تو غائب زمیانه-
گه معتکف دیرم وگه ساکن مسجد -
یعنی که ترا مے طلبم خانه بخانه -

اگر خاصان ترا بکفر و اسلام کارے نیست این هر دو را
درپردہ اسلام تو بارے ند-

کفر کافر را و دین دیندار را-
ذرہ درد دل عطار را -

این خانه بہنیت ایتلاف قلوب موحدان هندوستان و
خصوصاً معبود پرستان عرصه کشمیر تعمیریافته -

بفرمان خدیو و تخت افسر -
چراغ آفرینش شاہ اکبر-

से कोई झगडा नहीं है। प्रत्येक धर्म्म उनके अनुयायियों के सन्तोष और समाधान मात्र के लिए है। यह भवन उन भारत-वासियों में एकता उत्पन्न करने के लिये है जो एक ईश्वर को माननेवाले हैं, और विशेषत काश्मीर के ईश्वरोपासकों के लिए बनाया गया है। सिंहासन के स्वामी अकबर बादशाह की आज्ञा से, जो चारों तत्त्वों और सातों ग्रहों के योग से एक पूर्ण अस्तित्व के रूप में प्रकट हुआ है, बनाया गया है। जिन दुष्टों की दृष्टि सत्य की ओर नहीं है, वे इस भवन को नष्ट करेंगे। उन्हें उचित है कि वे पहले अपने प्रार्थना-मन्दिर को गिरावें, क्योंकि यदि दृष्टि हृदय की ओर है तो सबके साथ अनुकूलता रखनी चाहिए। और यदि केवल शरीर पर दृष्टि है तो वह इस भवन को गिरा सकता है। हे परमात्मा, जब तूने कार्य्य करने की आज्ञा दी, तब कार्य्य का आधार विचार या नीयत पर रक्खा। तू भीतरी विचारों से परिचित है, और बादशाह को उनके विचारों का फल देता है।

نظام اعتدال هفت معدن –
کمال امتزاج چار عنصر –
خانه‌خدائے که نظر صدق بنیاد ساخته این خانه را خراب
سازد-باید که نخست معبد خود را بیندازد-چه اگر نظر به
دل است باهمه ساختنی ست و اگر چشم بر آب و گل است
همه برانداختنی –
خداوندا چودادی کاردانی – مدار کار بر نیت نهادی –
تو دانی بر کار گاه نیت آگاه –به پیش شاه کاری نیت ساده–

ब्लाक्मैन साहब लिखते हैं कि यह भवन आलमगीर के समय मे गिर गया था।

मुल्ला साहब के इतिहास को देखकर दुःख होता है कि जिस पिता से शिक्षा प्राप्त की, उसी के धर्म और विश्वास पर टोकरे भर मिट्टी डाली। बात यह है कि जब एक अभीष्ट पदार्थ पर दो इच्छुकों के शौक टकराते हैं, तब इसी प्रकार की चिनगारियाँ उड़ती हैं। दरबार में दो नवयुवक आगे-पीछे पहुँचे। शिष्य के विचार थोडे दिनो तक भी अपने गुरु तथा शिक्षक के साथ ठीक न रहे। यह अवश्य था कि अब्बुलफजल ने बादशाह का मिजाज, समय की आवश्यकता और अपनी अवस्था का विचार करते हुए कुछ ऐसी बातें की थीं कि मुल्ला साहब का फतवा उनके विरुद्ध हो गया। लेकिन सच बात तो यह है कि उनकी दिन पर दिन होने-वाली उन्नति और हर समय उनका बादशाह के पास रहना मुल्ला साहब से देखा नहीं जाता था। इसलिये वह बिगड़ते थे, तड़पते थे और जहाँ अवसर पाते थे, वहाँ अपने मन की भड़ास निका-लते थे। फिर भी योग्यता का प्रभाव देखो कि अपनी विद्या, गुण और रचनाओ मे कोई विशेपता न दिखला सके। लेकिन उनकी ईर्ष्या का कलुपित रूप देखना चाहिए कि जहाँ उन्होंने अब्बुल-फजल द्वारा बादशाह को अपनी टीकाएँ भेंट करने का उल्लेख किया, वहाँ भी एक व्यंग्य रख दिया और कह गए कि लोग कहते हैं कि वे टीकाएँ उसके पिता की की हुई थीं। अच्छा, मान लीजिए कि यही बात है, तो भी उसके बाप का माल है, कुछ आपके बाप का तो नहीं है। वह नहीं तो उसका बाप तो ऐसा था। तुम्हारा तो बाप भी ऐसा नहीं था। और यदि वे वास्तव

मे अव्बुलफजल की ही की हुई टीकाएँ हो, तो इससे बढ़कर अभिमान की बात और क्या होगी कि बीस वर्ष की अवस्था मे एक नवयुवक इस प्रकार की टीका लिखे जिसे विद्वान् और समझदार लोग शेख मुबारक जैसे विद्वान की की हुई टीका समझें। जब अव्बुलफजल ने सुना होगा, तब उसके हृदय मे कई चमचे खून बढ गया होगा। इन बाप-बेटो के सम्बन्ध मे मुल्ला साहब की विलक्षण दशा है। किसी की बात हो, किसी का उल्लेख हो, जहाँ अवसर पाते है, इन बेचारो मे मे किसी न किसी पर एक नश्तर मार देते है। विद्वानो का उल्लेख करते हुए शेख हसन मूसली के प्रकरण मे कहते है कि यह शाह फतहउल्ला का शिष्य है, और सच तो यह है कि गणित, विज्ञान, तत्त्व-ज्ञान आदि सब प्रकार की विद्याओ का पूर्ण पंडित है, आदि आदि। वह काबुल की विजय के अवसर पर हुजूर की सेवा मे पहुँचा था। बडे शाहजादे की शिक्षा पर नियुक्त हुआ। शेख अव्बुलफजल ने भी ये विद्याएँ गुप्त रूप से उससे पढी और अनेक सूक्ष्म बातो का उससे ज्ञान प्राप्त किया। फिर भी उसका सम्मान नहीं करता था। स्वय फर्श पर बैठता था और गुरु को जमीन पर बैठाता था। भला पाठक ही विचार करें कि कहाँ शेख हसन, कहाँ उसके पाडित्य की पूर्णता! कहाँ का जिक्र और कहाँ की फिक्र। बेचारे अव्बुलफजल को एक ठोकर मार गए। बेचारे फैजी को भी इसी प्रकार नश्तर मारते जाते है। कहीं एक ही तीर मे दोनो को छेदते जाते है। पाठक फैजी का प्रकरण देखें।

शेख की लेखन-कला

शेख की लेखन-प्रणाली की प्रशसा नहीं हो सकती। उसमें

यह एक ईश्वरीय देन थी, जो वह ईश्वर के यहाँ से अपने साथ लाया था। वह प्रत्येक अभिप्राय ऐसी सुन्दरता से व्यक्त करता है कि समझनेवाला देखता रह जाता है। बड़े-बड़े लेखकों को देखिए; जब वे अपने लेखो में ओज लाना चाहते हैं, तब वे उसे बाहर के या वसन्त और उपवन सम्बन्धी वर्णनों से रँग लेते हैं और सौन्दर्य से सुन्दरता माँग कर अपने लेखों मे रंग और नमक लाते हैं। परन्तु लेखन कला पर पूर्ण अधिकार रखनेवाला यह शेख सीधे-सादे शब्दों में अपने पवित्र विचार और वास्तविक अभिप्राय ऐसी सुन्दरता से प्रकट करता है कि हजारो रंगीनियाँ उस पर निछावर होती हैं। यदि उसके सादेपन के बाग मे रंग भरनेवाला चित्रकार आकर कलम लगावे, तो उसके हाथ कलम हो जायँ। वह लेखन कला का ईश्वर है और अपने विचारो से जैसी सृष्टि चाहता है, शब्दों के ढाँचे में ढाल देता है। मजा यह है कि जिस अवस्था मे लिखता है, नया ढंग लाता है, और जितना ही लिखता जाता है, उसकी भाषा का ओज उतना ही बढ़ता और चढ़ता चला जाता है। सम्भव नहीं कि मन में किसी प्रकार की शिथिलता का अनुभव हो। उसकी शोभा और आनन्द कुछ मूल मे ही विशेष रूप से दिखाई पडती है। तो भी जहाँ तक हो सकेगा, यहाँ उसकी कुछ विशेषताएँ बतलाने का प्रयत्न किया जायगा।

उसके परम श्रेष्ठ गुणो के सम्बन्ध मे जो ये शब्द लिखे गए हैं, उनके सम्बन्ध में पाठको को यह न समझना चाहिए कि आज-कल जो बहुत ही साधारण कोटि की लेख-प्रणाली प्रचलित है, उसे देख कर लिखे गए है। बल्कि जिस समय अकबर के दरबार मे दूर-दूर के देशो के गुणी उपस्थित थे और

भारतवर्ष की राजधानी मे विदेशो के विद्वानो और पंडितो का जमघट था, उस समय भी वह सारी भीड को चीर कर और सब को कोहनियाँ मार कर आगे निकल गया था। उसके हाथ और कलम मे बल था, जिसे देशो के बडे-बडे गुणी खडे देखा करते थे और वह आगे बढता जाता था और उन सब से आगे निकल जाता था। और नहीं तो कौन किसे बढ़ने देता है। यद्यपि वह मर गया है, तथापि उसके लेख सब से आगे और ऊँचे दिखाई पडते है।

उसी समय अमीन अहमद राजी ने तजकिर हफ्त अकलीम नामक ग्रन्थ लिखा था। उस ईरानी के न्याय की भी भूरि-भूरि प्रशंसा करनी चाहिए कि भारतीय शेख के लेखो की जी खोल कर प्रशसा की है, और कहा है कि लेखन कला तथा विद्या और बुद्धि आदि मे उसकी समता करनेवाला और कोई दिखलाई नहीं देता।

शेख की रचनाएँ

अकबर-नामे के पहले खंड मे तैमूर के वश के लोगो का विवरण है, परन्तु वह विवरण कुछ संक्षिप्त है। बाबर का हाल कुछ अधिक विस्तार से लिखा है और हुमायूँ का उससे भी अधिक विस्तार के साथ। यहाँ पहला खड समाप्त होता है। फिर अकबर के शासन काल के सत्रह वर्षों का हाल है। अकबर तेरह वर्ष की अवस्था मे सिंहासन पर बैठा था। वह तेरह वर्ष और शासन के सत्रह वर्ष कुल मिलाकर तीस वर्षों का हाल हुआ। यहा दूसरा खड समाप्त होता है।

जिस प्रकार गुणी लेखक लोग अपनी रचनाओं की भूमिका में नम्रतापूर्वक अपनी कृति की त्रुटियो आदि के सम्बन्ध में क्षमा माँगते हैं, उसी प्रकार शेख ने भी इसकी भूमिका मे इस प्रकार की कुछ बातें लिखी हैं। उसका यह न्यायपूर्ण लेख प्रशंसनीय है कि मैं भारतवासी हूँ और फारसी मे लिखना मेरा काम नहीं था। बड़े भाई के भरोसे पर यह काम आरम्भ किया था; परन्तु दुःख है कि यह थोडा ही लिखा गया था कि उनका देहान्त हो गया। दस वर्ष का हाल उन्होने इस प्रकार देखा है कि उन्हे इस पर भरोसा नहीं था और मेरी तुष्टि नहीं हुई थी।

दूसरा खंड अकबर के शासन काल के १८वें वर्ष से आरम्भ किया है और शासन काल के ४६वें वर्ष अर्थात् सन् १११० हि० पर समाप्त किया है। इसके बाद के अकबर के शासन का हाल इनायत उल्ला मुहिब्ब ने लिख कर तारीखे अकबरी पूरी की है।

पहले खंड मे, जिसमे हुमायूँ का विवरण समाप्त किया है, भाषा बहुत ही शुद्ध और स्पष्ट तथा मुहावरेदार है और उसमे प्रौढता बहुत अधिक है। दूसरे खंड मे, जिसमे अकबर के सत्रह वर्षों के शासन का हाल है, विषय बहुत ही जोश मे भरे हैं और उनमे शब्दों की छटा खूब दिखलाई पडती है। बहार के रंग उड़ते हैं—वसन्त और उपवन सम्बन्धी वर्णनो की अधिकता है। तीसरे खंड में रंग बदलना आरम्भ हुआ है। इससे भाषा बहुत ही गम्भीर होती जाती है और विषय का विवरण भी संक्षिप्त होता जाता है। यहाँ तक कि उसके अन्तिम दस वर्षों का विवरण देखें तो वह आईने अकबरी के बहुत पास जा पहुँचती है। लेकिन जहाँ जो विषय जिस रंग मे है, वहाँ उसे पढ़ कर मन

यही कहता है कि यही बहुत ठीक है। जहाँ नया शासन वर्ष आरम्भ होता है, या और कोई विशेष बात होती है, वहाँ भूमिका रूप में कुछ पंक्तियाँ दी हैं जो कहीं तो वहार के रंग में है और कहीं दार्शनिक ढंग पर। उनमें दो-दो शेर भी बहुत ही सुन्दरता के साथ लगा दिए हैं, जिनमें रंगीनी तो कम है और प्रौढ़ता अधिक है।

[इसके उपरान्त मूल में इसी प्रकार की कुछ जलसी सनों के आरम्भ की भूमिकाएँ उदाहरण स्वरूप दी गई हैं जो हिन्दी में अनावश्यक समझ कर छोड़ दी गई है। —अनुवादक।]

जिस प्रकार मुल्ला साहब समय पड़ने पर नहीं रुक सकते, उसी प्रकार आजाद भी नहीं रुक सकता। यह उनकी आत्मा से कुछ क्षणों के लिये क्षमा माँगता है और न्याय-प्रिय लोगों को दिखलाता है कि शेख प्रत्येक व्यक्ति के गुण में बल्कि बात-बात में बाल की खाल निकालते थे। निस्सन्देह ये वाणी के गुण-दोष परखनेवाले सराफ थे। एक-एक शब्द को खूब परखते थे। लेकिन मुझे इस बात का आश्चर्य है कि मुल्ला साहब दिन-रात अब्बुलफजल और फैजी के साथ हिले-मिले रहते थे और उनके वचनों को स्वय उन्हीं के मुँह से सुनते थे और अपने लेखों को भी देखते थे। इतना सब कुछ होने पर भी आप अपने ग्रन्थ में लिखते हैं कि जिस समय अकबरनामा लिखा जा रहा था, उस समय साम्राज्य के एक स्तम्भ ने मुझ से कहा कि बादशाह ने नगर चीन आबाद किया है। तुम भी अकबरनामे के ढंग पर उसकी बनावट के सम्बन्ध में कुछ वर्णन लिखो। आपने उस पर कोई आधा पृष्ठ लिखा होगा। वह भी अपनी पुस्तक में

उद्धृत कर दिया है। यह अवश्य है कि अपना पुत्र सभी को सुन्दर जान पड़ता है। लेकिन मुल्ला साहब और सब लोग बराबर भी तो नहीं हैं। अँधेरे उजाले मे अन्तर भी न जान पड़ा। इसमे सन्देह नही कि अकबरनामे का ढंग यही है। विषयो का जमघट, लेखन-शैली का ओज, शब्दों की धूम-धाम, पर्य्यायवाची शब्दो की अधिकता, प्रत्येक घटना के साथ उसका तर्क बहुत विस्तृत और जटिल वाक्यो मे हैं। वाक्य पर वाक्य चढ़े चले आते हैं। मानो बादशाही कमान है कि खिचती ही चली आती है। मुल्ला साहब ने उसकी नकल की है। भला नकल कहाँ तक हो सकती है? ऐसा जान पड़ता है कि बैठे हुए मुँह चिढा रहे हैं। और अन्तिम शेर पर आकर तो मानो रो ही दिए हैं। पाठको ने देख ही लिया है कि शेख भी शेर लिखते हैं, पर ऐसा जान पड़ता है कि मानो अँगूठी पर का नगीना जड़ दिया है। भला अपने उस लेख को अपनी पुस्तक मे उद्धृत करके मुल्ला साहब को अपने आपको बदनाम करने की क्या आवश्यकता थी?

[इसके उपरान्त मूल में मुल्ला साहब की वह रचना भी दे दी गई है जो उन्होंने अकबरनामे के जोड़ पर लिखी थी। वह भी यहाँ अनावश्यक समझ कर छोड़ दी गई है।—अनुवादक।]

मुल्ला साहब ने गोल-मोल वाक्य में लिखा है, इससे पता नहीं चलता कि वह फरमाइश करनेवाला कौन था। सम्भवत. आसफखाँ या कलीचखाँ होंगे, क्योंकि अमीरो मे प्रायः इन्हीं लोगों के जलसों मे आप सम्मिलित रहा करते थे। और यदि अब्बुलफजल ने भी फरमाइश की हो तो इसमे कोई आश्चर्य नहीं। वह

भी भारी दिल्लगीबाज थे। कहा होगा कि बातें तो बहुत बनाते हैं, कुछ करके भी तो दिखाएँ। घड़ी दो घड़ी दिल्लगी रहेगी।

"हाँ खलीफा हम भी देखे पहलवानी आपकी।"

इतना सब कुछ होने पर भी जो व्यक्ति भाषा की इस सरसता की नदी को आदि से अन्त तक देखेगा और फिर किनारे पर खड़ा होकर विचार करेगा, उसे जान पड़ेगा कि इस स्रोत के जल मे कुछ और ही आनन्द तथा स्वाद है, बीस कोस पर कुछ और है, बीच मे कुछ और है, फिर कुछ और। यह समय का संयोग है। नये आविष्कारों मे ऐसे परिवर्तन अवश्य होते है। वाणी रूपी पोत के उस नाविक ने यह बात अवश्य समझी होगी। और यदि शीघ्र ही उसकी मृत्यु न हो जाती, तो आश्चर्य नहीं कि आदि से आरम्भ करके अन्त तक एक ढग से कर दिखाता।

आईन अकबरी का तीसरा खण्ड सन १००६ हि० मे समाप्त किया था। इसकी प्रशसा तो किसी प्रकार हो ही नहीं सकती। इसमे राज्य के प्रत्येक कार्य और विभाग का पूरा वर्णन, उसके आय-व्यय का विवरण और प्रत्येक काम के नियम आदि लिखे है। साम्राज्य के एक-एक प्रदेश का विवरण, उसकी चौहद्दी, विस्तार आदि दिया है। पहले संक्षेप मे वहाँ का ऐतिहासिक विवरण है, फिर वहा का आय-व्यय, प्राकृतिक उपज तथा कला-कौशल आदि और वहाँ तैयार होनेवाली चीजे, वहाँ के प्रसिद्ध स्थान, नदियाँ, नहरे, नाले, स्रोत, उनके निकलने के स्थान, प्रवाह के मार्ग, उनमे होनेवाले लाभ आदि दिए है। साथ ही यह भी बतलाया है कि उनमे कहाँ-कहाँ भय की आशका है, और कब-

कब उनसे हानियाँ पहुँची हैं, आदि आदि। सेनाओं और उनकी व्यवस्था का विवरण, अमीरों की सूची और उनके पद, कर्मचारियों के प्रकार, बादशाह के दरबार तथा सेवा में रहनेवाले लोगो और बुद्धिमानों की सूची, गुणियो तथा संगीतज्ञों आदि के विवरण, अच्छे-अच्छे कारीगरों, पहुँचे हुए फकीरो, तपस्वियो, बाजारो और मन्दिरो आदि की सूची और उनके विवरण दिए हैं; और बतलाया है कि कौन-कौन सी ऐसी चीजें हैं जो विशेषत भारत से ही सम्बन्ध रखती हैं। साथ ही भिन्न-भिन्न ग्रन्थो के अध्ययन से भारतवर्ष के सम्प्रदायो तथा विद्याओ और विज्ञानो आदि के सम्बन्ध मे शेख को जो ज्ञान प्राप्त हुआ था, वह भी इसमे दे दिया गया है।

आज-कल के पढे-लिखे लोगो की दृष्टि मे ये बाते न जँचेंगी, क्योंकि वे सरकारी रिपोर्टें देखते हैं। अब छोटे-छोटे जिलों के कलेक्टर, डिप्टी कमिश्नर या बन्दोबस्त के अधिकारी, उससे बहुत अधिक बातें अपने जिले की वार्षिक रिपोर्टों मे लिख देते हैं। लेकिन जिन लोगों की दृष्टि अधिक विस्तृत है और जो आगे-पीछे बराबर निगाह दौड़ाते हैं और समय-समय पर होनेवाले कार्यों को बराबर देखते चले आते हैं, वे जानते हैं कि उस समय यह क्रम सोचना, इसकी व्यवस्था करना और फिर इसे पूर्णता तक पहुँचाना एक काम रखता था। जो करता है, वही जानता है कि एक-एक शब्द पर कितना लहू टपकाना पड़ता है। अब तो मार्ग निकल आया। नदी मे घुटने-घुटने पानी है। जिसका जी चाहे, निकल जाय।

ऊपर जिन विषयो का उल्लेख किया गया है, उन पर दृष्टि

डालिए तो बुद्धि चकरा जाती है कि कहाँ से इतनी सामग्री एकत्र की थी और किस मिट्टी में से कण चुन-चुन कर यह सोने का पहाड़ खड़ा किया था। एक छोटी-सी बात पाठक यह समझ लें कि सात महाद्वीपों का साधारण विभाग करके स्वयं भी नई बातें ढूँढ कर लिखी हैं। उनमें कहता है कि फिरंग देश के यात्रियों ने आजकल एक नया टापू देखा है जिसका नाम "छोटी-दुनिया" रखा है। यह स्पष्ट है कि इससे अमेरिका का अभिप्राय है जिसका आविष्कार उन्हीं दिनों कोलम्बस ने किया था। लेकिन इस ग्रन्थ के अभाग्य पर दुःख है कि मुल्ला साहब ने कैसी बुरी तरह से इस पर धूल उड़ाई है।

यदि मैं आईने अकबरी की भाषा के सम्बन्ध में बिना कुछ कहे आगे बढ़ूँ तो न्याय के दरबार में अपराधी ठहराया जाऊँ। इसलिये कम से कम इतना कह देना आवश्यक है कि इसके छोटे-छोटे वाक्य, भाव व्यक्त करने के नए-नए ढंग और उस पर दो-दो तीन-तीन शब्दों के मनोहर और चित्ताकर्षक वाक्य अच्छी तरह गम्भीरतापूर्वक लिखे हुए पृष्ठों का इत्र और रूह है। सम्भव नहीं कि कोई निरर्थक या अधिक शब्द आने पावे। यदि इजाफत पर इजाफत ("का" अर्थवाला चिह्न) आ जाय तो कलम का सिर कट जाय। इस प्रकार भाषा बहुत ही स्पष्ट, सरस, चलती हुई और उपयुक्त है। उत्प्रेक्षा और अत्युक्ति आदि या बनावट का कहीं नाम नहीं है।

अब्बुलफजल ने इस ढंग में लिखना उस समय आरम्भ किया होगा, जब कि अग्निपूजक लोग खान्देश प्रान्त में जन्द और पह्लवी भाषा की पुस्तकें लेकर आए होंगे। इसमें सन्देह

नहीं कि इसने इस वात का कोई ठीक नियम नहीं रखा कि भाषा में अरबी का कोई शब्द बिल्कुल आने ही न पावे। लेकिन भाषा का ढंग और शैली आदि फारस के प्राचीन ग्रन्थों से ही ली है। और उसका यह सुधार वहुत ही ठीक और युक्ति-संगत था, क्योंकि यदि वह केवल शुद्ध फारसी शब्दों के ही व्यवहार का नियम वना लेता तो यह पुस्तक वहुत ही कठिन हो जाती और इसके पढ़ने के लिए एक अच्छे कोप की आवश्यकता होती। इस समय तो उसे प्रत्येक व्यक्ति पढ़ता है और उसका आनन्द लेता है। पर उस दशा मे यह वात कहाँ से हो सकती थी? तात्पर्य यह कि उसने जो कुछ लिखा है, वह वहुत ही अच्छा लिखा है। वह अपने ढंग का आप ही नेता और मार्गदर्शक था और अपना वह ढंग अपने साथ ही लेता गया। फिर भी किसी की मजाल नहीं हुई कि इस ढंग से लिखने के लिये कलम छू सके।

आलोचना

जिन लोगों के मस्तिष्क मे आज-कल का नया प्रकाश भर गया है, वे इसके रचित ग्रन्थो को पढ़कर कहते हैं कि एशिया के लेखकों मे अव्वुलफजल सवसे अधिक उत्प्रेक्षा और अत्युक्तियाँ लिखनेवाला लेखक था। इसने अकवरनामा और आईन अकवरी लिखने मे फारसी की पुरानी योग्यता को फिर से जीवित किया है। इसने सुन्दर लेख-शैली की आड़ मे वहुत विस्तार से अकवर के केवल गुण दिखलाए हैं, और दोप इस प्रकार छिपाए हैं कि उसे पढने से प्रशंसक तथा प्रशंसित दोनो से घृणा होती है और

"अल्लामा" (महापंडित) की उपाधि सअदउल्लाखाँ चिनियोटी के अतिरिक्त और किसी को प्राप्त नहीं हुई। सअदउल्लाखाँ शाह-जहाँ का वजीर था। मुल्ला अब्दुलहमीद लाहौरी ने शाहजहाँ-नामे मे ईरान के राजदूत का वर्णन करते हुए लिखा है कि बाद-शाह की ओर से एक खरीता भेजा गया था जो सअदउल्लाखाँ ने लिखा था। वहीं उस असल खरीते की प्रतिलिपि भी दे दी गई है। अब क्या कहे, अब्बुलफजल की नकल तो की है, उसी तरह आरम्भ मे भूमिका भी बाँधी है, शब्दो की धूम-धाम भी दिखलाई है, वाक्यो पर उसी आशय के वाक्य भी खूब जोडे गए है, परन्तु वही दशा है कि कोई छोटा बच्चा चलने का प्रयत्न करता है। दो कदम चले और गिर पडे। उठे, चार कदम चले, फिर बैठ गए। और यह बात भी उसी अवस्था मे हो सकी थी कि पूर्ण गुणी शेख बडे-बडे ग्रन्थ लिख कर मार्ग बतला गया था। लेकिन फिर भी वह बात कहाँ! इसे देखो कि दनादन चला जाता है। न विचारो की उडान थकती है और न कलम की नोक घिसती है।

अब मुल्ला अब्दुलहमीद का हाल सुनिए। चगताई साम्राज्य मे शाहजहाँ का साम्राज्य तलवार और कलम की सामग्री के विचार मे सब से बडा और प्रसिद्ध साम्राज्य था। विद्वानो और पडितो के अतिरिक्त प्रत्येक विषय के गुणी उसके दरबार मे उपस्थित थे। बादशाह की इच्छा हुई कि हमारे शासन-काल का विवरण लिखा जाय। तलाश होने लगी कि आज-कल बहुत ऊँचे दरजे का लेखक कौन है। अमीरो ने कई व्यक्तियो के नाम बतलाए। कोई पसन्द न आया। मुल्ला अब्दुलहमीद का नाम इस प्रशंसा

के सहित उपस्थित किया गया कि ये शेख के शिष्य हैं। इनसे अच्छा लेखक और कौन हो सकता है। उन्होंने नमूने के तौर पर कुछ हाल लिख कर भी सेवा में उपस्थित किया। बादशाह ने उसे स्वीकार कर लिया। लिखने की सेवा उन्हें सौंपी गई। अब पाठक समझ सकते हैं कि अब्बुलफजल का वह शिष्य, जो शाहजहान के समय में बुड्ढा घाघ हो गया होगा, कैसा रहा होगा। थोड़ा सा वर्णन लिख कर वह सत्तरे बहत्तरे हो गए। शेष ग्रन्थ और लोगों ने लिखा। खैर, कोई लिखे, यहाँ लिखने योग्य बात यह है कि शिष्य होना और बात है, गुरु की योग्यता सम्पादित करना और बात है। शाहजहाँनामे की भाषा बहुत अच्छी है। उसमें बहुत कुछ लेख-कौशल दिखलाया गया है। अनुप्रासयुक्त वाक्यों के खटके बराबर चले जाते हैं। मीना बाजार सजा दिया है। लेकिन अकबरनामे की भाषा से उसका क्या सम्बन्ध।

मुल्ला अब्दुलहमीद बहुत ही सूक्ष्म विचारोंवाले और बहार के ढंग के लेखक थे। रंगीन-रंगीन शब्द चुन कर लाते थे और बहार के वाक्यों में साधारण रूप से सजाते थे। इस प्रकार वे अपने भाव प्रकट कर देते थे। परन्तु लेखन-कला के उस विधाता का क्या कहना है! अगर उसके बाग में गुलाब और सम्बुल लाकर रखे तो उनके रंग उड़ जायँ। तूती और बुलबुल आवे तो उनके पर जल जायँ। वहाँ तो विज्ञान और दर्शन की लेख-प्रणाली है। अपना अभिप्राय प्रकट करने के लिये वह चिन्तन-रूपी आकाश से विषय नहीं, बल्कि तारे उतारता था और दार्शनिक दृष्टि से उनकी परीक्षा करके वाणी पर पूर्ण अधिकार रखने-

वाली अपनी जिह्वा को सौंपता था। वह जिह्वा जिन शब्दों में चाहती थी, वे भाव प्रकट कर देती थी। और ऐसे ढंग से कहती थी कि आज तक जो सुनता है, वह सिर धुनता है। हम उसके वाक्यों को बार-बार पढ़ते हैं और आनन्द लेते हैं। उन वाक्यों की सुन्दर रचनाएँ और स्वरूप देखने के ही योग्य हैं। केवल शब्दों को आगे-पीछे रखकर भावों को भूमि से आकाश पर पहुँचा देना इसी का काम है। विषय का स्वरूप ऐसे ढंग से उपस्थित करता है कि हृदय यह बात मान लेता है कि यह जो घटना हुई, इसके सम्बन्ध में उस समय की अवस्था कहती थी कि यह इसी रूप में हो और इसी के अनुसार इसका परिणाम निकले क्योंकि इसकी जड़ वह थी, वह थी, आदि आदि।

मुकातबाते अल्लामी

या

शेख के पत्र

अब्बुलफ़जल के सगृहीत जो पत्र आदि हैं, वे साधारणतः विद्यालयों आदि में पढ़ाए जाते हैं। इसके तीन खंड हैं जिनका क्रम उसके भान्जे ने लगाया है जो उनके पुत्र के तुल्य था।

पहले खंड में वे खरीते हैं जो ईरान और तूरान के बादशाहों के लिये लिखे थे। साथ ही वे आज्ञापत्र भी दिए गए हैं जो अमीरों आदि के नाम भेजे गए थे। शब्दों की शोभा, अर्थ का समूह, वाक्यों की चुस्ती, विषय की श्रेष्ठता, भाषा की स्वच्छता जबान का जोर मानो नदी का प्रवाह है जो तूफान की तरह चला

आता है। उसमे साम्राज्य के उद्देश्य, राजनीतिक अभिप्राय, उनके दार्शनिक तर्क और भावी परिणामों के सम्बन्ध की सब युक्तियाँ आदि मिल कर मानो एक रूप प्राप्त कर लेती हैं और बादशाह के सामने सिर झुका कर खड़ी हो जाती हैं। वह अभिप्राय और शब्दो को जिस ढंग से और जिस जगह चाहता है, बाँध लेता है। यहाँ अब्दुल्लाखाँ उजबक का वह कथन याद आता है कि अकबर की तलवार तो नहीं देखी, परन्तु अब्बुल-फजल की कलम भयभीत किए देती है।

दूसरे खंड मे अपने निजी पत्र आदि हैं जो अमीरों, मित्रों और सम्बन्धियों आदि के नाम भेजे हैं। उनके अभिप्राय और ही प्रकार के हैं। इसलिये कुछ पत्र, जो खानखानाँ या कोकल-ताशखाँ आदि के नाम हैं, मानो पहले ही खंड के आकाश में विहार करते हैं। शेष तीसरे खंड के विचारो से सम्बद्ध हैं। पहले दोनो खंडों के सम्बन्ध मे इतना कहना आवश्यक है कि उन्हें सब लोग पढ़ते हैं और पढ़ानेवाले पढ़ाते हैं। बल्कि बड़े बड़े विद्वान और पंडित लोग उस पर टीकाएँ आदि लिखते हैं, लेकिन इससे कुछ भी लाभ नहीं। उनके पढने का आनन्द तभी आ सकता है जब कि पहले इधर बाबर और अकबर के समय का इतिहास, उधर ईरान के बादशाह का इतिहास और अब्दुल्ला-खाँ का तूरान का इतिहास देखा हो, भारतवर्ष के राजाओं का क्रम और उनका रीति-व्यवहार जान लिया हो, दरबार और दरबार के लोगो के विवरण तथा उनके आपस के सूक्ष्म व्यवहारों आदि का भली भाँति ज्ञान प्राप्त कर लिया हो। और यदि ये सब ज्ञान न हो, तो पढ़नेवाला सारी पुस्तक पढ़ लेगा **और कुछ** भी

न समझेगा। उसकी दशा उसी अन्धे के समान होगी जो सारे अजायबखाने मे घूम आया हो, लेकिन फिर भी जिसे कुछ ज्ञान न हुआ हो।

तीसरे खंड मे अपनी कुछ पुस्तको की भूमिकाएँ दी है। प्राचीन ग्रन्थकारो के ग्रन्थो को देखने पर मन मे जो विचार उत्पन्न हुए है, उनका भी गद्य मे एक अच्छा चित्र खीच दिया है। उन दिनो एशिया मे कोई समालोचना का नाम भी नही जानता था। नई-नई बाते ढूंढनेवाली उसकी विचार-शक्ति को देखना चाहिए कि वह तीन सौ वर्ष पहले उस ओर प्रवृत्त हुआ था। प्राय आत्मा के उच्च पदो, भावो की सरसता या भावुकता तथा विचारो की स्वतन्त्रता प्रकट होती है, जिससे यह भी सूचित होता है कि लेखक ससार से विरक्त सा है। इतना सब कुछ होने पर भी विचारो की उच्चता और श्रेष्ठता का एक जुदा जगत बसा हुआ जान पडता है। अनजान लोग कहते है कि दोनो भाई नास्तिक और प्रकृतिवादी थे। वे यहाँ आकर देखे कि ऐसा जान पडता है कि जुनैद बुगदादी बोल रहे है या शेख शिबली। और वास्तव मे ईश्वर जाने कि वे क्या थे। इस खड का अध्ययन करनेवाले के लिये यह आवश्यक है कि वह दर्शन तथा तत्व-ज्ञान के अतिरिक्त मनन करने मे अध्यात्म से भी भली भाँति परिचित हो। तभी उसे विशेष आनन्द आवेगा, और नही तो भोजन करते जाओ, ग्रास चबाते जाओ, पेट भर जायगा, पर स्वाद पूछो तो कुछ भी नही।

इसमे कुछ पुस्तको पर भूमिकाएँ लिखी है। जब किसी श्रेष्ठ कवि की कोई उत्तम रचना सामने आ जाती थी, तो उसे भी

लेख लेते थे। या ग्रन्थो में कोई अच्छी वात या ऐतिहासिक कथानक पसन्द आता था तो उसे भी इसी मे स्थान देते थे। किसी मे कुछ मोती गद्य या पद्य का रूप धारण करके अपनी तबीयत से टपकते थे, उन्हे भी टॉक लिया करते थे। किसी मे हिसाव किताव आदि टॉक लेते थे। दुःख है कि वे जवाहिर के टुकडे अव कहीं नहीं मिलते। कुछ पुस्तको पर उपसंहार लिखे हैं या उन पर अपनी सम्मति लिखी है। उनके अन्त में यह भी लिख दिया है कि यह ग्रन्थ अमुक समय अमुक स्थान पर लिखा गया था। जान पड़ता है कि उन्हे देखने से हमे आज जो आनन्द मिलता है, उसे वह उसी समय ज्ञात था। प्रायः लेख लाहौर मे लिखे गए हैं और कुछ काश्मीर में तथा कुछ खान्देश मे लिखे गए हैं। उन्हे पढ कर हमे अवश्य इस वात का ध्यान आता है कि उस समय लाहौर की क्या दशा होगी और वह लिखने के समय यहाँ किस प्रकार वैठा होगा। काश्मीर और उसके आस-पास के स्थानो मे मैं दो वार गया था। वहाँ कई स्थानों पर दोनों भाइयों का स्मरण हुआ और मन की विलक्षण दशा हुई।

अमीर हैदर विलग्रामी ने अकवर की जीवनी मे लिखा है कि अवुलफजल के पत्र-व्यवहार के चार खड थे। ईश्वर जाने चौथा खंड क्या हुआ।

अयार दानिश—यह वही पुस्तक है जो कलेला व दमना के नाम से प्रसिद्ध है। मूल पुस्तक संस्कृत मे (पंच-तंत्र) थी। भारत मे नौशेरवाँ ने मँगवाई थी। वहाँ वहुत दिनो तक उसी समय की फारसी भाषा मे प्रचलित रही। अव्वासिया के

समय में बुगदाद पहुँच कर अरबी में भाषान्तरित हुई। सामानियों के समय में रूदकी ने इसे पद्य-बद्ध किया। इसके उपरान्त कई रूप बदल कर मुल्ला हुसैन वायज की जबान से फारसी के कपड़े पहने और फिर अपनी जन्म-भूमि भारत में आई। जब अकबर ने इसे देखा तो सोचा कि जब मूल संस्कृत ग्रथ ही हमारे सामने उपस्थित है, तब उसी के अनुसार क्यों न अनुवाद हो। दूसरे यह कि सुन्दर उपदेशों के विचार से यह पुस्तक सर्व साधारण के लिये बहुत उपयोगी है। यह ऐसी भाषा में होनी चाहिए जिसे सब लोग समझ सकें। अनवार सुहेली कठिन शब्दों और उपमाओं आदि के एच-पेंच में आकर बहुत कठिन हो गई है। शेख को आज्ञा दी कि मूल संस्कृत को सामने रख कर अनुवाद करो। उन्होंने थोड़े ही दिनों में उसे समाप्त करके सन् ९९६ हि० में उसका उपसंहार लिख दिया। परन्तु उपसंहार भी ऐसा लिखा है कि मर्मज्ञता की आत्मा प्रसन्न हो जाती है।

मुल्ला साहब इस पर भी अपनी एक पुस्तक में वार कर गए हैं। अकबर की नई आज्ञाओं की शिकायत करते हुए कहते हैं कि इस्लाम की प्रत्येक बात से घृणा है। विद्याओं से भी विराग है। भाषा भी पसन्द नहीं। अक्षर भी अच्छे नहीं जान पड़ते। मुल्ला हुसैन वायज ने कलेला दमना का अनवार सुहेली नामक कैसा सुन्दर अनुवाद किया था। अब अब्बुलफजल को आज्ञा हुई कि इसे साफ और नंगी फारसी में लिखो, जिसमें उपमाएँ आदि भी न हों, अरबी शब्द भी न हों।

यदि यह भी मान लें कि अकबर के सम्बन्ध में मुल्ला साहब की सम्मति हर जगह ठीक है, लेकिन इस विशेष टिप्पणी

को देख कर कह सकते हैं कि अब्बुलफजल पर हर जगह अनुचित आक्षेप है। यह तो प्रकट ही है कि शेख और उनके पूर्वजों के पास विद्या और योग्यता आदि की जो कुछ पूँजी थी, वह सब अरबी विद्याओं और अरबी भाषा की ही थी। यह सम्भव नहीं कि उन्हे अरबी विद्याओ और अरबी भाषा से घृणा और विराग हो। हाँ, वह अपने सम्राट् का आज्ञाकारी सेवक था। वह अपना औचित्य समझता था और स्वामी तथा सेवक के सम्बन्ध का स्वरूप भी भली भाँति जानता था। यदि वह अकबर की आज्ञाओं का सच्चे हृदय से पालन न करता तो क्या नमक-हराम बनता? और फिर ईश्वर के सामने क्या उत्तर देता? और यह भी सोचने की बात है कि अकबर की इस आज्ञा से यह परिणाम कैसे निकाल सकते हैं कि वह अरबी विद्याओं तथा भाषा से विरक्त था? यदि एक कठिनता को सरलता की सीमा तक पहुँचा दिया तो इसमें क्या धर्म-द्रोह हो गया? मुल्ला साहब के हाथ में कलम है और वह भी अपने ग्रन्थ-रूपी प्रदेश के अकबर बादशाह हैं। जो जी चाहे, लिख जायँ।

रुक्आत अब्बुलफजल—इसमें उस ढंग के पत्र हैं जिसे आजकल अंगरेजी में "प्राइवेट" कहते हैं। इसका एक-एक वाक्य देखने के योग्य है। इन पत्रो से शेख के हार्दिक विचार और घराऊ बातें विदित होती हैं। फिर भी इनका आनन्द उसी समय आवेगा जब कि उस समय की सब ऐतिहासिक बातों और उस समय के लोगो के छोटे-छोटे कामों तक का पूरा-पूरा ज्ञान हो। जिन शेख अब्बुलफजल के सम्बन्ध मे मैं अभी लिख चुका हूँ कि कभी शेख शिबली जान पड़ते हैं और कभी जुनैद बुगदादी,

उन्हीं शेख अब्दुलफजल ने खानखानाँ के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, उसे पढ़कर लज्जित होता हूँ। और खानखानाँ भी वही है जिसे पहले खंड में अकबर की ओर से आज्ञापत्र लिखते हैं और ऐसा प्रेम सूचित करते हैं कि मन, प्राण और ज्ञान सब निछावर हुए जाते हैं। जब दूसरे खंड में अपनी ओर से पत्र लिखते हैं तो भी ऐसा ही प्रेम सूचित होता है कि मन, प्राण और ज्ञान सब निछावर हुए जाते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि माँ की प्रेम भरी छाती से दूध बहा है। इतना सब कुछ होने पर भी जब खान्देश में खानखानाँ शाहज़ादा दानियाल से प्रदेश ले रहा है, कुछ प्रदेशों में ये स्वयं लश्कर लिए फिरते हैं, कभी दोनों पास आ जाते हैं और कभी दूर जा पड़ते हैं, और दोनों के काम आपस में बिलकुल मिले-जुले हैं, उस समय वहाँ से शेख ने अकबर, उसकी माँ, उसके पुत्र और शाहज़ादा सलीम अर्थात् जहाँगीर को कुछ निवेदनपत्र भेजे हैं। उनमें खानखानाँ के सम्बन्ध में ऐसी-ऐसी बातें लिखते हैं और ऐसे-ऐसे विचार प्रकट करते हैं कि बुद्धि चकित होकर कहती है कि ऐ हज़रत जुनैद, आप और ऐसे विचार! ऐ हज़रत बायज़ीद, आप और ऐसी बातें। यदि ईश्वर ने चाहा तो मैं उनमें से कुछ निवेदनपत्रों की प्रतिलिपियाँ अन्त में अवश्य दूँगा।

कश्कोल—फारसी में कश्कोल भिक्षुक के भिक्षापत्र या खप्पड़ को कहते हैं जिसे सब लोगों ने देखा होगा। भिक्षुक जो कुछ पाता है, चाहे पुलाव हो और चाहे चने के दाने, आटा हो या रोटी, दाल हो या बाटी, हर तरह का टुकड़ा चाहे घी में तर हो, चाहे सूखा, कुछ साथ में हो या रूखा, बासी, ताज़ा, मीठा,

सलोना, तरकारी, मेवा, तात्पर्य यह कि सब कुछ उसी में रखता है। योग्यता सम्पादित करने का इच्छुक पाठक अपने पास एक सादी पुस्तक रखता है, और जिन पुस्तकों की सैर करता है, उनमे से जो बात पसन्द आती है, चाहे वह किसी विद्या या कला की हो, गद्य या पद्य में हो, उसी पुस्तक मे लिखता जाता है। उसी को कश्कोल कहते है। बहुत से विद्वानों के कश्कोल प्रसिद्ध हैं। उनसे विद्यार्थियों को ज्ञान की अच्छी पूँजी मिलती है। दिल्ली मे मैंने शेख अब्दुलफज़ल के कश्कोल की एक प्रति देखी थी जो अब्दुलखैर के हाथ की लिखी हुई थी।

रज़्मनामा—यह महाभारत का अनुवाद है। इसपर दो जुज़ का खुतबा लिखा हुआ है।

इनके रचित ग्रन्थ देखने से यह भी पता चलता है कि इनकी प्रकृति-रूपी भूमि मे शृंगार रस के विषय बहुत ही कम फूलते-फलते थे। फूल, बुलबुल और सौन्दर्य आदि से सम्बन्ध रखनेवाले शेर आदि कहीं संयोगवश किसी विशेष कारण से लाने पड़ते थे तो विवश होकर लाते थे। इनकी तबीयत की असल पैदावार आत्मोन्नति, अध्यात्म, दर्शन, उपदेश, संसार की असारता और सांसारिक व्यक्तियों की कामनाओं और वासनाओं के प्रति घृणा होती थी। इनके लेखों से यह भी विदित होता है कि जो कुछ लिखते थे, वह एक बार कलम उठाकर बराबर लिखते चले जाते थे। सब बातें इनके मन से तुरन्त प्रस्तुत होती थीं। इन्हे अपने लेखों के लिये परिश्रम करना और पसीना बहाना नहीं पड़ता था। इनके पास दो ईश्वर-दत्त गुण थे। एक तो विषयों तथा भावों की अधिकता और दूसरे भाव व्यक्त करने की

शक्ति तथा शब्दो की उपयुक्तता। यदि ये दोनो बाते न होती तो इनकी भापा इतनी साफ और चलती हुई न होती।

इन्होने पद्य मे कोई ग्रन्थ नही लिखा। लेकिन इससे यह नही समझना चाहिए कि ये स्वाभाविक कवित्व शक्ति से वंचित थे। मैने इनके लेखो को बहुत ध्यानपूर्वक देखा है। जहाँ कुछ लिखा है, और जितना लिखा है, ऐसा लिखा है कि काँटे की तौल। यह अवश्य है कि ये जो कुछ लिखते थे, समय और आवश्यकता को देखते हुए लिखते थे। अनावश्यक रूप से कोई काम करना इनके नियम के विपरीत था। जहाँ आवश्यक और उपयुक्त देखते है, गद्य के मैदान को पद्य के गुलदस्तो से सजाते है जिससे प्रमाणित होता है कि इनके मन मे सब प्रकार के भाव सदा प्रस्तुत रहते थे और ठीक समय पर सहायता देते थे। जो विपय चाहते थे, बहुत ही गम्भीरतापूर्वक, उपयुक्त शब्दो मे और बहुत अच्छे ढंग से लिखते थे। लेकिन वही कि आवश्यकता के अनुसार। बल्कि यह गम्भीरता और प्रसाद बडे भाई को प्राप्त नही था। ये प्राय मसनवी के ढग पर शेर लिखते है और निजामी के मखजने-इसरार तथा सिकन्दर-नामे से मिला देते है। कसीदा कहने मे अनवरी से टक्कर लेते हैं और उससे आगे निकल जाते है।

आकृति—अकबरनामे के अन्त मे शेख ने कुछ ईश्वरीय देनो का उल्लेख किया है। उनमे की सख्या ५ और ६ से जान पडता है कि ये हाथ-पैर और डील-डौल मे साधारण थे। सब अग आपेक्षिक दृष्टि से ठीक थे। प्राय स्वस्थ रहते थे, पर रग के काले थे। अपने निवेदनपत्रो मे कई जगह खानखानाँ की शिका-

यत मे लिखते हैं कि हुजूर, यह रंग का जितना गोरा है, मन का उतना ही काला है। यद्यपि मैं रंग का काला हूँ, पर फिर भी मन का काला नहीं हूँ। प्राय. सुयोग्य व्यक्तियों ने इनके रचित ग्रन्थ पढ़े होंगे। यदि उन लोगो ने विचार किया होगा तो उन्हे यह बात अवश्य विदित हो गई होगी कि ये गम्भीर, अल्पभाषी और सहनशील व्यक्ति होंगे। इनकी आकृति से हर दम यही जान पडता होगा कि कुछ सोच रहे हैं। हर काम में, हर बात मे, यहाँ तक कि चलने-फिरने मे भी शान्ति और धीमापन होगा, और यही बातें उस समय के इतिहासों की भिन्न-भिन्न स्थानो पर कही हुई बातों से मेल भी खाती हैं।

मआसिरउल् उमरा के देखने से विदित होता है कि कभी असभ्यता या अशिष्टतासूचक शब्द इनके मुँह से नहीं निकलता था। अश्लील बातो मे या गाली-गलौज से ये अपनी जबान खराब नहीं करते थे। औरों की तो बात ही क्या, स्वयं अपने नौकरों पर भी कभी नहीं बिगडते थे। उनके यहाँ अनुपस्थिति के कारण वेतन नहीं काटा जाता था। जिसे एक बार नौकर रखते थे, उसे फिर कभी नहीं निकालते थे। यदि कोई निकम्मा या अयोग्य व्यक्ति नौकर हो जाता था तो उसकी सेवाओ मे परिवर्त्तन करते रहते थे। जब तक रख सकते थे, तब तक रहने देते थे। कहते थे कि यदि यह नौकरी से छुड़ा दिया जायगा तो फिर इसे अयोग्य समझ कर कोई नौकर न रखेगा।

जब सूर्य मेष राशि मे आता और नया वर्ष आरम्भ होता था, तब घर के सब कामों आदि को देखते थे और हिसाब-किताब

करते थे। गोशवारों की सूची बनवा कर कार्यालय में रख लेते थे और सब बहियाँ आदि जलवा देते थे। पहनने के सब कपड़े सेवकों को बाँट देते थे। परन्तु पायजामा अपने सामने जलवा देते थे। ईश्वर जाने इसमें उनका क्या उद्देश्य होता था। शेख की तीन स्त्रियाँ थीं। एक तो हिन्दुस्तानी थी और सम्भवतः यही घर-वाली होगी, जिसके साथ माता-पिता ने विवाह करके बेटे का घर बसाया होगा। दूसरी काश्मीरिन थी। यदि इन्होंने काश्मीर और पंजाब की यात्रा में स्वयं ही मनोविनोद के लिये इससे विवाह किया हो तो आश्चर्य नहीं। यद्यपि ऐसे गम्भीर विद्वान और न्यायशील व्यक्ति के योग्य यह बात नहीं है, पर फिर भी मनुष्य ही है। किसी समय उसका मन प्रफुल्लित भी होता है। तीसरी स्त्री ईरानी थी। यदि मेरी सम्मति भ्रमपूर्ण न हो तो यह स्त्री केवल भाषा ठीक करने के लिये और विशेष-विशेष मुहावरे ठीक करने के लिये की होगी। फारसी भाषा में ग्रन्थ आदि लिखना शेख का ही काम था। वह भाषा का बहुत अच्छा जानने और परखनेवाला था। हजारों मुहावरे ऐसे होते हैं जो अपने स्थान पर आप ही आप ठीक बैठ जाते हैं। न पूछने-वाला पूछ सकता है, न बतानेवाला बता सकता है। भाषा का मर्मज्ञ लिखते समय लिख जाता है, और जिसे अच्छी भाषा का शौक होता है, वह उसे वहीं गाँठ बाँध लेता है। ऐसी अवस्था में घर-गृहस्थी की छोटी-छोटी और साधारण बातें शब्दों और मुहावरों आदि के कोनों में स्वयं प्राप्त हो सकती हैं। ग्रन्थों से भी यही विदित होता है कि दोनों भाइयों के पास प्रायः ईरानी लोग उपस्थित रहा करते थे और सेवक तथा काम-धन्धा करने-

वाले लोग भी ईरानी ही होते थे। फिर भी घरेलू बातें घर मे ही होती हैं। असली मुहावरे बिना इस उपाय के नहीं मिल सकते।

भोजन—उनके भोजन का हाल सुन कर आश्चर्य होता है। सब चीजे मिला कर तौल में २२ सेर होती थीं जो भिन्न-भिन्न प्रकारो से पक कर दस्तरख्वान पर लगती थीं। अब्दुर्रहमान पास बैठता था और खानसामों की तरह देखता रहता था। खानसामाँ भी सामने उपस्थित रहता था। दोनो इस बात का ध्यान रखते थे कि किस रिकाबी मे से दो या तीन ग्रास खाए हैं। जिस भोजन में से एक ही ग्रास खाते थे और छोड देते थे, वह दूसरे समय दस्तरख्वान पर नहीं आता था। यदि किसी भोजन मे नमक आदि कम या अधिक होता तो केवल संकेत कर देते थे, जिसका अर्थ होता था कि तुम भी इसे चख कर देखो। वह चख कर खानसामाँ को दे देता था, मुँह से कुछ न कहता था। खानसामाँ इस बात का ध्यान रखता था कि आगे से इस प्रकार की भूल न होने पावे। जब शेख दक्खिन की चढ़ाई पर गए थे, तब उनका दस्तरख्वान इतना विस्तृत और खाद्य पदार्थ इतने बढ़िया होते थे कि आज-कल के लोगों को सुन कर उस पर विश्वास भी न होगा। एक बड़े खेमे मे दस्तरख्वान चुना जाता था जिसमे उत्तमोत्तम भोजनों के लिये हजार थाल समस्त आवश्यक सामग्री के सहित होते थे। वे सब थाल अमीरो मे बँट जाते थे। पास ही एक और बडा खेमा होता था जिसमे कुछ निम्न कोटि के लोग एकत्र होते थे। वे लोग वहीं भोजन करते थे। रसोई-घर मे हर समय भोजन बनता रहता था और

खिचडी की देगे तो हर समय चढी रहती थी। जो भूखा आता था, उसे वहाँ भोजन मिलता था।

छब्बीसवाँ धन्यवाद यह देते है कि सोमवार १२ शाअबान सन ९७९ हि० को एक लडका हुआ। मुबारक दादा ने पोते का नाम अब्दुर्रहमान रखा। स्वयं कहते हैं कि यद्यपि इसका जन्म भारत मे हुआ है, तथापि इसके रग-ढंग यूनानी है। हुजूर ने इसे कोका अर्थात् अपने दो भाइयो मे सम्मिलित किया है। अकबर ने ही इसका विवाह सआदतयार खॉ कोका की कन्या के साथ किया था।

सत्ताइसवाँ धन्यवाद यह है कि ता० ३ जीकअद सन ९९९ हि० को अब्दुर्रहमान के घर लडका हुआ। बादशाह सलामत ने उसका नाम पशूतन रखा।

अब्दुर्रहमान

अब्दुर्रहमान ने अपने पिता के साथ दक्खिन मे जो काम किए थे, उनका कुछ-कुछ उल्लेख ऊपर हो चुका है। वह वास्तव मे बहुत वीर था। जिन युद्धो मे बडे-बडे अनुभवी सिपाही झिझक जाते थे, उनमे झपट कर आगे बढता था और अपनी वीरता तथा बुद्धिमत्ता के बल से उनका निर्णय कर देता था। उस समय के इतिहास-लेखक उसे तरकश का सब मे अच्छा तीर कहते है। तिलगाने आदि मे विजय प्राप्त करके दक्खिन मे इसने अपने पिता के साथ बहुत नाम कमाया। अकबर के सरदारो मे शेर ख्वाजा पुराना और अनुभवी सैनिक था। इसने कही उसके साथ रह कर और कही उससे आगे बढ कर खूब

खूब तलवारें मारीं, और दक्खिन के बहादुर सरदार मलिक अम्बर को धावे मार-मार कर और मैदान जमा-जमा कर खूब परास्त किया।

जहाँगीर की यह बात प्रशंसनीय है कि उसने पिता पर का क्रोध पुत्र के सम्बन्ध मे बिलकुल भुला दिया। उसने इसे दो-हजारी मन्सब प्रदान किया और अफ़जलखाँ की उपाधि दी। अपने शासन के तीसरे वर्ष उसने इसे इसके मामा इस्लामखाँ के स्थान पर बिहार का सूबेदार नियुक्त किया, बल्कि गोरखपुर भी जागीर मे दिया। जिस समय यह बिहार का हाकिम था, उस समय वहाँ का केन्द्र पटने में था। एक अवसर पर कुतुबउद्दीन नामक एक धूर्त्त फकीर उधर गया और लोगो को बहकाने लगा कि मैं जहाँगीर का पुत्र खुसरों हूँ। भाग्य ने साथ नहीं दिया, जिससे मैं एक युद्ध में हार गया। अब मैं इस दशा में घूम रहा हूँ। कुछ लोग तो लोभ के कारण और कुछ दया के वश होकर उसके साथ हो गए। उन लोगों को लेकर उसने तुरन्त पटने पर धावा किया। वहाँ अब्दुर्रहमान की ओर से शेख बनारसी और मिरजा गयास हाकिम थे। उन्होंने ऐसी कायरता दिखलाई कि नकली खुसरो का अधिकार हो गया। सारी सामग्री और कोप उसके हाथ लगा। रहमान सुनते ही शेर की तरह आया। नकली खुसरो मोरचे बाँध कर सामने हुआ। पुनपुन नदी के तट पर युद्ध हुआ। लेकिन पहले ही आक्रमण मे जाली सेना तितर-बितर हो गई और वह भाग कर किले मे घुस गया। रहमान भी उसके पीछे-पीछे वहाँ पहुँचा और उसे पकड कर मार डाला। रहमान ने दोनो कायर सरदारो को दरबार मे भेज

दिया। दंड देने के सम्बन्ध मे जहाँगीर बहुत धीमा था। उसने उनके सिर मुँडवाए, उन्हे स्त्रियो के कपडे पहनाए और उलटे गधो पर बैठा कर सारे नगर मे घुमाया। थोडे ही दिनो बाद रहमान बीमार हुआ। जब दरबार मे गया, तब वहाँ उसका बहुत अधिक सत्कार हुआ। दुःख है कि जहाँगीर के शासन के आठवे वर्ष पिता की मृत्यु के ग्यारह वर्ष बाद इसकी भी मृत्यु हो गई। पश्-तन नामक एक पुत्र छोड गया था। उसने जहाँगीर के शासन-काल मे सात सौ प्यादो और तीन सौ सवारो की नायकता तक उन्नति की। शाहजहाँ के समय मे उसे पाँच-सदी मन्सब मिला। वह १५ वे शासन वर्ष तक सेवाएँ करता रहा।

मैने ऊपर कहा था कि खानखानाँ आदि के सम्बन्ध मे अब्बुलफजल ने जो फूल कतरे है, अन्त मे उनके अनुवाद से मै पाठको का मनोरजन करूँगा। अत यहाँ उनमे से कुछ पत्रो के आशय दिए जाते है। दक्खिन की लडाइ मे जो एक निवेदनपत्र बादशाह के नाम भेजा है, उसमे बहुत सी लम्बी-चौडी उपाधियो आदि के उपरान्त खानखानाँ की व्यवस्था आदि के सम्बन्ध मे बहुत सी बाते लिखी है। फिर लिखते है कि ईश्वर की शपथ है और उसी की साक्षी यथेष्ट है कि जो कुछ लिखा और कहा है, वह सब ठीक है। उसमे जरा भी और कुछ भी सन्देह नही है। ईश्वर की शपथ है कि मेरे आदमी कई बार उसके आदमियो को मेरे पास पकड लाए और बादशाही प्रताप के विरुद्ध उसके लिखे हुए पत्र आदि पकडे गए जो ज्यो के त्यो शाहजादे को दिखलाए गए। साम्राज्य के समस्त स्तम्भ दाँतो मे उँगली दबाकर रह गए। हाथ मल कर रह गए। वे विवश होकर मौन है। वे नम्रता

और विनय के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं देखते, इसलिये चुप बैठे हैं। लेकिन बड़े-छोटे, अमीर-गरीब सब समझते हैं कि दक्खिन की लड़ाई को उसी ने उलझन मे डाल रखा है और वह उसी के कारण रुकी हुई है।

श्रीमन्, इस सेवक ने अपने निवेदनपत्र मे कई बार निवेदन किया है, परन्तु सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिलता। विलक्षण बात है कि इस सेवक की अरज भी गरज समझी जाती है। अब्बुलफजल इस दरगाह का पला हुआ है और धूल में से उठाया हुआ है। ईश्वर न करे कि वह अपनी गरज की कोई बात कहे और उसके लिये प्रयत्न करे, जिसमे इस वंश की बदनामी हो। मेरे स्वामी, हम भारतवासी अन्दर-बाहर एक से होते हैं। ईश्वर ने हमारी प्रकृति मे तो रूखापन पैदा ही नहीं किया। ईश्वर को धन्यवाद है कि हम नमक को हलाल करके खाते हैं। हम और लोगों की भाँति गोरे मुँह और काले दिलवाले नहीं हैं। यद्यपि देखने मे मै रंगत का काला हूँ, लेकिन मेरा हृदय सफेद है। जैसे ऊपर से दर्पण की कालिमा के कारण भ्रम होता है, वैसे ही मेरे सम्बन्ध मे भी भ्रम हो सकता है। परन्तु आप खूब ध्यान से देखें, अन्दर से साफ दिलवाला हूँ। खोट-कपट कुछ भी नहीं।

نیم مہ کز فروغ غیرداردخانہ نورانی -
چو خورشید م کہ نورخانہ از شمع زباں دارم -

अर्थात्—मैं चन्द्रमा नहीं हूँ जो सूर्य्य के प्रकाश से प्रकाशमान् रहता हूँ; बल्कि सूर्य्य के समान हूँ और अपना घर अपनी जबान के दीपक से प्रकाशमान् रखता हूँ।

एक और पत्र मे लिखते हैं—श्रीमन, यद्यपि शाहज़ादे के रंग-ढंग की ओर से कुछ सन्तोष हुआ है, लेकिन अब्दुर्रहीम वैरम के छल-कपट को क्या करूँ और क्या कहूँ, जिसका वर्णन करने मे लेखनी और जबान दोनो असमर्थ हैं। यदि जनम भर दोरंगी चालें लिखता रहूँ और फिर भी देखूँ तो उसका अणु-परमाणु भी नही होता। उसका ऐसा व्यक्तित्व है जिसमे परिवर्त्तन हो ही नही सकता और जिसकी न तो कोई उपमा ही है और न कोई चित्र ही है। वह छल-कपट करने मे एक ही है और संसार मे उसकी समता करनेवाला और कोई नही है, क्योकि वह प्रत्येक व्यक्ति के हृदय मे घुसा हुआ है और ऊपर की भी सब बाते जानता है। अभी मन मे कोई बात भी पूरी तरह से नही आती कि उसे खबर लग जाती है। मनुष्य अपना कोई काम करने का विचार भी नही करता कि उसे पता लग जाता है। मै आश्चर्य के चक्कर मे पडा हूँ और मुझे इस चिन्ता ने घेर रखा है कि यह कैसी चालाकी और कैसी धूर्त्तता है कि ईश्वर ने उसे अलौकिक गुण प्रदान किया है। लेकिन यह बात मन मे जरा खटकती है कि ऊपर से देखने मे ईश्वर की इच्छा मे भूल हुई। जब ऐसे अद्भुत और विलक्षण काम करनेवाला उपस्थित है, तब बेचारे इजराईल को, जो इसकी पाठशाला के विद्यार्थियो मे भी सम्मिलित होने के योग्य नही, क्यो लानत भेजी जाती है।

در هر سر موے او زبانے دگر است -

अर्थात्—उसके प्रत्येक रोम मे एक नई और दूसरी जबान है।

जो व्यक्ति नमक खाए और इस बुरी तरह से तैमूर के वंश के साथ हार्दिक शत्रुता रखे तो उसका काम कैसे चलेगा ? उसका परिणाम कैसे शुभ होगा ? वह किस प्रकार नेकी का मुख देखेगा ? महाराज, सारे दिन और सारी रात अभिशप्त अम्बर के जासूस और मुखबिर उसके पास उपस्थित रहते हैं और वह निर्भय होकर बे-खटके उन लोगों के साथ उसी प्रकार मिला-जुला रहता है, जिस प्रकार दूध के साथ शक्कर मिली रहती है। वह शाहजादे का भी कोई मुलाहजा या अदब नहीं करता। इतनी परवाह नहीं है कि कदाचित् कोई श्रीमान् के दरबार मे कुछ लिख भेजे और हुजूर के मन मे कुछ दु:ख हो। यह निर्लज्जता और वेपरवाही है। यह शुभचिन्तक निश्चयपूर्वक लिखता है कि यदि वह इस देश मे न हो तो यह एक वर्ष में दक्खिन के सब झगड़े दूर कर दे। लेकिन क्या करे और क्या कर सकता है। उसका रंग ऐसा जम गया है कि हुजूर को भी और शाहजादे को भी इस बात का दृढ़ विश्वास हो गया है कि दक्खिन की लड़ाई उसके बिना जीती ही नहीं जा सकती। और जब वह न रहेगा, तब कुछ भी न होगा। मैं कदापि यह नहीं मानूँगा, "कोई न माने। मैं न मानूँगा। तुम भी न मानो कि ऐसा होगा।" परन्तु वास्तव मे बात इसके बिलकुल विपरीत है। क्योंकि जब वह इस देश मे न रहेगा, तब लडाई का सब काम आपसे आप ठीक हो जायगा। बहुत ही थोड़े समय मे दक्खिन हाथ में आ जायगा और दक्खिनी आकर सलाम करेंगे। इस शुभ कार्य मे वही बाधक है। मै ईश्वर की शपथ खाकर कहता हूँ कि जो कुछ मैंने लिखा है, वह बिलकुल ठीक

है। इसमे किसी प्रकार का कुछ भी सन्देह नही। अविनाशी ईश्वर की शपथ है कि कई बार उसके आदमियो को पकड़ कर लोग मेरे पास लाए और उसके लिखे पत्र जो बादशाही दौलत और इकबाल के विरुद्ध थे, ज्यो के त्यो शाहजादे को दिखलाए गए। साम्राज्य के सब स्तम्भ दाँतो उँगलियाँ दबाते थे और हाथ मलते थे। सब लोग विवशता के कारण चुप लगाए है और विनय तथा नम्रता मे ही अपना भला देखते है और मौन व्रत को निबाहे जाते है। छोटे बड़े सभी लोग समझ कर बैठे हुए है कि दक्खिन की लडाई को वही उलझन मे डालता है और उसी की करतूतो से यह लडाई बन्द है।

هرکه زبانش دگر و دل دگر - تیغ بباید زدنش بر جگر -

अर्थात्—जिस व्यक्ति के मन मे कुछ और, और मुँह पर कुछ और हो, उसके कलेजे मे तलवार भोक देनी चाहिए।

एक और निवेदनपत्र मे लिखा है—मै तो लिखते-लिखते थक गया, परन्तु हुजूर के मन मे कोई बात नही बैठती। हुजूर इसे पदच्युत न करे तो भी कम से कम इतना तो लिख दे कि अमुक व्यक्ति के परामर्श के बिना कोई काम न करो। और यदि तुम हमारे कहने के विरुद्ध आचरण करोगे तो हमे मन मे दुःख होगा। सम्भव है कि ऐसा पत्र पढकर उसके हृदय पर कुछ प्रभाव हो और कुछ बातो मे वह हमे भी सम्मिलित कर लिया करे।

शेख ने एक निवेदन-पत्र दक्खिन से जहाँगीर के पास भी भेजा था। जरा पाठक देखे कि वे नवयुवक लडको को कैसी बातो और कैसे शब्दो मे फुसलाते है। बहुत लम्बे-चौडे विशेषण

आदि लगाने के उपरान्त लिखते हैं कि संसार छ दिशाओं में घिरा हुआ है। मैं भी अपने निवेदन को इन्हीं छः प्रयत्नों पर निर्भर करता हूँ। पहला प्रयत्न यह है। दूसरा प्रयत्न यह है। तीसरे प्रयत्न के अन्तर्गत लिखते हैं कि शाहजादा दानियाल दिन-रात मद्यपान में चूर रहता है। उसे कोई उपाय सुधार के मार्ग पर नहीं ला सकता। मैं कई बार श्रीमान् सम्राट् की सेवा में भी निवेदनपत्र भेज चुका हूँ। उत्तम हो कि तुम स्वयं श्रीमान से आज्ञा लेकर यहाँ चले आओ। दानियाल को गुजरात भेजवा दो। तुम्हारे आने से समस्त दक्खिनियों को बहुत बड़ी शिक्षा मिल जायगी। दक्खिन पर विजय प्राप्त हो जायगी। दुष्ट और नीच अम्बर स्वयं आकर सेवा में उपस्थित होगा। उचित था कि तुम इस सम्बन्ध में मुझे सब बातें स्पष्ट और विस्तृत रूप से लिख भेजते। लेकिन तुमने इस सम्बन्ध में कुछ भी प्रयत्न न किया और इस ओर कुछ भी ध्यान न दिया। कभी इस शुभचिन्तक को सन्तोषजनक उत्तर भेजकर भी सम्मानित न किया। मैं नहीं जानता कि इसका क्या कारण है, और इस सेवक से ऐसा कौन सा अपराध हुआ जिसके कारण तुम्हारे मन में दुःख हुआ। ईश्वर इस बात का साक्षी है कि इस सेवक के सम्बन्ध में शत्रुओं ने तुमसे जो कुछ कहा है, वह बिलकुल झूठ है। ईश्वर न करे कि इस सेवक के मुँह से तुम्हारे सम्बन्ध में कोई अशिष्ट शब्द निकले। सारी बात यह है कि इस सेवक का दुर्भाग्य ही इस सीमा तक पहुँचा है कि यद्यपि मैं श्रीमान् के दरबार का बहुत बड़ा शुभचिन्तक हूँ, पर काले मुँहवाले लोग अपना मतलब निकालने के लिये आपसे मेरे सम्बन्ध में अनुचित बातें कहते हैं। इसमें मेरा क्या अपराध है। परन्तु

मैं ईश्वर से आशा करता हूँ कि जो व्यक्ति किसी की बुराई करने पर उतारू होगा, वह भली भाँति उसका दंड पावेगा। परमात्मा के हजार नामों में से एक नाम "हक" भी है। जब वही हक या न्याय के विरुद्ध आचरण करने लगेगा, तब न्याय कौन करेगा? दूसरे यह कि गुंजाइश ही क्या है जो मैं श्रीमान सम्राट् से तुम्हारी बुराई करूँ। क्या मुझमें इतना समझने की भी शक्ति नहीं है कि साम्राज्य सँभालने की योग्यता किसमें है? तैमूरी वंश की प्रतिष्ठा कौन रख सकता है? अन्धा भी हो तो वह अपनी विपत्ति समझ सकता है और हिये की आँख से देख सकता है। फिर मैं तो आँखोंवाला हूँ, अन्धा नहीं हूँ। हाँ, कम-समझ होऊँ तो हो सकता हूँ। परन्तु इतना तो कदाचित् समझ लूँगा कि तुममें और दूसरे शाहजादों में क्या अन्तर है।

ईश्वर जाने, शेख साहब ने और क्या क्या मोती पिरोए होंगे। मैंने तो दक्खिन के युद्ध के सम्बन्ध में अकबरनामे से कुछ पंक्तियाँ अनुवाद करके रख दी हैं। इनके वास्तविक विचारों से पाठक अवगत हो चुके। लेकिन इतना होने पर भी पाठकों को यह सोचना चाहिए कि इन्होंने कैसी सुन्दरता से अपनी शुभ-कामना नवयुवक के हृदय पर अंकित की है। चौथे प्रयत्न के अन्तर्गत लिखते हैं कि इस सेवक ने कई बार अब्दुर्रहीम बैरम की नालायकी के सम्बन्ध में श्रीमान सम्राट् की सेवा में लिखा है कि आप इससे सचेत रहें और इसकी ऊपरी चापलूसी पर न जायँ। क्योंकि—

دربرس موے او زبانے دگر است -

अर्थात्—उसके प्रत्येक रोम में एक दूसरी और नई जबान है।

वह धूर्त्तता में संसार मे अपनी उपमा नहीं रखता। ईश्वर ने और कोई वैसा धूर्त्त उत्पन्न ही नहीं किया। वह ईश्वर की सृष्टि की सीमा से बहुत बढ़कर है। तरह तरह के रंग बदलना और बातें करना उस पर खतम है। नमकहरामी तो उसी पर निर्भर है। ईश्वर साक्षी है कि देवदूत भी इस निवेदनपत्र पर अपना समर्थन-सूचक लेख लिखते हैं कि वह तैमूर के वंश का शत्रु है और उसका यह ढग पुरुषानुक्रमिक है। श्रीमान् को यह बात भली भाँति विदित है कि उसने इस उच्च क्रम का नाश करने मे कोई त्रुटि नहीं की। उसने क्या क्या काम किए और क्या क्या चाले चलीं। ईश्वर इस शुभ वंश का सहायक था। उसका छल-कपट कुछ भी न चल सका और वह कुछ भी न कर सका। उलटे स्वयं ही खराब और अप्रतिष्ठित हुआ। वह विलकुल नग्न अवस्था में गँवारों के हाथ पड़ा और गँवारो ने भी उसे विलकुल नंगा करके नचाया। "मैं तुम्हारा कुत्ता हूँ। मैं तुम्हारा कुत्ता हूँ।" कहकर नाचा। अन्त में न्याय अपने केन्द्र पर आकर ठहरा। और फिर क्यो न ठहरता? जहाँ अकवर जैसा न्यायी वादशाह हो, वहा वह कंगला भारत का राज्य कैसे ले सकता था। जहाँ ऐसा वीर और पराक्रमी वादशाह हो, वहाँ एक वन्दर सारे भारत का शासन कैसे अपने हाथ मे ले सकता था! जहाँ तैमूरी जगल का शेर दहाडता हो, वहाँ गीदड़ की क्या मजाल है कि उसके स्थान का अधिकारी हो।

तात्पर्य यह कि दक्खिन की लड़ाई मे इससे ऐसे मामले नहीं देखे और ऐसी बातें नहीं सुनीं कि कहने से विश्वास भी आ जाय और लिखने मे अभिप्राय भी प्रकट हो जाय। हुजूर इस

बात का विश्वास रखे कि जब तक वह इस देश मे है, तब तक कदापि विजय न होगी। हम लोग व्यर्थ ठंडा लोहा पीट रहे है, इत्यादि इत्यादि।

पाठक देखे कि इतनी गम्भीरता पर भी नवयुवको का मन प्रसन्न करने के लिये कैसी बाते करते है। खैर इस ससार मे जब कोई अपना काम निकालना होता है, तब सब कुछ करना पडता है और दरबारो के मामले ऐसे ही होते है।

एक निवेदन-पत्र अकबर के पुत्र को लिखा है। उसमे बहुत सी बाते लिखते-लिखते कहते है कि मै शाहजादे की क्या फरियाद लिखूॅ और क्या शिकायत करूॅ। यदि मै जानता कि यहॉ इस तरह की खराबियॉ पैदा होगी, तो कभी इधर की ओर मुँह भी न करता। लेकिन जब विधाता ने भाग्य मे यही लिखा है, तो फिर और उपाय ही क्या है। मनुष्य मे इतनी सामर्थ्य कहॉ है कि ईश्वर की इच्छा मे परिवर्त्तन कर सके। मै तो ससार की विलक्षणताओ और आकाश की टेढी चालो मे ही चकित था। लेकिन जब इस अब्दुर्रहीम को देखा तो सब भूल गया। भरे हुए घाव हरे हो गए, पुराने नासूर फिर वह निकले। दागो मे लहू टपक पडा। मै क्या कह कर अद्भुत और विलक्षण काम करनेवाले की शिकायत करूँ। इसके हाथ मे ससार के सब लोगो के दिल पर दाग पडे है, इसके अत्याचार के कारण समस्त लोको के हृदय फट गए है।

باهر که بنگرم به همین داغ مبتلاست —

अर्थात्—मै जिससे मिलता हूँ, देखता हूँ कि वही इस दाग का शिकार बना हुआ है।

मै इसे जादूगर कहूँ, परन्तु इसकी पूँजी उससे बहुत

अधिक है। यदि जादू मन्तर करनेवाला प्रसिद्ध जादूगर सामरी भी होता तो इसके हाथ से चिल्ला उठता। इसका एक सोने का बछडा था, जिससे जादूगरी करता था। इसके हजार ऐसे सोने के बछड़े हैं जिसके कारण सारा संसार इसके अत्याचार से पीड़ित होकर फरियाद कर रहा है। इसने सारे बादशाही लश्कर को वही सोने का बछड़ा बना रखा है और जादूगरियाँ कर रहा है। दक्खिन के लोगों को ऐसा फुसलाया है कि यदि यह पैगम्बर होने का दावा करे तो वे अभी इसे पैगम्बर मान कर इसके आगे सिर झुकाने के लिये तैयार हैं और इसे अपना पिता या जनक मानते हैं। वाह कैसी धूर्त्तता है जो ईश्वर ने इसे प्रदान की है। शाहजादे लोग रात-दिन इसके हाथ से दुःखी रहते हैं और फरियाद करते हैं। लेकिन जहाँ इस पर दृष्टि पडी कि गूँगे हो गए। उनके शरीर में तनिक गति भी नहीं होती। उन्होंने अपने आपको इसके सपुर्द कर दिया है। कई बार इसकी उद्दंडताएँ और अनुचित कृत्य देख लिए हैं। इसके द्वारा बहुत से ऐसे कार्य हुए हैं जो स्पष्ट रूप से देखने में अनुचित हैं। इसने जो पत्र नष्ट और अभागे अम्बर को लिखे थे, वे हाथों में लेकर शाहजादे को दिखलाए और उनकी प्रतिलिपि सम्राट् की सेवा में भेज दी। परन्तु कुछ भी न हुआ; इसका कुछ भी न कर सके। भला मैं विफल-मनोरथ किस हिसाब और गिनती में हूँ और किस जमा-खर्च में दाखिल हूँ जो इसके असभ्यता-पूर्ण कृत्यों का बदला लूँ। मैं बेचारा जगलों में मारा-मारा फिरता हूँ और अपनी दशा देखकर चकित हूँ। मुझे श्रीमान् सम्राट् से कदापि यह आशा नहीं थी कि वे मुझे अपनी सेवा से

अलग करेंगे और ऐसी विलक्षण विपत्ति में मुझे टकरा देंगे। परम आश्चर्य है कि उन्होंने मेरे सम्बन्ध में यह क्या निश्चय किया। समस्त संसार यही समझता था कि चाहे उत्तरी ध्रुव अपने स्थान से चलकर दक्षिण में पहुँच जाय और दक्षिणी ध्रुव उत्तर में जा घुसे, परन्तु अब्बुलफजल कदाचित् ही सम्राट् की प्रत्यक्ष सेवा से दूर होगा। परन्तु मेरी क्या सामर्थ्य थी जो मैं उनकी आज्ञा में हस्तक्षेप करूँ। मैंने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और उसके अनुसार दक्षिण की लडाई में चला आया। ऐसा कौन सा परिश्रम था जो मैंने नहीं किया और ऐसी कौन सी विपत्ति थी जो मैंने नहीं उठाई। दुखो का लश्कर टूट पडा है। मैं बेचारा अकेला और निहत्था इस विपत्ति के मैदान में खडा हूँ। न भागने की शक्ति है और न लडने का साहस। हाँ यदि श्रीमान् का साहस मेरी सहायता करे और श्रीमान् वास्तविक शुद्ध-हृदयता को काम में लावे तो इस दीन का छुटकारा हो जाय। यह सेवक अपना अन्तिम जीवन श्रीमान के चरणो मे बितावे, क्योंकि इस लोक में भी और परलोक में भी इसकी भलाई और स्वामिनिष्ठा इसी में है। कोई शुभ घडी और अच्छी सायत देख कर हुजूर को समझाए और ईश्वर के लिये मुझे वहाँ बुलवाए, आदि आदि।

दानियाल को एक लम्बे-चौडे निवेदनपत्र में अपने नियम के अनुसार अपने भिन्न भिन्न अभिप्राय लिखे हैं। उसमें लिखते हैं कि दुष्कर्मी अब्दुर्रहीम काले मुँहवाले आवारे अम्बर के साथ एक मन और एक जबान होकर फैलसूफी कर रहा है। ईश्वर परम न्यायशाली है। उसके दरबार में अन्याय का प्रचलन नहीं है। यदि ईश्वर चाहेगा तो उसका कार्य सदा अवनति करता रहेगा

और इस वंश के सामने लज्जित होगा। हे अब्बुलफजल के स्वामी, जहाँ तक हो सके, आप अपने रहस्य उसे मत सूचित कीजिए।

मरियम मकानी को लिखते है कि पचीस वर्षों से यह पुराना झगड़ा इसी तरह चला चलता है, समाप्त नहीं होता। और हुजूर समझते है कि तैमूरी वंश का सारा सम्मान और आतंक इसी लड़ाई पर निर्भर करता है। ईश्वर न करे कि यह लड़ाई बिगडे। यदि यह लड़ाई बिगडी तो सारी बात ही बिगड़ जायगी। आप श्रीमान् सम्राट् को यह समझावें कि वे इस ओर ध्यान दें। और इसके उपरान्त फिर वही अब्दुलरहीम बैरम का रोना रोते हैं।

इसी पत्र मे यह भी लिखते हैं कि दक्षिण भी एक विलक्षण देश है। सुख और सम्पन्नता को ईश्वर ने यहाँ उत्पन्न ही नहीं किया। कई स्थानो में लिखते हैं कि काबुल, कन्धार और पंजाब आदि और प्रकार के देश हैं। वहाँ की बातें और थीं। यहाँ का ढंग ही कुछ और है। जो बातें वहाँ कर जाते हैं, वह यहाँ हो ही नहीं सकती।

प्रत्येक निवेदनपत्र मे यह बात भी लिखते हैं कि श्रीमान् सम्राट् ने कई बार इस सेवक को लिखा है कि हमने तुम्हें अपने स्थान पर भेजा है। जहाँ हमे स्वयं जाना चाहिए था, वहाँ हमने तुम्हें भेजा है। तुम्हें भले-बुरे सबका अधिकार है। तुम जिसे चाहो, उसे निकाल दो। फिर भी यह क्या बात है कि मैं बार बार अब्दुलरहीम के सम्बन्ध मे लिखता हूँ और वे कुछ भी नहीं सुनते।

इतिहासो से भी विदित हुआ है और बड़े लोगो से भी सुना है कि इन दोनो भाइयो के यहाँ सदा बहुत से लोग उपस्थित

करते थे और ये बडे गुणग्राहक थे। बडे-बडे गुणी, विद्वान, कुलीन शेख और धर्मनिष्ठ महात्मा आदि जो लोग आते थे, उनके साथ ये लोग बहुत अधिक सज्जनता का व्यवहार करते थे और उनका यथेष्ट आदर-सत्कार करते थे। उन्हे बादशाह के दरबार मे भी ले जाते थे और स्वय भी उन्हे कुछ देते थे। यहाँ एक ऐसे पत्र का अनुवाद दिया जाता है जो शेख ने अपने पिता मुबारक को लिखा था। जान पडता है कि शेख मुबारक ने दिल्ली के कुछ धर्मनिष्ठ महात्माओं के लिये जागीर की सिफारिश की थी। उसके उत्तर मे शेख काश्मीर से लिखते है—

"समस्त सत्य बातो का ज्ञान रखनेवाले (अर्थात् आप) मे यह बात छिपी न होगी कि दिल्लीवाले महाशयो के लिये दोबारा श्रीमान की सेवा मे निवेदन पहुँचाया कि सहायता के सच्चे अधिकारियो का एक ऐसा समूह उस पवित्र कोने मे रहता है जो साम्राज्य का शुभचिन्तक है और किसी के साथ राग-द्वेष नही रखता। वे लोग सदा श्रीमान् सम्राट् के वैभव तथा आयु की वृद्धि के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते रहते हैं। आज्ञा हुई कि जो कुछ तू निवेदन करेगा, वह स्वीकृत होगा। आज्ञानुसार १० हजार बीघे पडती और आबाद जमीन उनके नाम पर ब्योरेवार लिखकर सम्राट् के सम्मुख उपस्थित की जो स्वीकृत हुई। साथ ही यह भी आज्ञा हुई कि प्रति हजार बीघे के हिसाब से सौ रुपए बैलो तथा बीजो के लिये भी प्रदान किए जायँ। आप उन स्वामियो की सेवा मे यह सुसमाचार भी पहुँचा दे जिससे उन्हे धैर्य हो जाय। इस सम्बन्ध के आज्ञापत्र और रुपयो को आप वहाँ पहुँचा ही समझे। उनसे कह दीजिएगा कि इस सेवक की ये

सेवाएँ स्वीकृत हो। समय को देखते हुए जहाँ तक सम्भव होगा, यह सेवक अपनी ओर से भी उनकी कुछ सेवा करेगा। उन प्रिय महानुभावों के सम्बन्ध मे आप अपने आपको किसी प्रकार से अलग न रखिएगा। ईश्वर न करे कि अब्बुलफजल विद्वानो आदि की सेवा के काम में कोई लापरवाही या सुस्ती करे, क्योकि वह इसको अपने लिये दोनो लोको का सौभाग्य और सम्पति समझता है। सज्जन पुरुप वही है जिससे इन लोगो की सेवाएँ हो रही हैं। आप यह न समझें कि अब्बुलफजल संसार की मैल मे लिप्त हो गया है। अपने मित्रो और प्रदेश की आवश्यकताएँ भूल गया है। ईश्वर न करे, कभी ऐसा हो। मैं जब तक जीवित हूँ, इन लोगो के यहाँ झाड़ू देनेवाला हूँ और उस उच्च समूह के मार्ग की धूल हूँ। उनकी सेवा मेरे लिये आवश्यक बल्कि कर्त्तव्य है। मेरे हाथ मे जो कुछ है, वह सब मैं उनके पैरो पर रखने के लिये तैयार हूँ। बल्कि प्राण भी ऐसी वस्तु नहीं है जिसे कोई इस समूह की अपेक्षा अधिक प्रिय समझे। तात्पर्य यह कि इस श्रद्धालु के लिये जो सेवा उपयुक्त हो, उसके लिये संकेत मात्र कर दे। मैं तुरन्त वह सेवा करूँगा और उसे स्वयं अपने प्राणों पर उपकार समझूँगा।"

मखदूम उलमुल्क तथा शेख अब्दुल नबी सद्र के सम्बन्ध की सब बातें पाठको को विदित ही हैं। मखदूम ने अपने प्रताप के अस्त के समय जौनपुर के कुछ पूज्य तथा बडे लोगों के लिये सिफारिश लिखी थी, जिसका उत्तर एक पत्र मे शेख ने दिया था। धन्य है शेख की यह उदारता। जो मखदूम उल्-मुल्क किसी अवसर पर इनका अपकार करने से नहीं चूके और

जिन्होंने कुत्ते का दाँत भी पाया तो मस्जिद मे बैठनेवाले इन बेचारो के पैरो मे चुभवा दिया, उन्ही मखदूम के सम्बन्ध मे शेख ने कैसे आदर तथा सत्कारसूचक शब्द लिखे है और कैसी प्रतिष्ठा तथा सम्मान से उन्हे उत्तर दिया है। लेकिन इसे क्या किया जाय कि समय कुसमय है। शेख इस समय आकाश पर है और मखदूम जमीन पर। शेख का लेख देखता हूँ तो उसका एक एक अक्षर पडा हँस रहा है। मखदूम ने पढा होगा तो उनके आँसू निकल पडे होगे।

पहले तो उनके सम्मानसूचक विशेषण देने और नम्रता प्रदर्शित करने मे दो पृष्ठो मे अधिक सफेदी काली की है। उदाहरणार्थ—"परम प्रतिष्ठित, महोदय और सत्यता तथा शुद्धता के एकत्र करनेवाले।" इसमे स्पष्ट रूप से इस बात की ओर सकेत है कि तुम्हारे मन मे क्या है और तुम कलम से हमे क्या लिख रहे हो। परन्तु ईश्वर लिखवाता है और आपको लिखना पडता है। एक और वाक्य लिखा है जिसका आशय यह है कि आप शरअ और दीन या धर्म के सहायक तथा ससार मे कुफ्र या अधर्म के नाशक है। इसमे भी यही अभिप्राय झलकता है कि एक वह समय था, जब कि आप कुफ्र या अधर्म का नाश करनेवाले ठेकेदार बने हुए थे और हम लोग विद्रोही तथा अधर्मी थे। आज ईश्वर की महिमा देखो कि तुम कहाँ हो हम कहाँ है। एक और वाक्य का अर्थ है—"सम्राटो के मित्र और सरदारो के पार्श्ववर्त्ती"। इसे पढकर मखदूम ने अवश्य ठडा साँस लिया होगा और कहा होगा कि हाँ मियाँ, जब कभी हम ऐसे थे, तब सभी कुछ था। अब जो हो, वह तुम हो।

इसमे एक और नश्तर यह भी है कि त्यागियों तथा धर्म के अनुसार आचरण करनेवालों को सम्राटो आदि से सम्बन्ध रखने की क्या आवश्यकता है। उन्हे गरीबो और फकीरो का सहायक लिखकर यह व्यंग्य किया है कि हम गरीबो और फकीरो के साथ आपने क्या क्या व्यवहार किए हैं। उनकी बहुत अधिक प्रशंसा करते हुए यह ताना मारा है कि देखिए, आपको ईश्वरत्व तक तो पहुँचा दिया है। अब आप इस सेवक से और क्या चाहते हैं। साधारण प्रशंसाएँ आदि करने के उपरान्त लिखते हैं कि आपने इस सच्चे मित्र के नाम जो कृपापत्र भेजा है, उसमे लिखा है कि जौनपुर में रहनेवाले एकान्तवासियों की दशा से मैं परिचित नही हूँ और उनकी श्रेष्ठता का मुझे ज्ञान नहीं है। वाह! खूब कही। मैंने तो इस समूह की सेवा के लिये अपना सारा जीवन बिता दिया है, और फिर भी मैं यही चाहता हूँ कि सदा इन प्रिय व्यक्तियो की सेवा में रहूँ और यथाशक्ति उनका उपकार करता रहूँ। आप मेरे सम्बन्ध मे ऐसी बात कहते हैं। मैं इसका क्या उपाय कर सकता हूँ? मेरे दुर्भाग्य के कारण आपके मन मे यह विश्वास बैठ गया है। ईश्वर की सौगन्द है कि जबसे मुझे श्रीमान् सम्राट् की सेवा में उपस्थित होने का कुछ सुयोग मिला है और उनसे परिचय हुआ है, तब से मैं एक क्षण के लिये भी इन प्रिय लोगो के स्मरण की ओर से उदासीन नहीं बैठता। और इनके कठिन कार्य पूरे करने मे मैं कभी अपने आपको क्षमा नहीं करता (अर्थात् सदा उनके काम करने मे लगा रहता हूँ)। कृषि के योग्य ४० हजार बीघे भूमि से दिल्ली के महानुभावो की सेवा की है। दस हजार बीघे सरहिन्द के सज्जनों

के लिये, बीस हज़ार बीघे मुलतान के प्रिय व्यक्तियों के लिये, अर्थात् सब मिलाकर प्राय एक लाख बीघे भूमि श्रीमान् से निवेदन करके मुजावरों आदि के लिये प्राप्त की है। इसी प्रकार प्रत्येक नगर के फकीर आए। उन्होंने अपनी अवस्था प्रकट की। मैंने श्रीमान् सम्राट् से निवेदन करके प्रत्येक की योग्यता के अनुसार वृत्ति के लिये कुछ भूमि और कुछ नगद लेकर उनकी भेट किया। ईश्वर जानता है कि यदि मैं अपनी सारी सेवाओं का वर्णन करूँ तो एक पोथा बन जाय। ब्योरा इसलिये नहीं लिखा कि कहीं वह आपके सेवकों के लिये एक झंझट न बन जाय। यदि जौनपुर के स्वामी लोग अपने अभिमान के कारण, जो आप पर भली भाँति विदित है, मुझ शुभचिन्तक के पास न आवे और परम अहमन्यता के कारण मुझ दीन की ओर प्रवृत्त न हों, तो इसमें मेरा क्या अपराध है ? फिर भी जब आप इस प्रकार लिखते हैं, तब अपने प्राणों पर उपकार करके और इसी में अपनी कर्त्तव्य-निष्ठा समझ कर वहाँ के प्रिय व्यक्तियों के नाम आज्ञापत्र ठीक करके भेजता हूँ। आप विश्वास रखें और उसे पहुँचा हुआ समझें। इतना कष्ट देता हूँ कि आप नामों का ब्योरा लिख भेजें और प्रत्येक के सम्बन्ध की कुछ बातें भी लिख भेजें, जिससे प्रत्येक की कुछ सहायता की जा सके। ईश्वर दोनों लोकों में श्रेष्ठ महानुभाव को शिक्षक के पद पर प्रतिष्ठापूर्वक प्रतिष्ठित रखे। मतलब यह कि बैठे हुए लड़के पढ़ाया करो। लेकिन वाह शेख साहब, आपकी यह उदारता आपके ही लिये है।

शेख सदर के नाम भी एक पत्र है। जान पड़ता है कि जिन दिनों वह हज को गए थे, उन्हीं दिनों किसी कारणवश शेख

सदर ने एक पत्र इन्हें भेजा था। उसके उत्तर मे अब्बुलफजल ने बहुत अधिक आदर और प्रतिष्ठा प्रकट करते हुए यह पत्र उन्हे लिखा था। पहले तो उनकी उपाधियों और प्रशंसा आदि मे डेढ पृष्ठ पर इसलिये कागज पर नमक पीसा है कि बेचारे बुड्ढे के घावो पर छिड़के। फिर कहते हैं कि मैंने इन दिनो एक बहुत आनन्ददायक सामाचार सुना है कि आपने पवित्र स्थानों की परिक्रमा का शुभ संकल्प किया है। यह संकल्प बहुत शुभ और अच्छा है। ईश्वर सब मित्रो को इसी प्रकार का सौभाग्य प्रदान करे और उन्हें वास्तविक उद्देश्य तथा अभीष्ट की सिद्धि करावे। आपकी कृपा मे इस अभिलाषी को भी उसी प्रकार के सौभाग्य से युक्त करे।

मैंने यह बात कई बार श्रीमान् सम्राट् की सेवा मे निवेदन की और उनमे छुट्टी के लिये प्रार्थना की, परन्तु वह स्वीकृत नहीं हुई। क्या करूँ, उनकी इच्छा ईश्वर की इच्छा के साथ जुड़ी हुई है। जो काम उनके बिना होगा, उसमे कोई लाभ या सुख न होगा। विशेषतः इस दीन के लिये तो वह और भी लाभदायक न होगा जिसने अपने उस सच्चे गुरु को जी-जान से अपने सब विचार समर्पित कर दिए हैं और मन के अन्तर तथा वाह्य को उसी प्रकाशमान हृदयवाले शिक्षक को सौंप दिया है। मेरा विचार उन्हीं के विचार पर निर्भर है और मेरा संकल्प उनकी आज्ञा से सम्बद्ध है। मैं भला कैसे ऐसा साहस कर सकता हूँ और उनकी आज्ञा के विना कैसे कोई काम कर सकता हूँ। नित्य प्रात और सायंकाल उनके शुभ दर्शन करना मेरे लिये हज के तुल्य बल्कि उससे भी बढ़कर है। उनकी गली की परिक्रमा ही मेरे लिये

सबसे अधिक पुण्य का काम है और उनका मुख देखना ही मेरे जीवन का मेवा है। इसी लिये लाचारी की हालत मे इस वर्ष भी यह यात्रा स्थगित हो गई और दूसरे साल पर जा पडी। यदि सम्राट् की इच्छा ईश्वरीय इच्छा के अनुकूल होगी तो मै कावे की परिक्रमा की ओर प्रवृत्त होऊँगा। इस विचार और संकल्प मे ईश्वर साथी और सहायक रहे।

इस पत्र को देखकर शेख सदर के मन पर क्या बीती होगी! यह उसी शेख मुबारक का पुत्र है जिसके पाडित्य और गुणो को शेख सदर और मखदूम अपनी खुदाई के जोर से वर्षों तक दबाते रहे और तीन बादशाहो के शासन-काल तक जिसे उन लोगो ने काफिर और धर्म मे नई बात निकालनेवाला बनाकर एक प्रकार से देश-निकाले का दड दे रखा था। यह वही व्यक्ति है जिसके भाई फैजी को पिता मुबारक सहित उन्होने दरबार से निकलवा दिया था।

ईश्वर की महिमा देखो कि आज उसके पुत्र सम्राट् के मन्त्री है और ऐसे कुशल हैं कि इन्हे दूध मे से मक्खी की तरह निकाल कर फेक दिया। जिस महत्व के बल से ये लोग दीन और दुनिया के मालिक और पैगम्बर के नायब बने हुए बैठे थे, वह महत्त्व तथा धर्माधिकार विद्वानो और शेखो की मोहर और दस्तखत से उस नवयुवक बादशाह के नाम लिखवा दिया जो लिखना-पढना भी नहीं जानता था। और इन नवयुवको के ऐसे विचार है कि यदि उक्त दोनो महाशयो का राज्य हो तो इनके लिये प्राण-दड से कम और कोई दड नहीं है। आज उन्ही शेख सदर को कैसे खुले दिल से और फैल-फैल कर लिखते

हैं कि अपने सच्चे गुरु और पीर बादशाह की आज्ञा के बिना हज करने कैसे जाऊँ। और मेरे लिये तो उनके दर्शन करना ही हज के समान है।

सच तो यह है कि मखदूम और सदर का बल सीमा से बहुत बढ़ गया था। संसार का यह नियम है कि जब कोई बल बहुत बढ़ जाता है, तो संसार उस बल को तोड़ डालता है। और ऐसे भीषण आघात से तोड़ता है कि वह आघात कोई पर्वत भी नहीं सह सकता। फिर इन महानुभावों के तो ऐसे काम थे कि यदि संसार इनका बल न तोड़ता तो वह बल आप ही आप टूट जाता। जिस समय हम अधिकार-सम्पन्न हों, उस समय ईश्वर हमें मध्यम मार्ग का अनुसरण करने की बुद्धि दे।

एक और पत्र से ऐसा जान पड़ता है कि माता ने शेख को कोई पत्र लिखा है और उसमें दूसरी बहुत सी बातों के अतिरिक्त यह भी लिखा है कि दीन-दुःखियों की सहायता अवश्य किया करो। इसके उत्तर में देखना चाहिए कि शेख अपने पाण्डित्यपूर्ण तथा दार्शनिक विचारों को कैसे लाड की बातों में प्रकट करते हैं। पहले तो कहीं बादशाह के अनुग्रहों के लिये धन्यवाद दिया है, कहीं अपने शुभ और सज्जनतापूर्ण विचारों का उल्लेख किया है। उसी में यह भी लिखा है कि मैं बादशाह की कृपाओं को भी लोक की आवश्यकता तथा कल्याण के काम में लाता हूँ। उसी में लिखते-लिखते कहते हैं कि शरअ के ज्ञाता लोग कहते हैं कि जो व्यक्ति नमाज न पढ़नेवाले लोगों की सहायता करता है, उसके लिये फरिश्ते नरक में **कोठरी**

बनावेंगे। और जो व्यक्ति नमाज पढ़ने तथा ईश्वर की आराधना करनेवालो की सहायता करता है, उसके लिये वे स्वर्ग मे महल बनावेंगे। हम ईमान लाए और हमने सच मान लिया। जो इस पर विश्वास न करे, वह काफिर है। लेकिन अब्बुलफजल की दीन तथा नम्र शरीयत का फतवा यह है कि सब लोगो को दान देना चाहिए। नमाज पढनेवालो को भी देना चाहिए और न पढनेवालो को भी देना चाहिए, क्योकि यदि स्वर्ग मे गया तो वहाँ महल तैयार रहे—वहाँ सुखपूर्वक रहेगा। और यदि नरक मे गया और न नमाज पढनेवालो को कुछ नही दिया, तो स्पष्ट है कि वहाँ भी उसके लिये घर न होगा—वह दूसरो के घर मे घुसता फिरेगा। इसलिये एक पुरानी झोपडी वहाँ भी अवश्य रहे। दूरदर्शिता की बात है। ईश्वर इस सम्बन्ध मे अपने प्रेमियो को सामर्थ्य प्रदान करे और फिर अपने परम अनुग्रह मे अकिंचन अब्बुलफजल को वास्तविक उद्देश्यो तक पहुँचावे। आप लिखते है कि प्रिय भाई अब्दुल मुकारम के विवाह के लिये मुझे आना चाहिए। क्यो न आऊँगा। सिर आँखो से आऊँगा। कई दिन से ऐसा अवसर आया है कि श्रीमान् सम्राट् इस तुच्छ पर इस प्रकार अनुग्रह प्रकट करते रहते है कि हर समय कुछ न कुछ कहते रहते है। ऐसी अवस्था है कि बीच मे कोई व्यक्ति रहस्य का ज्ञाता नही होता। अत दो तीन दिन के लिये आना स्थगित हो गया है। यदि ईश्वर ने चाहा तो रमजान के उपरान्त आपके चरणो मे उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त करूँगा, आदि आदि। ईश्वर साथी और सहायक रहे।

यह अन्तिम वाक्य कि 'ईश्वर साथी और सहायक रहे'

प्रायः पत्रों के अन्त मे लिखा करते थे। और सच भी है कि इन असहाय भाइयों का साथी और सहायक जो था, वह ईश्वर ही था।

राजा टोडरमल

ये अकबर बादशाह के मन्त्री थे, समस्त भारतवर्ष के साम्राज्य के दीवान थे। लेकिन फिर भी आश्चर्य है कि किसी लेखक ने इनके वंश या मूल निवास-स्थान का उल्लेख न किया। खुलासतुल् तवारीख मे देख लिया। यद्यपि उसका लेखक हिन्दू है और वह टोडरमल का भी बहुत बड़ा प्रशंसक है, लेकिन उसने भी कुछ न खोला। हाँ, पंजाब के पुराने पुराने पंडितों और भाटों से पूछा तो पता चला कि वे टन्डन खत्री थे। पंजाब के लोग इस बात का अभिमान करते हैं कि इनका जन्म हमारे प्रदेश मे हुआ था। कुछ लोग कहते हैं कि ये खास लाहौर के रहनेवाले थे और कुछ लोगों का मत है कि लाहौर जिले का चूनियाँ नामक स्थान इनका घर था और वहाँ उनके बड़े-बड़े विशाल भवन उपस्थित हैं। एशियाटिक सोसाइटी ने भी इनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध मे जाँच की और निश्चय किया कि ये अवध प्रान्त के लाहरपुर नामक स्थान के रहनेवाले थे।

विधवा माता ने अपने इस होनहार पुत्र को बहुत ही दरिद्रता की अवस्था मे पाला था। रात के समय उसके सच्चे हृदय से ठंडे साँस से जो प्रार्थनाएँ निकल कर ईश्वर के दरबार मे पहुँचती थीं, वह ऐसा काम कर गईं कि टोडरमल भारतवर्ष के सम्राट् के दरबार मे बाईस सूबों के प्रधान दीवान और मन्त्री

हो गए। पहले वे साधारण मुन्शियो की भाँति कम पढे-लिखे नौकरी करनेवाले आदमी थे और मुजफ्फरखाँ के पास काम करते थे। फिर बादशाही मुत्सद्दियो मे हो गए। उनमे विचार-शीलता, नियमो का पालन और काम की सफाई बहुत थी और आरम्भ से ही थी। उन्हे पुस्तको का अध्ययन करने तथा सब बातो का ज्ञान प्राप्त करने का भी शौक था। इसलिये वे विद्या और योग्यता भी प्राप्त करने लगे और अपने काम मे भी उन्नति करने लगे। काम का नियम है कि जो उसे सँभालता है, वह भी चारो ओर से सिमट कर उसी की ओर ढुलकता है। टोडरमल प्रत्येक कार्य बहुत अच्छे ढंग और शौक से करते थे, इसलिये बहुत सी सेवाएँ तथा प्राय कार्यालय आदि उन्ही की कलम से सम्बद्ध हो गए। दफ्तरो के काम-धन्धो के सम्बन्ध मे उनका ज्ञान इतना बढ गया था कि अमीर और दरबारी लोग हर बात का पता उन्ही से पूछने लगे। उन्होने दफ्तर के कागजो, मुकदमो की मिसलो और बिखरे हुए कामो को भी नियमो और सिद्धान्तो के क्रम मे बद्ध किया। धीरे धीरे वे बादशाह के समक्ष उपस्थित होकर कागज आदि पेश करने लगे। हर काम मे उन्ही का नाम जबान पर आने लगा। इन कारणो से यात्रा मे भी बादशाह के लिये उन्हे अपने साथ रखना आवश्यक हो गया।

टोडरमल सब धार्मिक कृत्य और पूजा-पाठ आदि बहुत करते थे और इस विषय मे पक्के हिन्दू थे। लेकिन वे समय को भी भली भाँति देखते थे और अपनी सूक्ष्मदर्शी दृष्टि से समझ लेते थे कि कौन सी बातें आवश्यक तथा कौन सी निरर्थक है। ऐसे अवसर पर उन्होने धोती फेंक कर बरजो (घाघरेदार पाजामा ?) पहन

लिया, जामा उतार कर चोगे पर कमर कस ली और मोजे चढ़ा लिए। अब वे तुरकों में घोड़ा दौड़ाए हुए फिरने लगे। बादशाही लश्कर कोसों में उतरा करता था। यदि उसमें किसी आदमी को ढूँढने की आवश्यकता होती तो दिन भर बल्कि कई दिन लग जाते। उन्होंने प्यादा, सवार, तोपखाना, बहीर, सदर बाजार और लश्कर के उतारने के लिये भी पुराने सिद्धान्तों में अनेक सुधार किए और सबको उपयुक्त स्थान पर स्थापित किया। अकबर भी मनुष्यत्व का जौहरी और सेवाओं का सराफ था। जब उसने देखा कि ये हर काम के लिये सदा तैयार रहते हैं और खूब फुरती से सब काम करते हैं, तब उसने समझ लिया कि ये मुत्सद्दीगिरी के अतिरिक्त सैनिकता तथा सरदारी के गुण भी रखते हैं।

नियमों और आज्ञाओं आदि के पालन और हिसाब-किताब आदि समझने में टोडरमल किसी के साथ बाल भर भी रिआयत नहीं करते थे। इस कारण सब लोग यह कहकर उनकी शिकायत करते थे कि इनका स्वभाव बहुत कड़ा है। सन् ९७२ हि० में उन्होंने अपने इस गुण का इस प्रकार प्रयोग किया कि उसका परिणाम बहुत ही हानिकारक रूप में प्रकट हुआ। जब बादशाह ने खानजमाँ के साथ युद्ध करने के लिये मुनइमखाँ आदि अमीरों को कड़ा मानिकपुर की ओर भेजा, तब मीर मअज उल् मुल्क को बहादुरखाँ आदि पर आक्रमण करने के लिये कन्नौज की ओर भेजा। फिर टोडरमल से कहा कि तुम भी जाओ और मीर के साथ सम्मिलित होकर इन उद्दंड सेवकों को समझाओ। यदि वे ठीक मार्ग पर आ जायँ तो अच्छा ही है। नहीं तो उपयुक्त दंड पावें। जब ये वहाँ पहुँचे, तब सन्धि की बातचीत आरम्भ हुई।

बहादुरखाँ भी युद्ध करना नहीं चाहता था, परन्तु मीर का स्वभाव आग था। ऊपर से राजा साहब बारूद होकर पहुँचे। तात्पर्य यह कि लड मरे। (विशेष देखो मीर मअज उल् मुल्क के प्रकरण मे।) व्यर्थ कष्ट उठाए और नीचा देखा। लेकिन इस बात के लिये राजा साहब की पूरी प्रशंसा होनी चाहिए कि वे मैदान मे नहीं टले। प्रिय राजा साहब, घर के सेवको मे हिसाब-किताब मे अपने नियमो आदि का जिस प्रकार चाहो, पालन कर लो। लेकिन साम्राज्य की समस्याओ मे बिगडी बात बनाने के लिये कुछ और ही नियमो की आवश्यकता होती है। वहाँ के नियम और सिद्धान्त यही है कि जान-बूझकर भी किसी विशेष बात की ओर ध्यान न दिया जाय और उसे यो ही छोड दिया जाय। यहाँ इस प्रकार के सिद्धान्तो का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है।

चित्तौड, रणथम्भौर और सूरत आदि की विजयो मे भी राजा साहब के कठोर परिश्रमो ने बडे बडे इतिहास-लेखको से इस बात के प्रमाण-पत्र ले लिए कि किलो आदि पर अधिकार करने और उनके सम्बन्ध के और दूसरे काम करने मे राजा टोडरमल की कुशल बुद्धि जो काम करती है, वह उसी का काम है। वह दूसरे को प्राप्त ही नहीं हो सकती।

सन ९८० हि० मे राजा टोडरमल को आज्ञा हुई कि गुजरात जाओ और वहाँ के माल विभाग तथा आय-व्यय के कार्यालय की व्यवस्था करो। ये वहाँ गए और थोडे ही दिनो मे सब कागज-पत्र ठीक करके ले आए। इनकी यह सेवा बादशाह के दरबार मे स्वीकृत और मान्य हुई।

सन् ९८१ हि० मे जब मुनइमखाँ विहार की चढ़ाई में सेना-नायकत्व कर रहे थे, तब लड़ाई बहुत बढ़ गई। यह भी पता लगा कि लश्कर के अमीर लोग या तो आराम-तलबी के कारण या आपस की लाग-डाँट के कारण या शत्रु के साथ रिआयत करने के विचार से जान तोड़कर सेवा और अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करते। अब राजा टोडरमल विश्वसनीय, मिजाज पहचाननेवाले और भीतरी रहस्य की बातो के ज्ञाता हो गए थे। इन्हे कुछ प्रसिद्ध अमीरो के साथ सेनाएँ देकर सहायता करने के लिये भेजा, जिसमे ये जाकर लश्कर की व्यवस्था करें और जो लोग सुस्त या उपद्रवी हैं, वे राजा साहब को बादशाह का जासूस समझ कर इस प्रकार काम करें, मानों स्वयं बादशाह ही वहाँ उपस्थित हैं। शाहबाज खाँ कम्बो आदि अमीरों को बादशाह ने इनके साथ कर दिया और लश्कर की व्यवस्था तथा निगरानी के सम्बन्ध में भी कुछ बाते बतला दीं। ये बडी फुरती से गए और खानखानाँ के लश्कर मे सम्मिलित हो गए। शत्रु सामने था। युद्ध-क्षेत्र की व्यवस्था हुई। राजा ने सारे लश्कर की हाजिरी ली। जरा देखना चाहिए कि योग्यता और कार्य-कुशलता कैसी चीज है। बुड्ढे-बुड्ढे वीर चगताई तुर्क, हुमायूँ बल्कि बाबर के युद्ध देखनेवाले, बडे-बडे वीर सेनापति जो तलवारें मारकर अपने-अपने पद पर पहुँचे थे, अपने-अपने ओहदे लेकर खडे हुए और कलम का मारनेवाला मुत्सद्दी अप्रसिद्ध खत्री उनकी हाजिरी लेने लगा। हाँ क्यों नहीं, जब वह इस पद के योग्य था, तब वह अपना पद क्यो न प्राप्त करे और अकबर जैसा न्यायी बादशाह उसे वह पद क्यों न दे!

जब पटने पर विजय प्राप्त हुई तो इस युद्ध में भी इनकी सेवाओं ने इनकी वीरता की ऐसी सिफारिशे की कि इन्हें झंडा और नक्कारा दिलवाया। इन्हें मुनइमखाँ के साथ से अलग न होने दिया और बंगाल पर चढाई करने के लिये जो अमीर चुने गए, उनमे फिर इनका नाम लिखा गया। ये इस चढाई की मानो आत्मा और संचालिनी शक्ति हो गए। प्रत्येक युद्ध में ये बडी तत्परता से कमर बाँधकर पहुँचते थे और सबसे आगे पहुँचते थे। परन्तु टाँडे के युद्ध मे इन्होंने ऐसा साहस दिखलाया कि विजय-पत्रों तथा इतिहासों मे मुनइमखाँ के साथ इनका भी नाम लिखा गया।

जुनैद करारानी का विद्रोह इन्होंने बहुत ही वीरता से दबाया। एक बार शत्रु अपने सिर पर निर्लज्जता की धूल डालकर भागा और फिर दोबारा आया। उससे बडा धोखा खाया। एक अवसर पर कोई सरदार मुनइमखाँ से बिगड गया जिससे बादशाही कामों मे गडबडी पडने लगी। उस समय टोडरमल ने बहुत ही बुद्धिमत्ता तथा साहस से उसका सुधार किया और शीघ्र ही बहुत ठीक व्यवस्था कर दी।

ईसाखाँ नियाजी सेना लेकर आया। उसके कारण कयाखाँ कग के मोरचे पर भारी विपत्ति आ पडी। यद्यपि उसकी सहायता के लिये और अमीर भी आ पहुचे थे, परन्तु टोडरमल को शाबाश है कि वे खूब पहुँचे और ठीक समय पर पहुचे।

जब दाऊदखाँ अफगान गूजरखाँ से मिल गया और अपने बाल-बच्चो को रोहतास मे छोडकर सेना लेकर आया, तब राजा साहब उसका सामना करने के लिये तुरन्त प्रस्तुत हो गए।

वादशाही अमीर नित्य प्रति की चढाई और बंगाल की बद-हवाई से बहुत दुःखी हो रहे थे। राजा ने देखा कि लोगों को आशा दिलाने के लिये मैं जो मन्तर फूँकता हूँ, उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतः उन्होंने मुनइमखाँ को लिखा। वह भी आगा-पीछा कर रहे थे। इतने मे अकवर का आज्ञापत्र पहुँचा जिसमे वहुत अधिक ताकीद की गई थी। उसे पढ़कर खानखानाँ भी सवार हुए और दो वड़े-वड़े लश्कर लेकर शत्रु के सामने जा पहुँचे। दोनो पक्षो की सेनाएँ मैदान मे सुसज्जित हुई। वादशाही लश्कर के मध्य मे मुनइमखाँ के सिर पर सेनापति का झंडा लहरा रहा था। शत्रु गूजर खाँ का हरावल ऐसे जोरो से आक्रमण करके आया कि वादशाही सेना के हरावल को सेना के मध्य भाग में ढकेलता हुआ चला गया। मुनइम खाँ वरावर तीन कोस तक भागा गया। उस समय टोडरमल सेना का दाहिना पार्श्व थे। धन्य हैं वह कि वह खाली अपने स्थान पर डटे ही नहीं रहे, वल्कि सेना के सरदारों का साहस वढ़ाते रहे और कहते रहे कि घवराओ नहीं। अव देखो, विजय की हवा चलती है। शत्रु ने खान आलम के साथ खानखानाँ के मरने का भी समाचार उड़ा दिया। राजा साहव अपनी सेना सहित अपने स्थान पर खड़े रहे। जव साथियों ने उनसे कहा, तव उन्होंने वहुत ही साहस तथा दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया कि यदि खानखानाँ नहीं रहे तो क्या हुआ। हम अकवर के प्रताप के सेनापतित्व पर लड़ते हैं। वह सलामत रहे। देखो, अव शत्रु को नष्ट किए देते हैं। तुम लोग घवराओ नहीं। इसके उपरान्त ज्यों ही अवसर मिला, त्यों ही दाहिनी ओर से ये और वाईं ओर से **शाहमखाँ जलायर** ऐसे

जोरो के साथ जाकर गिरे कि शत्रु के लश्कर को तितर-वितर कर दिया। इतने मे गूजरखाँ के मरने का समाचार पहुँचा। उस समय अफगान लोग बद-हवास होकर भागे और शाही लश्कर विजयी हुआ।

सन ९८३ हि० मे दाऊद की अवस्था इतनी खराब हो गई कि उसने सन्धि की प्रार्थना की। युद्ध बहुत दिनो से चल रहा था और देश की बहुत दुरवस्था हो रही थी, जिससे बादशाही लश्कर भी बहुत तंग आ गया था। दाऊद की ओर से बुड्ढे-बुड्ढे अफगान खानखानाँ तथा दूसरे अमीरो के लश्कर मे पहुँचे और सन्धि की बात-चीत करने लगे। खानखानाँ की रण-नीति सदा सन्धि और शान्ति के ही पक्ष मे रहती थी। वह सन्धि के लिये तैयार हो गए। अमीर लोग पहले ही बहुत दुःखी और तंग हो रहे थे। उनकी तो मानो हार्दिक कामना पूरी हुई। सब लोग सन्धि के लिये सहमत हो गए। एक राजा टोडरमल ही ऐसे थे जो अपने व्यक्तिगत सुख को सदा अपने स्वामी के नाम और काम पर निछावर करते थे। वे सन्धि के लिये सहमत नहीं हुए। उन्होने कहा कि शत्रु की जड उखड चुकी है। अब थोडे से साहस मे सब अफगानो का नाश हो जायगा। इन लोगो की प्रार्थनाओ तथा अपने सुखो पर दृष्टिपात मत करो। निरन्तर धावे किए जाओ और पीछा मत छोडो। खानखानाँ तथा लश्कर के दूसरे अमीरो ने उन्हे बहुत समझाया, परन्तु वे अपनी सम्मति से न हटे। यद्यपि सन्धि हो गई * और दरबार बादशाही

---

* सन्धि के दरबार का तमाशा भी देखने ही योग्य है। देखो मुनइमखाँ खानखानाँ का प्रकरण।

सामान के साथ बहुत ही सजधज से सजाया गया और सारे लश्कर ने ईद मनाई, पर राजा साहब अपनी बात के पूरे थे; इसलिये वे उस दरबार मे आए तक नहीं। खानखानाँ ने उन्हें बुलाने के लिये बहुतेरे प्रयत्न किए, परन्तु वह किस की सुनते थे। उन्होंने सन्धि-पत्र पर मोहर तक नहीं की।

जब बंगाल प्रान्त और उसके आस-पास के प्रदेशों की ओर से निश्चिन्तता हुई, तब बादशाह ने टोडरमल को बुला भेजा। ये जान निछावर करनेवाले बादशाह का मिजाज पहचानते थे, इसलिये तुरन्त उसकी सेवा में उपस्थित हुए। इन्होने बंगाल के अनेक उत्तमोत्तम पदार्थ तथा फिरंग देश के भी बहुत से उत्तम तथा अद्भुत पदार्थ, जो समुद्री व्यापार के कारण वहाँ पहुँचते थे, बादशाह को भेंट किए। वह जानते थे कि हमारे बादशाह को हाथी बहुत प्रिय हैं। इसलिये चुन कर ५४ हाथी लाए थे। वे सब हाथी बहुत अच्छे और समस्त बंगाल में प्रसिद्ध थे। राजा टोडरमल ने बंगाल देश की सब बातें और युद्धों का पूरा विवरण बादशाह की सेवा मे कह सुनाया। अकबर बहुत ही प्रसन्न हुआ। इन्हे दीवानी का उच्च पद प्रदान किया गया। थोड़े ही दिनों में समस्त राजनीतिक तथा माल विभाग के कार्य उनकी प्रकाशमान बुद्धि पर छोड़ कर इन्हे समस्त अधिकारों से युक्त मन्त्री बनाया गया और स्थायी रूप से बादशाह के प्रतिनिधि के पद पर नियुक्त किया गया। इसी सन् मे मुनइमखाँ का देहान्त हो गया। वहाँ उपद्रव तो हो ही रहे थे। दाऊद फिर विद्रोही हो गया। अफगान फिर अपनी असालत दिखलाने लगे। समस्त बंगाल में विद्रोह फैल गया। अकबर के अमीरों की यह दशा थी कि लूट

किए । अकबर के लिये उस देश का यही सबसे बडा उपहार था। इस युद्ध के विजय-पत्र खानजहाँ और राजा टोडरमल के नाम से लिखे गए।

इसी बीच मे समाचार मिला कि वजीरखाँ की अयोग्यता के कारण गुजरात और दक्खिन की सीमा की बहुत बुरी दशा हो रही है। आज्ञा हुई कि मोतमिदउद्दौला राजा टोडरमल शीघ्र वहाँ पहुँचे। उन्होने नदरबार प्रदेश मे पहुँच कर दौरा किया और कार्यालयो को देखा। वहाँ से सूरत पहुँचे। वहाँ से भडौच, बडौदा और चाँपानेर होते हुए गुजरात से होकर पटन के माल विभाग के कार्यालयो को देखने के लिये गए थे कि इतने मे मिरजा कामरान की कन्या, जो इब्राहीम मिरजा की पत्नी थी, अपने पुत्र को लेकर आई और गुजरात प्रान्त मे उपद्रव मचाने लगी। उसके साथ और भी अनेक विद्रोही उठ खडे हुए। देश मे भारी विद्रोह मच गया। वजीर-खाँ ने युद्ध की सब सामग्री और किले तथा प्राकार की मरम्मत आदि की व्यवस्था की और इतना ही आरम्भिक कार्य करके किले मे बन्द होकर बैठ गया। साथ ही दूत दौडाए कि भागा-भाग जाकर राजा टोडरमल को इस उपद्रव का समाचार पहुँचावे। गोश्त तो फिस्स हो गया, परन्तु दाल धन्य है जिसने खूब उबाल दिखलाया। राजा साहब जिस हाथ मे कलम पकडे हुए लिख रहे थे, उसी मे तलवार पकडकर चल पडे और गुजरात पहुँचे। वजीरखाँ को मर्द बनाकर नगर से बाहर निकाला। उस समय विद्रोही लोग बडौदे पर अधिकार करके बैठे हुए थे। ये बागे उठाए हुए पहुँचे। अभी बडौदा चार कोस था कि विद्रोहियो के

पैर उखड़ गए और सब लोग भाग निकले। वह आगे आगे भागे जाते थे और ये उनका पीछा किए जाते थे। वे लोग खम्भात से जूनागढ़ होते हुए ढुलका के संकीर्ण क्षेत्र में जाकर रुके और विवश होकर वहाँ उन लोगों ने सामना किया।

दोनों ओर की सेनाएँ जम गईं। वजीरखाँ मध्य में हुए। चारों ओर चारों परे सज्जित हो गए। राजा साहब बाईं ओर थे। शत्रु ने सलाह की थी कि पंक्तियाँ बाँधते ही जोरों से युद्ध आरम्भ कर दो। कुछ लोग सामने हों और बाकी लोग अचानक भाग निकलो। अकबर के वीर अवश्य ही पीछा करेंगे और राजा साहब उनके आगे रहेंगे। अवसर पाकर एकाएक पीछे की ओर लौट पड़ो और वजीरखाँ तथा राजा साहब दोनों को बीच में घेरकर मार लो। बस काम हो जायगा। और वास्तव में उन लोगों को सबसे अधिक ध्यान राजा टोडरमल का ही था। जब युद्ध आरम्भ हुआ, तब मिरजा बिलकुल मरियल चाल से वजीरखाँ पर आक्रमण करने के लिये आगे बढ़े। उधर मेहरअली कोलाबी, जो सारे झगड़े की जड़ था, राजा टोडरमल पर आया। वे अचल रूप से अपने स्थान पर स्थित थे। वह उनसे टक्कर खाकर पीछे की ओर हटा। बादशाही लश्कर का दाहिना पार्श्व भागा। मध्य भाग भी निरुत्साह हो गया। हाँ वजीरखाँ अपने साथ बहुत से वीरों को लिए हुए भली भाँति डटा रहा। एक बार ऐसा अवसर आ ही पहुँचा था कि वह अपने नाम और प्रतिष्ठा पर अपने प्राण निछावर कर दे, कि राजा ने देखा। उन्होंने ऐसे हृदय के आवेश से, जिसमें सहस्रों हृदयों का आवेश भरा था, घोड़े उठाए। शत्रु की सेना को उलटते-पुलटते वहाँ जा पहुँचे और ऐसे जोर

किए। अकबर के लिये उस देश का यही सबसे बड़ा उपहार था। इस युद्ध के विजय-पत्र खानजहाँ और राजा टोडरमल के नाम से लिखे गए।

इसी बीच मे समाचार मिला कि वजीरखाँ की अयोग्यता के कारण गुजरात और दक्खिन की सीमा की बहुत बुरी दशा हो रही है। आज्ञा हुई कि मोतमिदउद्दौला राजा टोडरमल शीघ्र वहाँ पहुँचे। उन्होंने नदरबार प्रदेश मे पहुँच कर दौरा किया और कार्यालयो को देखा। वहाँ से सूरत पहुँचे। वहाँ से भडौच, वडौदा और चाँपानेर होते हुए गुजरात से होकर पटन के माल विभाग के कार्यालयो को देखने के लिये गए थे कि इतने मे मिरजा कामरान की कन्या, जो इब्राहीम मिरजा की पत्नी थी, अपने पुत्र को लेकर आई और गुजरात प्रान्त मे उपद्रव मचाने लगी। उसके साथ और भी अनेक विद्रोही उठ खडे हुए। देश मे भारी विद्रोह मच गया। वजीर-खाँ ने युद्ध की सब सामग्री और किले तथा प्राकार की मरम्मत आदि की व्यवस्था की और इतना ही आरम्भिक कार्य करके किले मे बन्द होकर बैठ गया। साथ ही दूत दौडाए कि भागा-भाग जाकर राजा टोडरमल को इस उपद्रव का समाचार पहुँचावे। गोश्त तो फिस्स हो गया, परन्तु दाल धन्य है जिसने खूब उबाल दिखलाया। राजा साहब जिस हाथ मे कलम पकडे हुए लिख रहे थे, उसी मे तलवार पकडकर चल पडे और गुजरात पहुँचे। वजीरखाँ को मर्द बनाकर नगर से बाहर निकाला। उस समय विद्रोही लोग बडौदे पर अधिकार करके बैठे हुए थे। ये बागे उठाए हुए पहुँचे। अभी बडौदा चार कोस था कि विद्रोहियो के

पैर उखड़ गए और सब लोग भाग निकले। वह आगे आगे भागे जाते थे और ये उनका पीछा किए जाते थे। वे लोग खम्भात से जूनागढ़ होते हुए ढुलका के संकीर्ण क्षेत्र मे जाकर रुके और विवश होकर वहाँ उन लोगो ने सामना किया।

दोनो ओर की सेनाएँ जम गईं। वजीरखाँ मध्य मे हुए। चारों ओर चारो परे सज्जित हो गए। राजा साहब बाईं ओर थे। शत्रु ने सलाह की थी कि पंक्तियाँ बाँधते ही जोरो से युद्ध आरम्भ कर दो। कुछ लोग सामने हो और बाकी लोग अचानक भाग निकलो। अकबर के वीर अवश्य ही पीछा करेंगे और राजा साहब उनके आगे रहेंगे। अवसर पाकर एकाएक पीछे की ओर लौट पडो और वजीरखाँ तथा राजा साहब दोनो को बीच में घेरकर मार लो। बस काम हो जायगा। और वास्तव में उन लोगो को सबसे अधिक ध्यान राजा टोडरमल का ही था। जब युद्ध आरम्भ हुआ, तब मिरजा बिलकुल मरियल चाल से वजीरखाँ पर आक्रमण करने के लिये आगे बढ़े। उधर मेहरअली कोलाबी, जो सारे झगडे की जड था, राजा टोडरमल पर आया। वे अचल रूप से अपने स्थान पर स्थित थे। वह उनसे टक्कर खाकर पीछे की ओर हटा। बादशाही लश्कर का दाहिना पार्श्व भागा। मध्य भाग भी निरुत्साह हो गया। हाँ वजीरखाँ अपने साथ बहुत से वीरो को लिए हुए भली भाँति डटा रहा। एक बार ऐसा अवसर आ ही पहुँचा था कि वह अपने नाम और प्रतिष्ठा पर अपने प्राण निछावर कर दे, कि राजा ने देखा। उन्होंने ऐसे हृदय के आवेश से, जिसमे सहस्रों हृदयों का आवेश भरा था, घोडे उठाए। शत्रु की सेना को उलटने-पुलटने वहाँ जा पहुँचे और ऐसे जोर

मे आकर गिरे कि शत्रु की व्यवस्था का सारा ताना-बाना टूट गया ।

कामरान के पुत्र ने काम किया था । स्त्रियो को पुरुषो के से वस्त्र पहनाकर घोडो पर चढाया था । वे बहुत भली भाँति तीर और भाले आदि चलाती थीं । बहुत कुछ रक्त-पात के उपरान्त शत्रु भाग गए और बादशाही लश्कर के लूटने के लिये बहुत सा माल-असबाब पीछे छोड गए । बहुत से विद्रोही पकडे भी गए । टोडरमल ने लूट की सारी सामग्री, हाथियो और कैदियो आदि को ज्यो के त्यो वही वस्त्र और वही तीर-कमान हाथ मे देकर दरबार की ओर भेज दिया, जिसमे बादशाह सलामत जनानी मरदानगी का भी नमूना देख लें । उनके सुयोग्य पुत्र धारा ने इन लोगो को लाकर दरबार मे उपस्थित किया ।

सन ९८७ हि० मे फिर जोरो से आँधी आई । इस बार उसका रग कुछ और ही था । बात यह थी कि इस बार स्वयं अकबर के अमीरो मे ही बिगाड़ था । सब सैनिक और उनके सरदार लोग प्रधान सेनापति के विद्रोही हो गए थे, और आश्चर्य यह कि सब के सब तुर्क और मुगल थे । अकबर ने राजा टोडरमल को भेजा । देखने की बात यह है कि उनकी अधीनता मे जो और सरदार दिए गए थे, वे सब भी भारत के ही राजा लोग थे । इसका कारण यह था कि अकबर जानता था कि ये सब भाई-बन्द है । आपस मे मिल जायँगे । परन्तु टोडरमल के लिये यह अवसर बहुत ही विकट था । यद्यपि उसके सामने विद्रोही लोग थे, परन्तु फिर भी वे सब चगताई वश के पुराने सेवक और नमक खानेवाले थे । इसे

अवसर पर मानो अपनी ही तलवारों से अपने ही हाथ-पैर कटते थे। इस पर और भी कठिनता यह थी कि वे लोग मुसलमान थे और ये हिन्दू थे। परन्तु सुयोग्य राजा साहब ने इस समस्या का भी बड़े ही धैर्य तथा बुद्धिमत्ता के साथ निराकरण किया। उन्होंने युक्ति तथा तलवार दोनों के गुण बहुत उत्तमतापूर्वक दिखलाए और बहुत अधिक परिश्रम करके सब काम किए। जिन लोगों को अपनी ओर खींच सके, उन्हें बहुत ही युक्तिपूर्वक खींच लिया। जो लोग बिलकुल नमकहराम थे, वे या तो तलवार के घाट उतरे और या उन्होंने अपनी करनी का दंड पाया। वे लोग चारों ओर भागते फिरते थे और बादशाह पर जान निछावर करनेवाले नमक-हलाल लोग उनका पीछा करते फिरते थे। लेकिन फिर भी क्या इधर और क्या उधर, सभी ओर बादशाह के सेवक ही नष्ट होते थे।

इस युद्ध में कुछ दुष्ट अशुभचिन्तकों ने इस उद्देश्य से एक षड्यन्त्र रचा था कि जिस समय राजा टोडरमल लश्कर की हाजिरी लेते रहें, उस समय उन्हें मार डाला जाय। इस समय चारों ओर विद्रोह मचा ही हुआ है। कौन जानेगा और कौन पहचानेगा। परन्तु राजा साहब बहुत ही समझदार थे। ऐसे ढंग से अलग हो गए कि अपने तो प्राण बच गए और अशुभचिन्तकों का परदा रह गया।

इस युद्ध में राजा टोडरमल ने मुँगेर के चारों ओर प्राकार तथा दमदमा आदि बनाकर वहाँ एक बहुत बड़ा जंगी किला खड़ा कर दिया। सन ९८९ हि० में सब झगडों का अन्त करके फिर दरबार में आए और अपने स्थायी मन्त्रीवाले पद पर बैठे।

समस्त अधिकारों से युक्त दीवान हो गए और भारतवर्ष के २२ सूबों पर उनकी कलम दौड़ने लगी।

सन ९९० हि० में राजा साहब ने जशन किया और अपने यहाँ बादशाह की दावत की। अकबर भी अपने सेवकों पर कृपा करनेवाला और निष्ठों का काम बनानेवाला था। वह उनके घर गया। उनकी प्रतिष्ठा एक से हजार हो गई। साथ ही हजारों निष्ठ सेवकों के साहस बढ़ गए।

सन ९९३ हि० में राजा साहब को चार-हज़ारी मन्सब प्रदान किया गया।

इसी सन में पहाड़ी यूसुफजई तथा सवाद आदि की लड़ाई आरम्भ हो गई। राजा बीरबल मारे गए (विशेष देखो बीरबल का हाल)। बादशाह को बहुत अधिक दुःख हुआ। उन्होंने दूसरे दिन राजा टोडरमल को उस ओर भेजा। उस समय मानसिंह जमरूद नामक स्थान में थे और घोर अन्धकार में अपनी तलवार से प्रकाश कर रहे थे। उनके पास आज्ञा पहुँची कि जाकर राजा टोडरमल से मिलो और उनके परामर्श से सब काम करो। राजा ने सवाद के पार्श्व में लंगर पर्वत के पास छावनी डाल दी और सेनाओं को इधर-उधर फैला दिया। भला डाकुओं की शक्ति ही कितनी हो सकती थी! वे सब मारे गए, बाँधे गए और भाग गए। ये विद्रोहियों की गरदनें तोड़ कर सिर ऊँचा करके और सफल-मनोरथ होकर वहाँ से लौट आए। सीमा प्रान्त के शेष कार्यों का भार मानसिंह के जिम्मे रहा।

सन ९९६ हि० में कलीचखाँ ने गुजरात से आकर बहुत से विलक्षण उपहार आदि बादशाह की सेवा में भेंट किए।

उन्हें आज्ञा हुई कि टोडरमल के साथ दीवानखाने मे वैठकर माल विभाग के सब काम किया करो। मुल्ला साहब लिखते हैं कि टोडरमल सत्तरा-बहत्तरा हो गया है, उसके होश-हवास ठीक नहीं हैं; रात के समय कोई शत्रु आ लगा। उसने इन्हें तलवार मारी थी। पर वह चमड़े को छीलती हुई ऊपर से निकल गई। शेख अब्बुलफजल इस घटना का वर्णन बहुत अच्छी तरह करते है। कहते हैं कि सुशील अमीरो पर सन्देह था कि उन्हींमें से किसी ने धार्मिक द्वेप के कारण यह कृत्य किया होगा। परन्तु जॉच करने पर पता चला कि राजा ने किसी खत्री को उसके दुष्कृत्य का दड दिया था। उसकी आँखों पर क्रोध ने अँधेरी चढाई। चॉदनी रात थी। वह कलुपित-हृदय घात लगाए वैठा था। जब राजा साहब आए, तब वह अवसर पाकर अपना काम कर गया। अन्त मे उसका और उसके साथियो का भी पता लग गया। उनमें से प्रत्येक ने दंड पाया।

सन् ९९७ हि० मे बादशाह काश्मीर की ओर चले। नियम यह था कि जब बादशाह कहीं बाहर जाते थे, तब दो बड़े और प्रतिष्ठित अमीर राजधानी मे रहा करते थे। लाहौर का प्रबन्ध राजा भगवानदास को सौंपा गया। उनके साथ राजा टोडरमल को भी वहाँ छोड गए। एक तो सौ रोगो का एक रोग उनका बुढापा था। तिस पर कुछ बीमार भी हो गए। बादशाह को निवेदनपत्र लिखा जिसका आशय यह था कि रोग ने वृद्धावस्था मे पड्यन्त्र करके जीवन पर आक्रमण किया है और उसे धर दबाया है। मृत्यु का समय समीप दिखाई पडता है। यदि आज्ञा हो तो सब कामो से हाथ उठाकर गंगा जी के तट पर

समस्त अधिकारो से युक्त दीवान हो गए और भारतवर्ष के २२ सूबो पर उनकी कलम दौडने लगी ।

सन ९९० हि० मे राजा साहब ने जशन किया और अपने यहाँ बादशाह की दावत की । अकबर भी अपने सेवको पर कृपा करनेवाला और निष्ठो का काम बनानेवाला था । वह उनके घर गया । उनकी प्रतिष्ठा एक से हजार हो गई । साथ ही हजारो निष्ठ सेवको के साहस बढ गए ।

सन ९९३ हि० मे राजा साहब को चार-हजारी मन्सब प्रदान किया गया ।

इसी सन मे पहाडी यूसुफजई तथा सवाद आदि की लडाई आरम्भ हो गई । राजा बीरबल मारे गए (विशेष देखो बीरबल का हाल) । बादशाह को बहुत अधिक दु ख हुआ । उन्होने दूसरे दिन राजा टोडरमल को उस ओर भेजा । उस समय मानसिह जमरूद नामक स्थान मे थे और घोर अन्धकार मे अपनी तलवार से प्रकाश कर रहे थे । उनके पास आज्ञा पहुँची कि जाकर राजा टोडरमल से मिलो और उनके परामर्श मे सब काम करो । राजा ने सवाद के पार्श्व मे लगर पर्वत के पास छावनी डाल दी और सेनाओ को इधर-उधर फैला दिया । भला डाकुओ की शक्ति ही कितनी हो सकती थी ! वे सब मारे गए, बॉधे गए और भाग गए । ये विद्रोहियो की गरदने तोड कर सिर ऊँचा करके और सफल-मनोरथ होकर वहाँ से लौट आए । सीमा प्रान्त के शेष कार्यों का भार मानसिह के जिम्मे रहा ।

सन ९९६ हि० मे कलीचखाँ ने गुजरात से आकर बहुत से विलक्षण उपहार आदि बादशाह की सेवा मे भेट किए ।

उन्हे आज्ञा हुई कि टोडरमल के साथ दीवानखाने में बैठकर माल विभाग के सब काम किया करो। मुल्ला साहब लिखते हैं कि टोडरमल सत्तरा-बहत्तरा हो गया है, उसके होश-हवास ठीक नहीं हैं; रात के समय कोई शत्रु आ लगा। उसने इन्हें तलवार मारी थी। पर वह चमडे को छीलती हुई ऊपर से निकल गई। शेख अब्बुलफजल इस घटना का वर्णन बहुत अच्छी तरह करते है। कहते हैं कि सुशील अमीरों पर सन्देह था कि उन्हींमे से किसी ने धार्मिक द्वेष के कारण यह कृत्य किया होगा। परन्तु जाँच करने पर पता चला कि राजा ने किसी खत्री को उसके दुष्कृत्य का दंड दिया था। उसकी आँखो पर क्रोध ने अँधेरी चढ़ाई। चाँदनी रात थी। वह कलुषित-हृदय घात लगाए बैठा था। जब राजा साहब आए, तब वह अवसर पाकर अपना काम कर गया। अन्त मे उसका और उसके साथियो का भी पता लग गया। उनमें से प्रत्येक ने दंड पाया।

सन् ९९७ हि० में बादशाह काश्मीर की ओर चले। नियम यह था कि जब बादशाह कहीं बाहर जाते थे, तब दो बडे और प्रतिष्ठित अमीर राजधानी में रहा करते थे। लाहौर का प्रबन्ध राजा भगवानदास को सौंपा गया। उनके साथ राजा टोडरमल को भी वहीं छोड गए। एक तो सौ रोगो का एक रोग उनका बुढापा था। तिस पर कुछ बीमार भी हो गए। बादशाह को निवेदनपत्र लिखा जिसका आशय यह था कि रोग ने वृद्धावस्था से षड्यन्त्र करके जीवन पर आक्रमण किया है और उसे घर दबाया है। मृत्यु का समय समीप दिखाई पडता है। यदि आज्ञा हो तो सब कामों मे हाथ उठाकर गंगा जी के तट पर

जा बैठूँ। इच्छा है कि ईश्वर-चिन्तन मे वहीं अन्तिम श्वास निकाल दूँ।

बादशाह ने पहले तो इन्हे प्रसन्न करने के लिये आज्ञापत्र लिखकर भेज दिया, जिसमे इनका कुम्हलाया हुआ मन हरा हो जाय। परन्तु थोडे ही समय के उपरान्त दूसरा आज्ञापत्र फिर पहुँचा कि ईश्वर-चिन्तन कभी दीन-दु खियो की सहायता के समान नही हो सकता। इसलिये बहुत उत्तम है कि तुम यह विचार छोड दो। अन्त समय तक दीन-दु खियो के ही काम मे लगे रहो और इसी को अपनी अन्तिम यात्रा का पाथेय समझो। पहले आज्ञापत्र के अनुसार आज्ञा पाकर रोगी शरीर तथा नीरोग प्राण लेकर हरद्वार की ओर चले थे। लाहौर के पास अपने ही बनवाए हुए तालाब पर डेरा था। इतने मे दूसरा आज्ञापत्र पहुँचा कि चले आओ।

इस घटना का वर्णन करते हुए शेख अब्बुलफजल कैसा अच्छा प्रमाणपत्र देते हैं कि राजा टोडरमल ने बादशाह की आज्ञा टालने को ईश्वर की आज्ञा टालने के समान समझा। इसलिये जिस समय उनके पास दूसरा आज्ञापत्र पहुँचा, उसी समय उसका पालन किया और ग्यारहवे दिन यहाँ के पाले हुए शरीर को यहीं (लाहौर मे) विदा कर दिया। वे सत्यता, वीरता, सूक्ष्मदर्शिता तथा भारतवर्ष का नेतृत्व करने मे अनुपम और अद्वितीय थे। यदि वे धर्म सम्बन्धी कार्यों मे पक्षपात की दासता और अनुकरण की मित्रता न करते, मन मे द्वेष न रखते और अपनी ही बात का सदा पक्ष न लेते तो अवश्य ही उनकी गणना पूज्य महात्माओ मे होती। उनकी मृत्यु से नि स्वार्थ कार्य-

कुशलता को भारी आघात पहुँचा और प्रत्येक विषय को उचित रूप मे सम्पादित करने के बाजार में वह गरमी न रह गई। माना कि ईमानदार आदमी, जिसका मिलना बहुत अधिक कठिन है, किसी प्रकार मिल भी जाय, लेकिन वह इतनी अधिक विश्वसनीयता कहाँ से लावेगा।

टोडरमल की उमर का हाल किसी ने नहीं खोला। मुल्ला साहब ने जिस दशा का वर्णन किया है, उससे इतना अवश्य ज्ञात हो गया कि इन्होंने दीर्घ आयु पाई थी। हजरत तो सब पर रुष्ट ही रहते हैं। अभी शाह फतहउल्ला और हकीम अब्बुलफतह पर क्रुद्ध हुए थे। ये बेचारे तो हिन्दू ही थे। इन पर जितना झल्लाएँ, थोडा है। लिखते हैं कि राजा टोडरमल और राजा भगवानदास, जो अमीर उलउमरा थे और लाहौर मे रहते थे, जहन्नुम और नरक के ठिकानों को भागे और तहो के नीचेवाली तह मे जाकर साँपो और बिच्छुओं के लिये जीवन की सामग्री बने। ईश्वर दोनों को नरक मे डाले। उन्होने एक ही चरण मे दोनों के मरने की तारीख कह डाली—

بگفتا ٹوڈر و بھگوان مردند -

अर्थात—कहा कि टोडर और भगवान मर गए।

जब इतने पर भी उनका जी ठंडा न हुआ, तब फिर कहा—

ٹوڈرمل آنکہ ظلمش بگرفتہ بود عالم -
چون رفت سوئے دوزخ خلقے شدند خرم -
تاریخ رفتنش را از پیر عقل جستم -
خوش گفت پیر دانا وے رفت در جہنم -

अर्थात्—वह टोडरमल, जिसके अत्याचार से सारा संसार जकड़ा हुआ था, जब नरक की ओर गया, तब प्रजा प्रसन्न हुई। जब मैंने बुद्धि रूपी वृद्ध पुरुष से उसके मरने की तारीख पूछी, तब उस बुद्धिमान् वृद्ध ने प्रसन्न होकर कहा कि वह जहन्नुम में गया।

राजा टोडरमल की बुद्धि और युक्ति पर अकबर को जितना अधिक विश्वास था, उससे अधिक उनकी ईमानदारी, नमक-हलाली और स्वामिनिष्ठा पर भी भरोसा था। जब टोडरमल पटने के युद्ध में जान निछावर कर रहे थे, तब दफ्तर का काम राय रामदास के सपुर्द हुआ, क्योंकि वह भी कामों को भली भाँति समझनेवाला, ईमानदार और सुशील अहलकार था। उसे दीवानी का खिलअत भी प्रदत्त हुआ था। लेकिन आज्ञा हुई थी कि वेतन के कागज राजा के मुहर्रिर और मुन्शी अपने ही पास रखे।

राजा टोडरमल के कारण उनके सम्बन्धियों की कार्य-कुशलता भी विश्वसनीय हो गई थी। जब बंगाल और बिहार पर चढ़ाई हुई थी, तब नावों तथा नवाड़ों का प्रबन्ध परमानन्द के जिम्मे हुआ था। वह राजा टोडरमल के बहुत पास के सम्बन्धियों में से था। राजा टोडरमल के सम्बन्ध में यह बात बहुत ही अधिक प्रशंसा के योग्य है कि यद्यपि वे इतने अधिक योग्य थे और सदा कठिन परिश्रम करते हुए अपने प्राण निछावर करने के लिये उद्यत रहते थे, परन्तु फिर भी कभी स्वयं अपने आपको ऊँचे नहीं उठाना चाहते थे। कई युद्धों में उनके लिये प्रधान सेनापति बनने का अवसर आया,

परन्तु वे कभी सेना के मध्य भाग में, जो प्रधान सेनापति का स्थान है, स्थित नहीं हुए। उनके कार्यों से यह ज्ञात होता है कि वे अपने स्वामी की आज्ञा के अनुसार तल्लीन होकर और अपनी अवस्था तथा शरीर का सारा ध्यान छोड़कर सब काम किया करते थे। प्रत्येक युद्ध मे बहुत ही ठीक समय पर जाकर पहुँचते थे और जान तोड़कर विजय में सहायक होते थे। बंगाल की लड़ाई मे सदा सरदार से सिपाही तक सभी लोग निरुत्साह होकर भागने के लिये तैयार रहते थे; और राजा टोडरमल कहीं मिल-जुलकर, कहीं सहानुभूति दिखलाकर और कहीं आशा बँधाकर सब लोगो के हृदय पर वास्तविक उद्देश्य अंकित कर देते थे और उन्हे रोके रहते थे।

जिस समय हुसैन कुलीखाँ खानजहाँ के सेनापतित्व पर तुर्क सवार बिगड़े थे, उस समय प्राय. सारी सेना ही बिगड़ गई थी, और युद्ध का सारा काम नष्ट होना चाहता था। भला दूसरे का आगे बढना और अपना पीछे हटना किसे पसन्द आता है। क्या उस समय उनका जी नहीं चाहता था कि मैं सेनापति कहलाऊँ? लेकिन उन्होंने अपने स्वामी की प्रसन्नता का ध्यान रखा और ऐसा काम किया कि सब लोग सरदार खानजहाँ की आज्ञा का पालन करने के लिये उद्यत हो गए।

इनकी विद्या सम्बन्धी योग्यता केवल इतनी ही जान पड़ती है कि अपने दफ्तर के लेख आदि भली भाँति पढ़-लिख लेते थे। लेकिन इनकी तबीयत नियम आदि बनाने और सिद्धान्त निश्चित करने में इतनी अच्छी थी कि जिसकी प्रशंसा नहीं हो सकती। माल विभाग के कामों को ऐसा जाँचते थे और उसके

राजा साहब का देहान्त सन् ९९७ हि० मे ही हो गया था। सम्भव है कि राजा साहब ने स्मरण-पत्रिका के रूप मे जो पुस्तक लिखी हो, उसी मे किसी ने भूमिका लगा दी हो। देखने से जान पडता है कि वह दो भागो मे विभक्त है। एक भाग मे तो धर्म, ज्ञान और पूजा-पाठ आदि के प्रकरण हैं और दूसरे मे लौलिक कार्यों के सम्बन्ध के प्रकरण हैं। दोनो मे ही बहुत से छोटे छोटे प्रकरण हैं। प्रत्येक वस्तु का थोड़ा थोड़ा वर्णन है, परन्तु उसमे है सभी कुछ। दूसरे भाग मे नीति और गृह-प्रबन्ध आदि के अतिरिक्त मुहूर्त्त, संगीत, स्वरोदय, पक्षियों के शब्दों के शकुन और उनकी उड़ान आदि तक के सम्बन्ध की बातें लिखी हैं। उक्त ग्रन्थ मे यह भी विदित होता है कि वे अपने धर्म के पक्के और विचारों के पूरे थे। सदा ज्ञान-ध्यान मे लगे रहते थे और पूजा-पाठ तथा धार्मिक कृत्य बहुत ठीक तरह से करते थे। उस समय लोगो को स्वतन्त्रता बहुत अधिक रहती थी; इसलिये अपनी इन बातो के कारण उन्होंने एक विशेषता सम्पादित कर ली थी। कहाँ हैं वे लोग जो कहते हैं कि सेवक तभी स्वामि-निष्ठ होता है, जब उसके विचार और अवस्थाएँ बल्कि धार्मिक विश्वास भी उसके स्वामी के साथ मिलकर एक हो जायँ ? वे लोग आवे और टोडरमल की इन बातो से शिक्षा ग्रहण करे कि सच्चे धार्मिक वही लोग हैं जो शुद्ध हृदय से अपने स्वामी की सेवा करें। बल्कि अपने धर्म पर उनका जितना ही शुद्ध और दृढ़ विश्वास होगा, उनकी स्वामिनिष्ठा भी उतनी ही शुद्ध तथा दृढ़ होगी। अब पाठक इनकी नीयत का भी फल देख लें। अकबर के दरबार में कौन सा ऐसा बड़ा अमीर था जिससे

ये किसी बात मे एक पग भी पीछे या पुरस्कार आदि पाने मे नीचे रहे ?

धार्मिकता और उसके आचरण के सम्बन्ध के नियम और बन्धन आदि कुछ अवसरो पर इन्हे तग भी करते थे। एक बार बादशाह अजमेर से पंजाब जा रहे थे। सब लोग यात्रा की गडबडी मे तो रहते ही थे। एक दिन कूच की घबराहट मे इनके ठाकुरो का आसन (झोला ?) कहीं रह गया। या सम्भव है कि किसी ने साम्राज्य के मन्त्री का थैला समझ कर चुरा लिया होगा। राजा साहब का यह नियम था कि जब तक पूजा-पाठ नहीं कर लेते थे, तब तक कोई काम नही करते थे। यहाँ तक कि भोजन आदि भी नहीं करते थे। कई समय का उपवास हो गया। अकबरी लश्कर के डेरे मे यह चर्चा फैल गई कि राजा साहब के ठाकुर चोरी हो गए। वहाँ बीरबल सरीखे बडे-बडे विद्वान दिल्लगीबाज और पडित शोहदे उपस्थित थे। ईश्वर जाने उन लोगो ने क्या क्या दिल्लगियाँ उडाई होगी !

बादशाह ने बुलाकर कहा कि तुम्हारे ठाकुर ही चोरी गए हैं न, तुम्हारा अन्नदाता जो ईश्वर है, वह तो चोरी नहीं गया न ? स्नान करके उसी को स्मरण करो और तब भोजन करो। आत्महत्या किसी धर्म के अनुसार पुण्य का काम नहीं है। राजा साहब ने भी अपना वह विचार छोड दिया। अब कहने-वाले चाहे कुछ ही कहे, परन्तु मै तो उनकी दृढता पर हजारो प्रशसाओं के फूल चढाऊँगा। उन्होंने बीरबल की भाँति दरबार के वातावरण मे आकर अपना धर्म नहीं गँवाया। अलबत्ता दीन

इलाही अकवर शाही के खलीफा नहीं हुए। खैर वह खिलाफत उन्हींको मुवारक हो।

शेख अब्बुलफजल ने इनके स्वभाव तथा व्यवहार आदि के सम्वन्ध मे जो थोड़ी सी वातें लिखी हैं, उनके सम्वन्ध में मुझे भी कुछ लिखना आवश्यक जान पड़ता है। वह लिखते हैं कि इनमें कट्टरपन के प्रति अनुराग, अनुकरण के प्रति प्रेम और द्वेष भाव न होता और ये अपनी वात पर अहंमन्यता-पूर्वक न अड़ते तो इनकी गणना पूज्य महात्माओं मे होती।

साधारण लोग यह अवश्य कहेंगे कि शेख धर्म-भ्रष्ट आदमी थे। वे जिस व्यक्ति को धर्म-निष्ठ और अपने पूर्वजो की लकीर पर चलता हुआ देखते थे, उसी की धूल उड़ाते थे। मैं कहता हूँ कि यह सव ठीक है। लेकिन अब्बुलफजल भी आखिर एक आदमी थे। उन्होने इसी जगह नहीं और भी कई जगह राजा साहव के सम्वन्ध मे इसी प्रकार की वातें कही हैं। राजा साहव के इन झगड़ों के कारण अवश्य ही लोगो को कुछ न कुछ हानियाँ पहुँची होंगी। जव राजा साहव वंगाल पर विजय प्राप्त करके लौटे, तव उन्होंने ५४ हाथी और वहुत से उत्तमोत्तम वहुमूल्य पदार्थ वादशाह को भेंट किए थे। वहाँ भी अब्बुलफजल लिखते हैं कि वादशाह ने इनकी वुद्धिमत्ता देखकर देश के प्रवन्ध और माल विभाग के सव काम इन्हे सपुर्द करके समस्त भारतवर्ष का दीवान वना दिया। वे सत्य मार्ग पर चलनेवाले, निर्लोभ और अच्छे सेवक थे। सव काम विना किसी प्रकार के लोभ के करते थे। क्या अच्छा होता कि ये हृदय में द्वेष न रखते और लोगों से वदला चुकाने के भाव से रहित होते तो इनकी तवीयत के

खेत में जरा मुलायमत फूट निकलती। खैर, यह भी सही। शेख लिखते हैं कि यदि धार्मिक पक्षपात और कट्टरपन इनके चेहरे पर रंग न फेरता तो ये इतने निन्दनीय न होते। यह सब कुछ ठीक है, परन्तु उस समय जिस प्रकार के बहुत से लोग उपस्थित थे, उन्हें देखते हुए कहना चाहिए कि ये सन्तुष्ट-हृदय और निर्लोभ थे, सब काम बड़े परिश्रम से करते थे और काम करने-वालों का अच्छा आदर करते थे। इनके जोड़ के बहुत कम लोग मिलते हैं, बल्कि यों कहना चाहिए कि इन सब बातों में वे निरुपम थे। देखिए शेख साहब ने क्या प्रमाणपत्र दिया है। अब पाठक इनके पाँच वाक्यों की यह लिखावट फिर से पढ़ें और ध्यानपूर्वक देखें।

इनमें का पहला और दूसरा वाक्य राजा साहब की जाति के लिये ऐसा सर्टिफिकेट है जिस पर वह अभिमान कर सकती है। तीसरे वाक्य पर भी क्रुद्ध नहीं होना चाहिए, क्योंकि वह भी आखिर मनुष्य ही थे, और ऐसे उच्च पद पर प्रतिष्ठित थे कि हजारों लाखों आदमियों के मामले उनसे टक्कर खाते थे और बार-बार टक्कर खाते थे। एक बार कोई ले निकलता होगा, तो दूसरे अवसर पर ये भी कसर निकाल लेते होंगे। इसके अतिरिक्त ये नियमों का कठोरतापूर्वक पालन करते थे और हर काम में बादशाह की किफायत करना चाहते थे, इसलिये बादशाह के दरबार में भी इन्हीं की बात ऊँची रहती होगी। मेरे मित्रो, यह दुनियाँ बहुत ही नाजुक जगह है। यदि राजा साहब अपने शत्रुओं से अपना बचाव न करते तो जीवित कैसे रहते और उनका निर्वाह कैसे होता? चौथे वाक्य पर भी न चिढ़ना चाहिए,

क्योंकि वे दीवान थे। बडे बडे अमीरों से लेकर दरिद्र सिपाहियो तक और बड़े-बड़े देशों के अधिकारियो से लेकर छोटे-छोटे माफीदारों तक सभी का हिसाब-किताब उन्हे रखना पड़ता था। वह उचित बात मे किसी के साथ रिआयत करनेवाले नहीं थे। सब बातो को जाननेवाले अहलकार थे। संसार में छोटे से लेकर बड़े तक सभी अपनी किफायत और अपना लाभ करना चाहते हैं। दफ्तर में लिखी हुई एक-एक रकम वह जरूर पकड़ते होगे। लोग हुज्जते करते होगे। हिसाब-किताब का मामला था। किसी का कुछ बस न चलता होगा। सिफारिशें भी आती होंगी; लेकिन वे किसी की सुनते न होगे। दरबार तक भी नौबतें पहुँचती होंगी। राजा साहब काट ही लेते होगे। अकबर भी यद्यपि दयालु बादशाह था, लेकिन फिर भी वह साम्राज्य के नियमों और दफ्तर के कानूनो को तोड़ना नहीं चाहता था। इसी लिये कहीं-कहीं वह भी दिक होता होगा। सब लोग नाराज होते होंगे। यही जड़ है उन शेरों की जो मुल्लासाहब ने उनके सम्बन्ध में लिखे थे।

इतना सब कुछ होने पर भी वह जो कुछ करते थे, अपने स्वामी का हित समझकर ही करते थे और जो कुछ लाभ होता था, वह बादशाही खजाने में देते थे। हाँ, यदि वे बीच में आप ही कतर लेते होते तो अवश्य अपराधी ठहरते। परन्तु यदि वे कतरते होते तो लोग कब छोड़ते। उन्हीं बेचारे को कतर डालते। यही कारण है कि उनकी सत्यता से सब लोग बुरा मानते हैं।

हाँ, एक बात का मुझे भी दुःख है। कुछ इतिहास-लेखक लिखते हैं कि शाह मन्सूर की हत्या के लिये जो षड्यन्त्र **हुए थे,**

उनमे शहबाजखाँ कम्बो के भाई करमउल्ला ने भी कुछ पत्र उपस्थित किए थे। वे पत्र भी जाली थे और यह राजा टोडरमल की कारसाजी थी। उस समय तो कोई न समझा, परन्तु पीछे यह भेद खुल गया। परन्तु ये राजा टोडरमल के और उनके कागजी वाद-विवाद थे। दोनो अहलकार थे। ईश्वर जाने दोनो ओर से क्या क्या वार चलते होगे। उस समय उनका वार न चला, इनका चल गया होगा।

बटालवी साहब ने पजाब मे बैठकर अपना खुलासतुल्-तवारीख नामक ग्रन्थ लिखा था। वे शाहजहाँ और आलमगीर के समय मे हुए थे। परन्तु आश्चर्य है कि उन्होने भी टोडरमल की जाति, आयु और जन्म का सन-सवत आदि कुछ नही लिखा। हाँ, उनके गुणो के सम्बन्ध मे एक बहुत बडा पृष्ठ अवश्य लिखा है जो प्राय सत्यता और वास्तविकता के शब्दो से सुसज्जित है। उसमे वह कहते है कि राजा साहब साम्राज्य के रहस्यो के जानकार थे। शासन सम्बन्धी गूढ विषयो और हिसाब-किताब के अनुपम ज्ञाता थे। हिसाब जाँचने के कामो मे बडी बडी बारीकियाँ निकालते थे। वजीर के कामो के नियम आदि, साम्राज्य के नियम, देश की सम्पन्नता, प्रजा की आबादी, दीवान के कार्यालय के नियम, बादशाह के अधिकारो के सिद्धान्त, राजकोष की उन्नति, मार्गों मे विराजनेवाली शान्ति, सैनिको के वेतन, परगनो के लगान आदि की व्यवस्था, जागीरदारो का वेतन, अमीरो के मन्सबो के सम्बन्ध के नियम आदि सब उन्ही के स्मारक है और सब स्थानो मे उन्ही नियमो आदि के अनुसार काम होता है।

(१) उन्होंने परगनेवार प्रत्येक गाँव की जमा निश्चित की। (२) तनावी जरीब स्थल तथा जल मे घट बढ़ जाती थी और ५५ गज की होती थी। उन्होंने बाँस या नरसल की ६० गज की जरीब निश्चित की और बीच बीच मे लोहे की कडियाँ डाल दीं जिसमे अन्तर न पड़े*। (३) उनकी सम्मति से सन् ९८२ हि० मे समस्त प्रदेश बारह सूबो मे विभक्त हुए और दस-साला या दशवार्पिक बन्दोबस्त हुआ। कुछ गाँवों का परगना, कुछ परगनो की सरकार और कुछ सरकारो का एक सूबा निश्चित हुआ। (४) रुपए के ४० दाम उन्होंने निश्चित किए†। परगने की शरह दाम के अनुसार दफ्तर में लिखी जाने लगी। (५) एक करोड दाम की आय की भूमि पर एक प्रधान कर्मचारी नियुक्त किया जिसका नाम करोड़ी रखा। (६) अमीरो के अधीन जो नौकर होते थे, उनके घोड़ो के दाग के लिये नियम निर्धारित किए। प्राय. लोग एक जगह का घोड़ा दो दो तीन तीन जगह दिखला देते थे। जब आवश्यकता होती थी, तब घोड़ों की कमी के कारण बहुत हर्ज होता था। इसमे कभी तो सवारों की धोखेबाजी होती थी और कभी स्वयं अमीर लोग भी धोखेबाजी करते थे। जब हाजिरी का समय आता था, तब तुरन्त नौकर रख लेते थे और लिफाफा चढ़ाकर हाजिरी दिलवा देते थे।

---

* एक बीघा ३६०० वर्ग शाहजहानी गज के बराबर होता था।

† मैंने दाम देखा है। वह तौल में एक तोले होता था और देखने में दिल्ली के पैसे के समान था। एक ओर साधारण रूप में अकबर का नाम और दूसरी ओर बहुत सुन्दर अक्षरों में "दाम" लिखा होता था।

इधर हाजिरी से उनकी छुट्टी हुई और उधर घर जाकर वे नौकरी से अलग कर दिए जाते थे। (७) बादशाही सेवकों की सात टोलियाँ नियत की थीं। सप्ताह के सात दिनों में से प्रत्येक दिन एक टोली में से बारी बारी से आदमी लिए जाते थे और वही लोग चौकी में हाजिर होते थे। (८) नित्य के वास्ते एक एक आदमी चौकी-नवीस नियुक्त हुआ था। चौकीवाले लोगों की हाजिरी लेना उसका काम था। निवेदनों आदि पर अथवा यों ही बादशाह की जो आज्ञाएँ प्रचलित होती थीं, वे आज्ञाएँ भी प्रचलित करना और यथा-स्थान पहुँचाना उसी का काम था। (९) सप्ताह के सात दिनों के लिये सात घटना-लेखक नियत हुए। उनका काम यह था कि दिन भर ड्योढ़ी पर बैठकर सब हाल लिखा करें (१०) अमीरों और खानों आदि के अतिरिक्त चार हजार यका सवार खास बादशाही रिकाब के लिये नियत किए। उन्हीं को अहदी भी कहते थे। अहदी शब्द इसी यका या एका का अनुवाद है। इन लोगों का अलग दारोगा भी नियत हुआ था। (११) कई हजार दास थे जिनमें से बहुत से युद्धों में से पकड़े हुए आए थे। वे सब लोग दासता से मुक्त हुए और चेले कहलाए। सोचा यह गया कि सभी लोग स्वतन्त्र हैं। उन्हें दास कहना उचित नहीं। तात्पर्य यह कि ऐसे सैकड़ों नियम आदि बनाए कि कुछ अमीरों और वजीरों ने बहुत कुछ प्रयत्न किए और करते हैं, पर वे उनसे आगे नहीं निकल सकते। राजा टोडरमल के उपरान्त वकील का पद मिरजा अब्दुर्रहीम खानखाना को प्रदान किया गया था। उन्होंने भी उक्त पद तथा उसके कार्यों का बहुत अधिक उत्तमता के साथ निर्वाह किया जिसके

कारण वे भी बहुत प्रशंसनीय हुए। (१२) भारत में क्रय-विक्रय, देहात की जमाबंदी, माल विभाग की तहसील और नौकरो के वेतन आदि राजाओ मे भी और बादशाहो में भी तंगा नामक सिक्के में होते थे। परन्तु सब लोग तंगे के स्थान पर पैसे दिया करते थे। जब चाँदी पर ठप्पा अंकित किया जाता था, तो वे चाँदी के तंगे कहलाते थे। वही चाँदी के तंगे एलचियों और डोमो आदि को पुरस्कार में दिए जाते थे। परन्तु सर्व-साधारण मे उनका विशेष प्रचार नहीं था। वे चाँदी के भाव बाजार मे बिक जाते थे। टोडरमल ने मन्सबदारो और सेवको के वेतन में इन्हीं का प्रचार किया और नियम बना दिया कि तंगे की जगह देहात से रुपए वसूल हुआ करें। उसकी तौल ११ माशे रखी और एक रुपए के ४० दाम निश्चित किए। इसका सिद्धान्त यह था कि यदि ताँबे पर टकसाल का खर्च लगावें तो रुपए के पूरे ४० दाम पड़ते हैं। वही नौकरो को वेतन में मिलते थे। उसी के अनुसार देहातो, परगनो और कस्बों के दफ्तरो मे सारी जमा लिखी जाती थी। इसका नाम नगद जमाबन्दी रखा। महसूल के सम्बन्ध में यह नियम निर्धारित किया कि जिस भूमि में वर्षा के जल मे अनाज उत्पन्न होता हो, उसकी पैदावार मे से आधा कृषक ले और आधा बादशाह ले। वर्षा की भूमि की उपज में एक चौथाई व्यय और उसके क्रय-विक्रय की लागत लगाकर अनाज मे से एक तृतीयांश बादशाह को मिला करे। ऊख आदि उच्च कोटि की पैदावार मानी जाती है और इसके लिये सिंचाई, रखवाली और कटाई आदि में भी साधारण अनाजों की अपेक्षा अधिक व्यय पड़ता है। इसलिये इनमे से अवस्थानुसार

बादशाह को १/४, १/५, १/६ या १/७ अंश मिला करता था। शेष कृषक का अंश होता था। यह भी नियम था कि यदि नगद महसूल लिया जाय तो प्रत्येक पैदावार पर प्रति वर्ग बीघे पर लिया जाय। उसका नियम भी प्रत्येक उपज के अनुसार अलग अलग निश्चित था।

यहाँ यह भी बतला देना आवश्यक है कि इन नियमों के बहुत से अंश ख्वाजा शाह मन्सूर, मुजफ्फरखाँ और मीर फतह-उल्ला शीराजी आदि के भी निकाले हुए थे और निःसन्देह उन लोगों ने भी कागजों की छान-बीन और दफ्तरों की व्यवस्था में बहुत अधिक परिश्रम किया था। परन्तु यह भी भाग्य की बात है कि उनका कोई नाम भी नहीं जानता। जहाँ किसी अच्छे प्रबन्ध का उल्लेख होता है, वहाँ टोडरमल का नाम पुकारा जाता है।

इतना सब कुछ होने पर भी अकबर के गुणों की पुस्तक में यह बात सोने के अक्षरों में लिखी जानी चाहिए कि राजा के अधिकार तथा पद आदि में निरन्तर उन्नति देख कर कुछ अमीरों ने इस बात की शिकायत की और यह भी कहा कि हुजूर ने एक हिन्दू को मुसलमानों पर इतना अधिकार दे रखा है। यह उचित नहीं है। परन्तु शुद्ध-हृदय बादशाह ने स्पष्ट कह दिया कि तुम सभी लोगों की सरकारों में कोई न कोई हिन्दू मुन्शी है ही। यदि हमने भी अपने यहाँ एक हिन्दू रख लिया तो तुम लोग क्यों बुरा मानते हो?

राजा मानसिंह *

अकबर के दरबार की चित्रशाला में इस कुलीन राजा का चित्र सोने के पानी से खींचा जाना चाहिए, क्योंकि सबसे पहले इसके बाप-दादा का शुभ सहयोग अकबर का सहायक और साथी हुआ था जिसके कारण भारत में तैमूरी वंश की जड़ जमी। बल्कि यह कहना चाहिए कि उन्होंने अपनी संगति तथा सहायता से अकबर को अपनाया और प्रेम करना सिखलाया, और समस्त संसार को दिखला दिया कि राजपूतों का जो यह प्रण चला आता है कि सिर चला जाय, पर बात न जाय, उसका यदि मूर्त्तिमान् स्वरूप देखना चाहो तो इन लोगों को देख लो। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि इन बात के पक्के वीरों ने उस तुर्क बादशाह का साथ देने में अपने प्राणों को प्राण नहीं समझा। उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा तथा कीर्त्ति को उसकी प्रतिष्ठा तथा कीर्त्ति के साथ मिलाकर एक कर दिया। उनकी मिलनसारी तथा निष्ठा ने अकबर के मन पर यह बात अंकित कर दी कि भारतवर्ष के लोगों में इतनी अधिक सज्जनता होती है कि यदि विदेशी तथा विजातीय लोग भी उनके साथ प्रेम और सहानुभूति करें तो वे ऐसा कुछ करते हैं कि अपनी जाति की तो बात ही क्या है, अपने सगे भाई तक को भूल जाते हैं। ये प्रसिद्ध और कीर्त्तिशाली कछवाहा वंश के थे और सैकड़ों वर्षों से खान्दानी राजा चले आते थे। इनके साथ समस्त कछवाहा जाति

---

* बिहारीमल, पूरनमल, रूपसी, आसकरण और जगमल पाँच भाई थे। इन्हीं में से जगमल के पुत्र ये महानसिंह थे।

अकबर के लिये प्राण देने पर उद्यत हो गई। साथ ही इनके कारण राजपूतों के और भी अनेक वंश आकर अकबर के साथ मिल गए। परन्तु अकबर के प्रेमपूर्ण व्यवहार का जादू भी इन लोगों पर ऐसा चल गया कि वे सब आज तक चगताई वंश के प्रेम का दम भरते हैं।

अकबर के राज्यारोहण के पहले वर्ष अर्थात् सन ९६३ हि० में अकबर के दरबार में मजनूँखाँ काकशाल नारनौल पर हाकिम होकर गया। वहाँ शेर शाह का दास हाजीखाँ इस मजनूँखाँ पर चढ आया। उस समय कछवाहा वंश का दीपक प्रज्वलित करनेवाला राजा भारामल, जो आमेर का राजा था, हाजीखाँ के साथ था। मजनूँखाँ के होश-हवास जाते रहे। वह घिर गए और उनकी दशा बहुत ही शोचनीय हो गई। वृद्ध खान्दानी राजा शील तथा मनुष्यत्व के गुणों का कोषाध्यक्ष था। वह बात का ऊँच-नीच तथा आदि-अन्त भली भाँति समझता था। उसने सन्धि का प्रबन्ध करके मजनूँखाँ को घेरे में निकलवाया और आदर तथा प्रतिष्ठापूर्वक बादशाह के दरबार को रवाना कर दिया। यही राजा भारमल है जो राजा भगवानदास के पिता और मानसिंह के दादा थे।

मजनूँखाँ ने दरबार में पहुँच कर राजा की सुशीलता, प्रेम, सद्व्यवहार, उदारता तथा कुलीनता की अकबर के सामने बहुत अधिक प्रशंसा की। दरबार में एक अमीर यह आज्ञापत्र दे कर भेजा गया कि राजा भारमल दरबार में उपस्थित हो। राजा उचित सामग्री के सहित दरबार में उपस्थित हुआ। यह वही शुभ समय था जब कि अकबर हेमूँ-वाले युद्ध में विजयी होकर

दिल्ली आया हुआ था। उसने राजा की बहुत अधिक प्रतिष्ठा तथा आतिथ्य किया।

जिस दिन राजा, उनके पुत्र, भाई-चन्द और साथी आदि खिलअत तथा पुरस्कार आदि लेकर दिल्ली से विदा हो रहे थे, उस दिन बादशाह हाथी पर सवार होकर बाहर निकले थे और इनका तमाशा देख रहे थे। हाथी मस्त था और मस्ती मे झूम झूम कर कभी इधर और कभी उधर जाता था। लोग डर डर कर भागते थे। एक बार वह राजपूतो की ओर भी झुका। परन्तु वे अपने स्थान से नहीं टले, उसी प्रकार वहाँ खड़े रहे। बादशाह को उनकी यह वीरता बहुत अच्छी लगी। उसने राजा भारामल की ओर प्रवृत्त होकर कहा कि तुम्हे हम निहाल कर देना चाहते हैं। वह समय बहुत ही समीप जान पडता है, जब कि तुम्हारा आदर और सम्मान अधिकाधिक होता जायगा। इसी दिन से अकबर राजपूतो का और विशेषतः भारामल तथा उनके सम्बन्धियो आदि का आदर-सम्मान करने लगा और उनकी वीरता उसके हृदय पर नित्य प्रति अधिक अंकित होती गई। अकबर ने मिरज़ा शफाउद्दीन हुसैन (विशेष देखो मिरज़ा का प्रकरण) को मेवात का हाकिम बनाकर भेजा था। उसने इधर-उधर फैलना आरम्भ कर दिया था। अन्त मे उसने आमेर लेना चाहा। राजा भारामल का एक उपद्रवी भाई, जो रियासत का हिस्सेदार था, जाकर मिरज़ा से मिल गया और उसके साथ होकर आमेर पर लश्कर ले गया। घर मे फूट थी, इसलिये मिरज़ा की जीत हो गई और वह राजा के कुछ भाई-चन्दो को अपने साथ लेकर लौट आया।

सन् ९६८ हि० मे वादशाह अजमेर की जियारत करने के लिये चले। मार्ग मे एक अमीर ने निवेदन किया कि राजा भारामल पर, जो दिल्ली मे दरबार मे सेवा मे उपस्थित हुआ था, मिरजा ने बहुत अत्याचार किया है। वह बेचारा पर्वतो मे घुस कर निर्वाह कर रहा है। बहुत उदार तथा सुशील खान्दानी राजा है। यदि उसपर श्रीमान् का अनुग्रह होगा तो वह बडी बडी सेवाएँ करेगा। बादशाह ने आज्ञा दी कि तुम स्वय जाकर उसको ले आओ। वह लेने गया। राजा स्वयं तो नहीं आया, परन्तु उसने निवेदनपत्र के साथ कुछ उपहार भेज दिया। हाँ, उसका भाई उस अमीर के साथ चला आया। अकबर ने कहा कि यह बात ठीक नहीं है। वह स्वय आवे। राजा भारामल ने अपने ज्येष्ठ पुत्र भगवानदास को अपने परिवार तथा बाल-बच्चो के पास छोड़ा और स्वयं साँगानेर के पडाव पर आकर उपस्थित हुआ। बादशाह ने बहुत प्रेमपूर्वक उसे धैर्य दिलाया और दरबार के विशेष अमीरो मे सम्मिलित कर लिया। राजा के हृदय मे भी ऐसा प्रेम और निष्ठा उत्पन्न हुई कि धीरे-धीरे अपने सम्बन्धियो मे और उसमे कोई अन्तर न रह गया। थोडे दिनो बाद राजा भगवानदास और मानसिंह भी आ गए। अकबर ने इन दोनो को साथ ले लिया और भगवानदास को विदा कर दिया। परन्तु मन मिल गये थे। चलते समय अकबर ने कह दिया था कि शीघ्र आना और सब व्यवस्था करके आना, जिससे फिर जाने का कष्ट न करना पडे।

धर्म की दीवार और जातीय बन्धनो का किला इतना अधिक दृढ होता है कि जल्दी किसी के तोडे टूटता नहीं है। परन्तु

राजनीति सम्बन्धी नियम इन सबसे बहुत प्रबल होते हैं। जब उसकी आवश्यकता की नदी चढ़ाव पर आती है, तब वह सबको बहा ले जाती है। अकबर को बादशाह तहमास्प का कथन स्मरण था (देखो पहला भाग, पृ० ११८)। उसने इस वंश की अच्छी नीयत और प्रेमपूर्ण व्यवहार देख कर सोचा कि यदि इन लोगों के साथ नातेदारी हो जाय, तो बहुत ही अच्छा हो। यह बात सम्भव भी जान पड़ी। उसने एक बहुत अच्छे अवसर पर यह प्रसंग छेड़ा और उसमें उसे सफलता भी हुई। सन् ९६९ हि० में राजा भारामल की कन्या, जो मानसिंह की फूफी थी, अकबर की बेगमों में सम्मिलित होकर महल का सिंगार हो गई।

यद्यपि राजा भारामल आदि महाराणा प्रताप के सम्बन्धी थे, तथापि जब सन् ९७४ हि० में चित्तौड़ पर आक्रमण हुआ, तब राजा भगवानदास भी अकबर के साथ थे और हर मोरचे पर कभी ढाल की तरह आगे रहते थे और कभी पीछे। (देखो परिशिष्ट)

सन ९७९ हि० में जब अकबर स्वयं सेना लेकर गुजरात पर चढ़ाई करने गया, तब राजा मानसिंह भी अपने पिता के साथ उस चढ़ाई पर गया था। उस समय चढ़ती जवानी थी, मन में उमंग थी, वीरता का आवेश था। राजपूती रक्त कहता होगा कि चंगेजी तुर्क, जिनका मन विजय के कारण चढ़ा हुआ है, इस समय बाग से बाग मिलाए हुए हैं। हमारा पैर इनसे आगे बढ़ा रहे। इन्हें भी दिखला दो कि राजपूती तलवार की काट क्या रंग दिखलाती है। क्या मार्ग में और क्या युद्ध-क्षेत्र में, जहाँ अकबर का जरा सा संकेत पाता था, सिपाहियों का एक

दस्ता ले लेता था और इस तरह जा पड़ता था, जिस तरह शिकार पर शेर जाते है।

इसी बीच मे खानआजम अहमदाबाद मे घिर गए और चगताई शाहजादे दक्खिन की सेनाओ को साथ लेकर उसके चारो ओर छा गए। अकबर ने आगरे से कूच किया। एक महीने का मार्ग सात दिनो मे चलकर वह अहमदाबाद जा पहुँचा। राजा भगवानदास और कुँवर मानसिह भी इस अभियान मे साथ थे। वे लोग बादशाह के चारो ओर इस प्रकार प्राण निछावर करते फिरते थे, जिस प्रकार दीपक के चारो ओर पतिंगे।

चगताई इतिहास-लेखको ने अपने इतिहासो मे इस घटना का उल्लेख नहीं किया है, परन्तु टाड साहब ने इस सम्बन्ध मे अपने राजस्थान के इतिहास मे जो कुछ लिखा है, वह वास्तव मे देखने योग्य है।

राजा मानसिह शोलापुर का युद्ध जीतकर लौटा आ रहा था। मार्ग मे उदयपुर की सीमा से होकर जा रहा था। सुना कि महाराणा प्रताप कोमलमेर मे है। एक दूत भेजा और लिखा कि आप से मिलने को बहुत जी चाहता है। राणा ने उदयसागर तक आकर उसका स्वागत किया और उसी झील के तट पर भोजन की व्यवस्था की। जब भोजन का समय हुआ, तब राणा स्वयं तो नहीं आए, पर उनके पुत्र ने आकर कहा कि राणा जी के सिर मे दर्द है, वह न आवेगे। आप भोजन पर बैठे और भली भाँति भोजन कर ले। राजा मानसिह ने कहला भेजा कि उन्हे जो रोग है, वह सम्भवत वही रोग है जो मै समझा हूँ।

परन्तु यह असाध्य रोग है। जब वही अतिथियो के आगे थाल न रखेगे तो और कौन रखेगा।

राणा ने कहला भेजा कि मुझे इसका बहुत दु:ख है। परन्तु मैं क्या करूँ। जिस व्यक्ति ने अपनी बहन तुर्क के साथ ब्याह दी, उसने उसके साथ भोजन भी अवश्य किया होगा। राजा मानसिह अपनी मूर्खता पर पछताया कि मैं यहाँ क्यो आया। उसे बहुत अधिक हार्दिक दु ख हुआ। उसने चावल के कुछ दाने लेकर अन्नपूर्णा देवी को चढाए और फिर वही दाने अपनी पगड़ी मे रख लिए। चलते समय कहा कि हमने तुम्हारी प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिये अपनी प्रतिष्ठा नष्ट की और बहनें-बेटियाँ तुर्कों को दी। यदि तुम्हारी यही इच्छा है कि सदा भय मे रहो तो तुम्हे अधिकार है; सदा उसी दशा मे पड़े रहो, क्योंकि अब इस देश में तुम्हारा निर्वाह नही होगा।

इतना कह कर राजा मानसिंह घोड़े पर चढ़ा और राणा की ओर घूमकर बोला (उस समय तक राणा भी वहाँ आ पहुँचे थे) राणा जी, यदि मैं तुम्हारा अभिमान न नष्ट करूँ तो मेरा नाम मान नही। राणा प्रताप ने कहा—हम से बराबर मिलते रहना। पास से किसी निर्लज्ज ने यह भी कहा कि अपने फूफा (अकबर) को भी साथ लाना। मानसिंह के चले जाने पर राणा प्रताप ने उस भूमि को, जिस पर मानसिंह के लिये भोजन परोसा गया था, खुदवाया और गंगा-जल से धुलवाकर पवित्र किया। सब सरदारों ने स्नान करके वस्त्र बदले। मानों सब उसके आने से अपवित्र हो गए थे। इन सब बातो की सारी खबर अकबर को पहुँची। उसको बहुत क्रोध आया। उसे सबसे अधिक ध्यान

इस बात का था कि कहीं ऐसा न हो कि राजपूत लोग मन मे ग्लानि उत्पन्न होने के कारण फिर बिगड़ उठें, और जिस धार्मिक द्वेष की आग को मैने सौ सौ पानी से धीमा किया है, वह कहीं फिर न सुलग उठे।

उच्चाशय बादशाह के मन में यह विचार कॉटे की तरह खटक रहा था। इस घटना के थोड़े ही दिनो बाद राणा प्रताप पर चढ़ाई हुई। सलीम (जहाँगीर) के नाम सेनापतित्व निश्चित हुआ। मानसिह और महाबतखॉ साथ हुए, जिसमे शाहजादा इन लोगो के परामर्श के अनुसार काम करे। बादशाही लश्कर ने राणा के देश मे प्रवेश किया, और छोटे छोटे विघ्नो को ठोकरे मारता हुआ आगे बढ़ा। राणा एक ऐसे बेढब स्थान पर लश्कर लेकर अडा जिसे पर्वत-मालाओ तथा घाटियो के पेचो ने बहुत दृढ कर रखा था। वह स्थान कोमलमेर से रकनाथ तक (उत्तर से दक्षिण) ८० मील लम्बा और मीरपुर मे स्तोला तक (पूर्व-पश्चिम) इतना ही चौड़ा था। इस प्रदेश मे पर्वतो, जगलो, घाटियो और नदियो के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। राजधानी को उत्तर, दक्षिण, पश्चिम जिधर से जाओ, ऐसा संकीर्ण मार्ग है कि मानो घाटी ही है। चारो ओर ऊँचे ऊँचे पहाड चले जाते है। चौडाई इतनी कि दो गाड़ियाँ भी साथ साथ नहीं चल सकतीं। घाटी मे से निकलो तो प्राकृतिक दीवारे खडी है। (इन्हे काल कहते हैं।) कुछ स्थानो पर ऐसे ऐसे मैदान भी आ जाते है कि बडा लश्कर छावनी डाल दे। हल्दी घाटी का मैदान ऐसा ही है। वह पहाड की गरदन पर स्थित है, इसलिये बहुत बेढब स्थान है। पहाड के ऊपर और नीचे राजपूतो की सेनाएँ जमी

हुई थी। टीलो के ऊपर और पहाड़ो की चोटियो पर भील लोग, जो इन पत्थरों के असली कीड़े हैं, तीर कमान लिए ताक मे बैठे थे कि जब अवसर आवे, तब शत्रुओ पर भारी-भारी पत्थर लुढकावें।

घाटी के मुख पर राणा प्रताप मेवाड़ के सूरमा सिपाहियों को लिए डटा था। वहाँ घमासान युद्ध हुआ और बहुत अधिक रक्त-पात हुआ। कई राजा और ठाकुर प्राणो का मोह छोड़कर आ पहुँचे और उन लोगो ने राणा के चरणों पर रक्त की नदियाँ बहाई। उस युद्ध-क्षेत्र मे राणा केसरिया झंडा लिए प्रस्तुत था। वह चाहता था कि किसी तरह राजा मानसिंह दिखलाई पड़े तो उससे दो-दो हाथ हों। उसके मन का यह अरमान तो नहीं निकला, परन्तु जहाँ सलीम (जहाँगीर) हाथी पर खड़ा लश्कर को लडा रहा था, वहाँ जा पहुँचा और ऐसा बे-कलेजे होकर पहुँचा कि यदि हौदे के लोहे के तख्ते जहाँगीर की प्राण-रक्षा के लिये ढाल न बन जाते तो वह उसके बरछे का शिकार ही हो जाता। प्रताप जिस घोडे पर सवार था, उसका नाम चेटक था। उस स्वामिनिष्ट घोड़े ने अपने स्वामी का खूब साथ दिया। इस युद्ध के जो चित्र मेवाड के इतिहास मे सम्मिलित हैं, उनमें घोड़े का एक पैर भी सलीम के हाथी पर रखा हुआ है। उसमे उसका सवार प्रताप अपने शत्रु पर भाला मार रहा है। महावत के पास अपनी रक्षा का कोई साधन नहीं था, इसलिये वह मारा गया। मस्त हाथी बिना महावत के न रुक सका और ऐसा भागा कि सलीम के प्राण बच गए। यहाँ बड़ा भारी युद्ध हुआ। नमक-हलाल मुगल अपने शाहजादे की रक्षा करने के लिये और मेवाड़

के सूरमा अपने सेनापति की सहायता करने के लिये ऐसे जान तोड़ कर लड़े कि हल्दी घाटी के पत्थर ईंगुर हो गए। राणा प्रताप को सात घाव लगे। शत्रु उस पर बाज की तरह गिरते थे, परन्तु वह अपना राजसी छत्र नहीं छोड़ता था। वह तीन बार शत्रुओं के समूह में से निकला। एक बार वह दब कर मरना ही चाहता था कि झाला का सरदार दौड़ा और राणा को इस विपत्ति से निकाल कर ले गया। वह राज्य का छत्र एक हाथ मे और झंडा दूसरे हाथ मे लेकर एक अच्छे सुरक्षित स्थान की ओर भागा। यद्यपि वह स्वयं अपने साथियों सहित मारा गया, परन्तु राणा वहाँ से निकल गया। तभी से उसके वंशज मेवाड़ का राजसी झंडा अपने हाथ मे रखते है और दरबार मे राणा की दाहिनी ओर स्थान पाते हैं। उन्हे राजा की उपाधि मिली है और उनका धौंसा किले के फाटक तक बजता है। यह प्रतिष्ठा दूसरो को प्राप्त नहीं है। यह वीरता ऐसे शत्रुओं के सामने क्या काम कर सकती थी जिसके साथ असंख्य तोपे और रहकले आग बरसाते थे और ऊँटो के रिसाले आँधी की तरह दौड़ते थे। राणा की सेना परास्त हुई। बाईस हजार राजपूतो मे से केवल आठ हजार जीवित बचे। यद्यपि सेना हार गई, परन्तु उस समय बच कर निकल जाना ही बहुत बड़ी विजय थी। राणा अपने चेटक नामक घोड़े पर सवार होकर भागा। दो मुगलो ने उसके पीछे घोड़े डाले। वे लोग उसके पीछे-पीछे घोड़े लगाए चले जाते थे कि मार्ग मे एक नदी आई जो पहाड़ से निकली थी। यदि चेटक उस समय जरा भी झिझकता तो वहाँ फँस ही जाता। वह भी घायल हो रहा था, परन्तु फिर भी

हिरन की तरह चारों पुतलियाँ झाड़ कर पानी पर से उड़ गया। उस समय सन्ध्या हो गई थी। उसके नाल पत्थरों से टकरा कर पतिंगे उड़ाते थे। उसने समझा कि शत्रु आ पहुँचे। इतने में किसी ने पीछे से राणा को उन्हीं की बोली में पुकारा—'हे नीले घोड़े के सवार!' प्रताप ने मुड़ कर देखा तो उसका भाई शक्तसिंह था। वह किसी घराऊ झगड़े के कारण भाई से रुष्ट होकर निकल गया था और अकबर के यहाँ नौकर हो गया था। वह भी इस युद्ध में उपस्थित था। जब उसने देखा कि मेरी जाति का नाम उज्वल करनेवाला और मेरे बाप-दादा की कीर्त्ति बढ़ानेवाला मेरा भाई इस प्रकार प्राण लेकर भाग रहा है, और दो मुगल उसके पीछे पड़े हैं, तो उसका सारा क्रोध जाता रहा। रक्त के आवेश में वह उसके पीछे हो लिया। अवसर पाकर उसने दोनों मुगलों के प्राण ले लिए और भाई से जा मिला। बहुत दिनों के बिछुड़े हुए दोनों भाई खूब अच्छी तरह गले मिले। वहाँ चेटक बैठ गया। शक्त ने उसे दूसरा घोड़ा दिया जिसका नाम अंगारद था। जब राणा ने चेटक पर की जीन आदि उतार कर उस दूसरे घोड़े पर रखी, तब दुःख है कि चेटक के प्राण निकल गए। उसी स्थान पर उसका एक स्मारक बना हुआ है। उदय-पुर की बस्ती में प्राय आधे घर ऐसे होंगे जिनकी भीतों पर इस दृश्य के चित्र अंकित हैं। शक्त ने चलते समय अपने भाई राणा से हँस कर कहा—'भइया, जब कोई प्राण लेकर भागता है, तब उसके मन की कैसी अवस्था होती है।' इसके उपरान्त उसे इस बात का भी विश्वास दिलाया कि जब मैं अवसर पाऊँगा, तब फिर आऊँगा।

शकत वहाँ से एक मुगल के घोड़े पर चढ़ा और सलीम के लश्कर में आया। लोगों से कहा कि प्रताप ने अपने दोनों पीछा करनेवालों को मार डाला। उनकी सहायता करने में मेरा भी घोड़ा मारा गया। विवश होकर मैं उन्हीं में से एक के घोड़े पर यहाँ आया हूँ। लश्कर में किसी को उसकी इस बात का विश्वास नहीं हुआ। अन्त में सलीम ने उसे बुलाकर इस बात का वचन दिया कि यदि तुम सच बात कह दोगे, तो मैं तुम्हें क्षमा कर दूँगा। सीधे-सादे सैनिक ने सब बातें ठीक-ठीक बतला दीं। सलीम ने भी अपने वचन का पालन किया, परन्तु उससे इतना कह दिया कि अब तुम अपने भाई के पास जाकर उसे भेंट दो, अर्थात् उसकी अधीनता स्वीकृत करो और वहीं रहो। इसलिये वह वहाँ से अपने देश चला गया।

राणा कीका मेवाड़ देश में राज्य करता था और भारत के प्रसिद्ध राजाओं में से था। जब अकबर ने चित्तौड़ मार लिया, तब राणा ने हिन्दवारा पहाड़ पर कोकंडा का किला बनाया। उसी में रहकर वह कोमलमेर देश पर राज्य करता था। उक्त स्थान अरावली पर्वत में उदयपुर से उत्तर चालिस मील की दूरी पर स्थित है।

भारतवर्ष के बहुत से राजे अकबर की अधीनता स्वीकृत कर चुके थे अथवा उसके अनुकूल हो गए थे। परन्तु राणा की अकड़ अभी तक बनी हुई थी। इसलिये सन ९८३ हि० में अकबर लश्कर सहित अजमेर गया। जब दरगाह एक पड़ाव रह गई, तब वह वहाँ से पैदल ही चल पड़ा। वहाँ जियारत करके भेंट आदि चढ़ाई। एक दिन मानसिंह को भी अपने साथ दरगाह में ले

गया। वहाँ बहुत देर तक प्रार्थना करता रहा। और अमीर आदि भी वहाँ उपस्थित थे। मन्त्रणा और परामर्श आदि होने पर, चढ़ाई करना निश्चित हुआ। मानसिंह को पुत्र की उपाधि मिली और साथ ही सेनापतित्व भी प्रदत्त हुआ। पाँच हजार अच्छे चुने हुए सवार, जिनमे से कुछ तो खास बादशाह के थे और कुछ अमीरो के अधीन थे, उसकी सहायता के लिये दिए गए। कई अमीर, जिनके साथ अच्छी और अनुभवी सेनाएँ थीं, साथ किए गए। सब लोग राणा की रियासत की ओर चले। लश्कर-रूपी नद ने उदयपुर मे प्रवेश किया। कुँवर ने माँडलगढ़ मे ठहर कर लश्कर की व्यवस्था की। वहाँ से चलकर वह हल्दी घाटी होता हुआ कोकंडा पर जा पहुँचा जहाँ राणा रहता था।

राणा अपनी राजधानी से निकला। बहुत से सूरमा राजपूत, जो अपनी जातीयता की रक्षा के लिये पहाड़ो पर बैठे हुए थे, तलवारें खींचकर साथ निकले। मानसिंह अभी नवयुवक ही था, परन्तु उसने अकबर के साथ रहकर इस शतरंज के नक्शे बहुत खेले थे। कुछ पुराने और अनुभवी सरदारो को साथ लेकर वह सेना के मध्य मे स्थित हुआ। कई परे बाँधकर उसने अपने लश्कर-रूपी किले को बहुत दृढ़ कर लिया और अच्छे-अच्छे वीर चुन कर प्रत्येक सेना के लिये कुमक तैयार रखी।

मुल्ला साहब जहाद के विचार से इस युद्ध में सम्मिलित हुए थे। उन्होंने शब्दों के पानी और रंग से युद्ध-क्षेत्र का ऐसा चित्र खींचा है कि उसके सामने इतिहास-लेखको की कलम टूट गई। इस अवसर पर आजाद उसी का फोटो लेकर अकबरी दरबार में

जाता है। राणा प्राय तीन हजार सवारों को साथ लेकर बादल की तरह पहाड से उठा और अपनी सेना को दो भागों मे विभक्त करके लाया। एक सेना ने बादशाही हरावल से टक्कर खाई। पहाडी देश था। उसमे गड्ढों, झाडियों और पहाड़ियों के ऊच-नीच बहुत थे। हरावल और उसके सहायक सैनिक गटपट हो गए। भगोडी लडाई लडनी पडी। बादशाही लश्कर के राजपूत बाई ओर से इस प्रकार भागे जिस प्रकार बकरियाँ भागती है। वे हरावल को लाँघ-फलाँग कर दाहिनी ओर की सेना मे घुस आए। हाँ, बारहावाले सैयदों तथा कुछ आन रखनेवाले वीरों ने वह काम किए कि कदाचित् ही रुस्तम से हुए हो। दोनो पक्षों के बहुत से आदमी मारे गए। जिस सेना मे राणा था, उसने घाटी से निकलते ही काजीखॉ बदख्शी पर आक्रमण किया जो मुहाने को रोक कर खडा था। उन्हे उठाकर उलटते पलटते सेना के मध्य भाग मे फेक दिया। सीकरीवाले शेखजादे तो इकट्ठे ही भागे। शेख इब्राहीम, शेख मन्सूर (शेख सलीम के लडके इब्राहीम के दामाद) उनके सरदार थे। भागने मे एक तीर उनके चूतडो पर बैठा। बहुत दिनो तक उसका कष्ट भोगते रहे। काजीखॉ यद्यपि मुल्ला थे, तथापि वीरतापूर्वक अडे। हाथ पर एक तलवार खाई जिससे ॲगूठा कट गया। परन्तु ठहरने का स्थान नहीं था। काजी साहब पलायन की हदीसो का पाठ करते हुए सेना के मध्य भाग मे आ गए।

कुरान की एक आयत का आशय है कि जो व्यक्ति जहाद मे भागता है, उसकी तोबा स्वीकृत नहीं होती। बडे-बडे विद्वान भी मुँह से तो यही कहते हैं, परन्तु जब स्वयं भागने लगते है, तब

पैगम्बरों को भी आगे रखकर भागते हैं। जो लोग पहले आक्रमण से भागे थे, उन्होंने तो पाँच छः कोस तक दम ही न लिया। बीच में एक नदी पड़ती थी। उसे भी पार कर गए। लड़ाई तराजू हो रही थी। इतने में एक सरदार घोड़ा उड़ाता और नगाड़ा बजाता हुआ आ पहुँचा। उसने सूचना दी कि बादशाही सेना जल्दी-जल्दी बढ़ती हुई चली आ रही है। बादशाही लश्कर का बहुत तेज शोर सुनाई पड़ता था। इस मन्त्र ने बहुत बड़ा प्रभाव किया। जो लोग भाग रहे थे, वे थम गए और जो भाग गए थे, वे लौट पड़े। बस शत्रु के पैर उखड़ गए।

ग्वालियर-वाला राजा राम शाह राणा के आगे आगे भागा आता था। उसने मानसिंह के राजपूतों पर ऐसी विलक्षण विपत्ति ढाई कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। ये वह लोग थे जो हरावल के बाएँ से भागकर आए थे। लेकिन ऐसे बद-हवास भागे हुए आए थे कि बहुत सम्भव था कि वे आसफखाँ को भी भगोड़ा बना देते। दाहिनी ओर बारहा के सैयद थे, उन्होंने आकर उन्हीं लोगों में शरण ली। यदि बारहावाले सैयद लोग दृढ़तापूर्वक न अड़ते और हरावल की भाँति नोक दुम भागते तो बदनामी में कोई बात बाकी न रह जाती। राणा ने आकर अपने हाथियों को बादशाही हाथियों से ला टकराया। उनमें से दो मस्त हाथी चूर-चूर हो गए। बादशाही पीलवान हुसैनखाँ उस समय मानसिंह के आगे बैठा हुआ था। जब वह हाथी से नीचे गिर पड़ा, तब मानसिंह स्वयं महावत की जगह आ बैठा और ऐसी दृढ़ता से बैठा कि उससे बढ़कर और दृढ़ता क्या होगी। ईश्वर को धन्यवाद है कि सेना का मध्य भाग अपने स्थान पर स्थित रहा।

सजाता है। राणा प्राय तीन हजार सवारों को साथ लेकर बादल की तरह पहाड से उठा और अपनी सेना को दो भागो मे विभक्त करके लाया। एक सेना ने बादशाही हरावल मे टक्कर खाई। पहाडी देश था। उसमे गड्ढो, झाडियो और पहाड़ियो के पेच-पेच बहुत थे। हरावल और उसके सहायक सैनिक गटपट हो गए। भगोडी लडाई लडनी पडी। बादशाही लश्कर के राजपूत बाई ओर से इस प्रकार भागे जिस प्रकार बकरियाँ भागती है। वे हरावल को लाँघ-फलाँग कर दाहिनी ओर की सेना मे घुस आए। हाँ, बारहावाले सैयदो तथा कुछ आन रखनेवाले वीरो ने वह काम किए कि कदाचित् ही रुस्तम से हुए हो। दोनो पक्षो के बहुत से आदमी मारे गए। जिस सेना मे राणा था, उसने घाटी से निकलते ही काजीखाँ बदख्शी पर आक्रमण किया जो मुहाने को रोक कर खडा था। उन्हे उठाकर उलटते पलटते सेना के मध्य भाग मे फेंक दिया। सीकरीवाले शेखजादे तो इकट्ठे ही भागे। शेख इब्राहीम, शेख मन्सूर (शेख सलीम के लडके इब्राहीम के दामाद) उनके सरदार थे। भागने मे एक तीर उनके चूतडो पर बैठा। बहुत दिनो तक उसका कष्ट भोगते रहे। काजीखाँ यद्यपि मुल्ला थे, तथापि वीरतापूर्वक अडे। हाथ पर एक तलवार खाई जिससे अँगूठा कट गया। परन्तु ठहरने का स्थान नहीं था। काजी साहब पलायन की हदीसो का पाठ करते हुए सेना के मध्य भाग मे आ गए।

कुरान की एक आयत का आशय है कि जो व्यक्ति जहाद मे भागता है, उसकी तोबा स्वीकृत नहीं होती। बडे-बडे विद्वान भी मुँह से तो यही कहते है, परन्तु जब स्वयं भागने लगते है, तब

पैगम्बरों को भी आगे रखकर भागते हैं। जो लोग पहले आक्रमण मे भागे थे, उन्होंने तो पाँच छ. कोस तक दम ही न लिया। बीच मे एक नदी पडती थी। उसे भी पार कर गए। लड़ाई तराजू हो रही थी। इतने में एक सरदार घोड़ा उड़ाता और नगाड़ा बजाता हुआ आ पहुँचा। उसने सूचना दी कि बादशाही सेना जल्दी-जल्दी बढ़ती हुई चली आ रही है। बादशाही लश्कर का बहुत तेज शोर सुनाई पड़ता था। इस मन्त्र ने बहुत बडा प्रभाव किया। जो लोग भाग रहे थे, वे थम गए और जो भाग गए थे, वे लौट पड़े। बस शत्रु के पैर उखड़ गए।

ग्वालियर-वाला राजा राम शाह राणा के आगे आगे भागा आता था। उसने मानसिंह के राजपूतों पर ऐसी विलक्षण विपत्ति ढाई कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। ये वह लोग थे जो हरावल के बाएँ से भागकर आए थे। लेकिन ऐसे बद-हवास भागे हुए आए थे कि बहुत सम्भव था कि वे आसफखाँ को भी भगोड़ा बना देते। दाहिनी ओर बारहा के सैयद थे, उन्होंने आकर उन्हीं लोगों में शरण ली। यदि बारहावाले सैयद लोग दृढ़तापूर्वक न अड़ते और हरावल की भाँति नोक दुम भागते तो बदनामी मे कोई बात बाकी न रह जाती। राणा ने आकर अपने हाथियो को बादशाही हाथियों से ला टकराया। उनमे से दो मस्त हाथी चूर-चूर हो गए। बादशाही पीलवान हुसैनखाँ उस समय मानसिंह के आगे बैठा हुआ था। जब वह हाथी से नीचे गिर पड़ा, तब मानसिंह स्वयं महावत की जगह आ बैठा और ऐसी दृढ़ता से बैठा कि उससे बढ़कर और दृढ़ता क्या होगी। ईश्वर को धन्यवाद है कि सेना का मध्य भाग अपने स्थान पर स्थित रहा।

इधर से जो राम शाह भागा था, उसने अपने तीन पुत्रों के रक्त से अपने नाम पर का कलंक धोया।

शत्रु की ओर से पीलवान ने रामप्रसाद नामक हाथी को बढ़ाया। यह बहुत बड़ा और जंगी हाथी था। उसने बहुत से वीरों को अपने पैरों तले रौंदकर सेना की पंक्तियों को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। इधर से बादशाही फौजदार कमालखाँ ने गजराज हाथी को सामने किया। दोनों देर तक आपस में एक दूसरे को रेलते-ढकेलते रहे। बादशाही हाथी दब निकला था, परन्तु इतने में अकबर के प्रताप ने रामप्रसाद के महावत को मौत की गोली मार दी। वह इस धक्कम-धक्के में जमीन पर आ गिरा। बादशाही पीलवान, वाह रे तेरी फुरती! झट कूदकर राणा के हाथी पर जा बैठा और वह काम किया जो किसी से न हो सके। इतने में एक्के के सवार, जो मानसिंह की अरदली में थे, राणा की सेना पर टूट पड़े। उस समय ऐसा घमासान युद्ध हुआ कि मानसिंह का सेनापतित्व उसी दिन लोगों को मालूम हो गया। मुल्ला शीरीं ने सच कहा है—

که هندو میزند شمشیر اسلام —

अर्थात्—हिन्दू भी इस्लाम की ओर से तलवार चलाते हैं।

राणा के साथ मानसिंह का सामना हुआ। ऊपर तले कई वार हुए। अन्त में राणा न ठहर सका। वह मानसिंह के हाथ से घायल हुआ और सबको वहीं छोड़कर भागा। उसकी सेना में खलबली मच गई और उसके सरदार भाग-भाग कर उसकी ओर हटने लगे। अन्त में सब लोग पहाड़ों में घुस गए। ग्रीष्म ऋतु अग्नि की वर्षा कर रही थी। लू चल रही थी। जमीन और

आस्मान दोनो तँदूर की तरह धधक रहे थे। सिर में भेजे पानी हो गए थे। प्रात काल मे दो-पहर तक लोग लड़ते रहे। पाँच सौ आदमी खेत रहे जिनमें से १२० मुसलमान और बाकी हिन्दू थे। घायल गाजियों की संख्या तीन सौ से अधिक थी। लोग यह समझते थे कि राणा भागनेवाला नहीं है। यहीं किसी पहाड़ी के पीछे छिप रहा है। वह फिर लौटकर आवेगा। इसलिये किसी ने उसका पीछा नहीं किया। सब लोग अपने खेमो मे लौट आए और घायलों की मरहम-पट्टी मे लग गए।

दूसरे दिन वहाँ से कूच किया। मैदान मे होते हुए और प्रत्येक व्यक्ति की कारगुजारी देखते हुए घाटी से निकल कर कोकंडे मे आए। राणा ने कुछ विश्वसनीय और निष्ठ व्यक्तियों को महलो पर नियुक्त किया। कुछ तो वे लोग और कुछ मन्दिरो में से निकल आए। कुल बीस आदमी होंगे। वे अपने प्राण देकर कीर्त्तिशाली हो गए। हिन्दुओ मे यह प्राचीन प्रथा थी कि जब नगर खाली करते थे, तब अपनी प्रतिष्ठा और कीर्त्ति की रक्षा के लिये अवश्य प्राण दे देते थे। पता लगा कि राणा रात के समय छापा मारने का भी विचार कर रहा है; क्योंकि नगर के चारो ओर पत्थर चुन-चुन कर हाथो-हाथ ऐसी दीवार और खाई बना ली थी कि जिस परसे सवार घोडा न उड़ा सकें। मानसिंह ने सरदारो को एकत्र करके उन लोगो की सूचियाँ बनाई जो युद्ध मे निहत हुए थे, और जिनके घोड़े मारे गए थे, उनके भी नाम माँगे गए। सैयद महमूदखाँ बारहा ने कहा कि हमारा न तो कोई आदमी मरा और न घोडा मरा। केवल नाम लिखने-लिखाने से क्या लाभ। हाँ, अनाज की चिन्ता करो।

इस पहाडी प्रान्त मे खेती बहुत कम होती है। अनाज घट गया था और रसद नहीं पहुँचती थी। फिर कमेटी हुई। ऐसे अवसरो पर प्राय ऐसा ही हुआ करता है। एक-एक अमीर को एक-एक सरदार बनाकर यह निश्चित किया गया कि प्रत्येक सरदार बारी-बारी से अनाज की तलाश मे निकला करे। वे लोग पहाडो पर चढ जाते थे। जहाँ कहीं अनाज के खत्ते या बस्ती की खबर पाते थे, वहाँ पहुँच जाते थे। अनाज समेटते थे और आदमियो को बाँध लाते थे। पशुओ के मास पर निर्वाह करते थे। आम वहाँ इतनी अधिकता मे होते थे कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। लश्कर के कंगलो ने भोजन के स्थान पर भी वही आम खाए और बीमार होकर मारे लश्कर मे गन्दगी फैला दी। वहाँ का एक-एक आम भी सवा-सवा सेर का होता था, जिसमे छोटी सी गुठली होती थी। परन्तु स्वाद चाहो तो खटास, मिठास कुछ भी नहीं।

बादशाह को भी इस युद्ध का बहुत अधिक ध्यान था। उसने डाक बैठाकर एक सरदार को भेजा कि जाकर युद्ध का समाचार ले आओ। यहाँ विजय हो चुकी थी। वह सरदार आया और यहाँ का समाचार जानकर दूसरे ही दिन विदा हो गया। सब की सेवाएँ स्वीकृत हुई। इतना होने पर भी कुछ चुगली खानेवालो ने कह दिया कि युद्ध मे विजय प्राप्त कर लेने के उपरान्त भी कुछ त्रुटि की गई। नहीं तो राणा जीवित पकड लिया जाता। बादशाह को भी यह बात कुछ ठीक जान पडी, परन्तु जाँच करने पर पता चला कि शैतानो ने व्यर्थ ही यह बात उडा दी थी।

सन ९८९ हि० मे मानसिंह ने वह वीरता दिखलाई कि

भारतीय लोहे ने विलायती लोहे के जौहर मिटा दिए। बंगाल प्रदेश मे अकबर के अमीरो ने विद्रोह किया। ये सब नमकहराम नए पुराने तुर्क और काबुली अफगान थे। उन्होंने सोचा कि बादशाह का विरोध करने के लिये जब तक हमारे पास कोई बादशाही हड्डी न होगी, तब तक हम विद्रोही कहलावेंगे। इसलिये उन लोगों ने मिरजा हकीम के पास निवेदनपत्र लिख कर भेजे। साथ ही उसके अमीरों के नाम भी पत्र और जबानी सँदेसे भेजे। उन सबका सारांश यह था कि आप हुमायूँ बादशाह की सन्तान हैं और समानता का अधिकार रखते हैं। यदि आप राजोचित साहस करके उधर से आवें तो आपके ये पुराने सेवक इधर से प्राण निछावर करने के लिये प्रस्तुत हैं। उसके पास भी हुमायूँ के समय के सेवक बल्कि बाबर के शासन-काल की खुरचन बाकी थी। सबसे पहले उसका शुभचिन्तक शादमान कोका था, जिसका पिता सुलेमान बेग अन्दजानी और दादा लुकमान बेग था, जो किसी समय बाबर बादशाह का बहुत बड़ा प्रेमपात्र था। इन लोभियो ने उक्त विचार को और भी चमका कर नवयुवक शाहजादे के सामने उपस्थित किया। उसने यह अवसर बहुत ही उपयुक्त समझा और पंजाब की ओर प्रस्थान किया। एक सरदार को कुछ सेना देकर आगे भेज दिया। वह पेशावर से बढ़कर अटक नदी के इस पार उतर आया। यूसुफखाँ (मिरजा अजीज का बड़ा भाई) वहाँ का जागीरदार था। उस दरिद्र ने बहुत ला-परवाही के साथ एक सरदार को भेज दिया। वह इस प्रकार आया कि सेना भी अपने साथ नहीं लाया। भला ऐसी दशा में वह शत्रु को क्या रोक सकता था! जरा अकबर के

प्रताप की करामात देखिए कि वह एक दिन उधर से शिकार करने के लिये निकला। शत्रु उधर के जंगल और मैदान देख रहा था। मार्ग मे दोनो मिल गए और तलवार चल गई। शत्रु घायल हो कर भाग निकला और पेशावर पहुँच कर मर गया। अकबर ने यूसुफखॉ को बुला लिया और मानसिंह को सेनापति नियुक्त करके भेज दिया।

अब देखिए, यदि वंश के पुराने-पुराने सेवको मे चित्त दुःखी न हो तो और क्या हो, और पराये आदमियो मे कोई काम न ले, तो क्या करे? जिस समय बादशाह के भाई-बन्दो मे से कोई विद्रोह करता था, उस समय अमीर लोग दोनो ओर देखते रहते थे। एक घर के कुछ आदमी इधर हो जाते थे और कुछ उधर हो जाते थे। दोनो ओर बात-चीत चलाए चलते थे। जब किसी एक पक्ष की जीत होती थी, तब दूसरे पक्षवाले भी उसी ओर जा मिलते थे। कुछ लज्जित सा रूप बनाकर सामने जाकर सलाम करते थे और कहते थे कि हुजूर, हम लोग तो इसी वश मे पले हुए है। हुमायूँ और बाबर बल्कि तैमूर के समस्त वश मे जो घर बिगडा, वह इसी प्रकार बिगडा। अकबर को शाह तहमास्प का उपदेश स्मरण था। जब उसने साम्राज्य सँभाला, तब राजपूतो को जोर दिया। वह विशेषतः ऐसे ही अवसरो पर उनसे तथा ईरानियो और बारहा के सैयदो से काम लेता था, क्योकि वे भी बुखारावालो या अफगानो से मेल खानेवाले नहीं थे। ईरानी लोग बहुत स्वामिनिष्ठ और प्राण निछावर करनेवाले थे और साथ ही योग्यता के भी पुतले थे। और सैयदो की तो जाति ही तलवार की मालिक है। मानसिंह

ने अपनी जागीर स्यालकोट मे आकर डेरा डाला। वहाँ से वह सेना की व्यवस्था करने लगा। एक फ़ुरतीले सरदार को सेना देकर आगे भेजा और कहा कि जाकर अटक के किले की व्यवस्था करो। राजा भगवानदास ने किले को दृढ़ किया। उधर जब मिरज़ा हकीम ने सुना कि मेरा भेजा हुआ सरदार मारा गया, तब उसने अपने कोका शादमान को अच्छी सेना के साथ भेजा। उसकी माँ ने मिरज़ा को झूला हिला-हिला कर पाला था। वह मिरज़ा के साथ खेल कर बड़ा हुआ था और वास्तव मे बहुत साहसी युवक था। अफ़गानिस्तान मे उसकी तलवार ने अच्छे जौहर दिखलाए थे और सरदारी का नाम उज्वल किया था। उसने आते ही झट किले को घेर लिया। मानसिंह भी रावलपिंडी तक पहुँच चुके थे। जब यह समाचार मिला, तब उसके हृदय में राजपूती रक्त उबल पड़ा। जब तक अटक उसकी दृष्टि के सामने नहीं आया, तब तक वह कहीं न अटका। शाद-मान निश्चिन्तता की नींद में पड़ा हुआ था। नगाड़े का शब्द सुन कर जागा। वह अपने डेरे से उठ कर बहुत साहसपूर्वक आकर सामने हुआ। कुँवर मानसिंह और शादमान दोनो ने साहस और सरदारी के अरमान निकाल दिए। मानसिंह के भाई सूरजसिंह ने ऐसे वीरतापूर्ण आक्रमण किए कि उसी के हाथ मे शादमानखाँ घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और मर गया।

जब मिरज़ा ने सुना कि शादमान इस संसार मे उठ गया, तब उसे बहुत अधिक दुःख हुआ और वह लश्कर लेकर चला गया। पर अकबर की आज्ञा बराबर पहुँच रही थी कि घबराना

नहीं और मिरजा को मत रोकना। उसे आने देना। और जब तक हम न आवें, तब तक उस पर आक्रमण न कर बैठना।

इसमे बुद्धिमत्ता की बात यह थी कि अकबर जानता था कि यह अदूरदर्शी लडका इन वीरो के सामने न ठहर सकेगा, अवश्य हार जायगा। और यदि यह भागा तो कहीं ऐसा न हो कि उसका जी छोटा हो जाय और वह सीधा तुर्किस्तान चला जाय। अब्दुल्लाखाँ इस अवसर को अपने लिये बहुत अच्छा समझेगा। यदि वह उधर से सेना लेकर आया, तो बात कुछ और ही हो जायगी। बस ये लोग पीछे हटते गए और वह बढता-बढता लाहौर तक चला आया। रावी के किनारे महदी कासिम खाँ के बाग मे आ उतरा। राजा भगवानदास, कुँवर मानसिह, सैयद हामिद बारहा और दरबार के कुछ दूसरे अमीर दरवाजे बन्द करके बैठ गए। अकबर के सँदेसे पहुँच रहे थे कि देखो, कहीं उस पर आक्रमण न कर बैठना। अभिप्राय यह था कि मैं भी लश्कर लेकर आ पहुँचूँ, तब अमीर लोग चारो ओर फैल जायँ और उसे घेर कर पकड ले, जिससे सदा के लिये यह झगडा ही मिट जाय। शेर नगर मे बन्द पडे हुए तडपते थे और रह-रह जाते थे, क्योकि वे आज्ञा की शृंखलाओ से जकडे हुए थे। फिर भी उन लोगो ने नगर और उसके आस-पास के सब स्थानो का बहुत ही अच्छा और दृढ प्रबन्ध कर लिया था। वे अपने-अपने मोरचो को सँभाले हुए बैठे थे, और मिरजा के आक्रमणो का दाँत खट्टे करनेवाला जवाब देते थे। समाचार मिला कि लाहौर के मुख्य लोग उसे बुलाना चाहते है और काजी तथा मुफ्ती कागज के घोडे दौडा रहे है। इस

लिये बड़ी रोक-थाम से उनका प्रबन्ध किया। अकबर ने दिल्ली में यह समाचार सुना। वह साहस के घोडे पर सवार हुआ और बाग उठाई।

मिरजा हकीम समझता था कि बादशाह उधर बंगाल के युद्ध में लगा हुआ है। देश खाली पड़ा है। उसने उक्त बाग में बीस दिन तक खूब आनन्द-मंगल किया। पर जब उसने सुना कि उधर नमकहरामो के काम बिगड़ते चले जाते हैं और अकबर सरहिन्द तक आ पहुँचा है, तब उसने नगर पर से घेरा उठा लिया। वह महदी कासिम खाँ के बाग से एक कोस और ऊपर चढ कर नदी के पार हुआ और गुजरात के इलाके में जलाल-पुर नामक स्थान मे उसने चनाव नदी पार की। भेरे के पास झेलम उतरा और भेरे की ओर लौटा। फिर वहाँ से भी भागा और घेप नामक स्थान में सिन्ध नदी पार करके काबुल की ओर भागा। घाटियों पर घबराहट मे उसके बहुत से आदमी बह गए। साथ ही सरहिन्द से अकबरी आज्ञा पहुँची कि उसका पीछा मत करना। वह अपने दरबार मे मुसाहबों से बार-बार कहता था कि भाई कहाँ पैदा होता है! घबराकर भागा है। मार्ग मे उसे अटक पार करना है। ऐसा न हो कि कोई दुर्घटना हो जाय।

अकबर की आज्ञा से कुँवर मानसिंह साधारण मार्ग से चल कर पेशावर पहुँचा। अकबर ने बादशाही लश्कर की व्यवस्था करके शाहजादा मुराद को काबुल की ओर भेजा, जिससे वह वहां पहुँच कर काबुल की ठीक-ठीक व्यवस्था करे। बादशाही अमीर और पुराने अनुभवी सेनापति उसके साथ गए। पर उनमे

वही चलती तलवार सेना के हरावल का प्रधान बनाया गया। यह लश्कर आगे चला और स्वयं बादशाह अपने प्रताप का लश्कर लेकर उनके पीछे-पीछे उनकी रक्षा करता हुआ चला।

भारतवर्ष आजाद की मातृ-भूमि है। पर वह सत्य कहने से कभी न चूकेगा। भारत की मिट्टी मे मनुष्य को साहस-हीन काम-चोर, मुफ्तखोर और आराम-तलब बनाने मे रामबाण का सा गुण है। यद्यपि दरबार के प्राय अमीर ईरानी, तूरानी और अफगानो की हड्डी के थे, पर जब अकबर अटक के पास पहुँचा, तब उन अमीरो को बहुत दिनो तक भारत मे रहने के कारण उस देश मे एक बिलकुल ही नया ससार दिखाई देने लगा। वहाँ की भूमि की बिलकुल नई ही दशा थी। चारो ओर पहाड, हर कदम पर जान जाने का डर, आदमी नए, जगल के जानवर नए, पहनावे नए, बात नई, आवाज नई। आगे एक पडाव से दूसरा पडाव कठिन। उन्होने यह भी सुन रखा था कि वहाँ खूनी बरफ पडती है जिससे उँगलियाँ बल्कि हाथ-पैर तक झड जाते है। लश्कर के लोग प्राय भारतीय बल्कि हिन्दू थे, जिनके लिये अटक पार करना भी ठीक नही था। इसके सिवा चाहे विलायती हो और चाहे भारतीय, अब तो सबके घर यही थे। कुछ तो भारत के सुख और आनन्द याद आए और कुछ बाल-बच्चो का ध्यान आया। सभी यह चाहते थे कि इस विषय को जबानी बातो मे लपेट कर सन्धि कर ली जाय और हम लोग लौट चले। उन्होने प्रार्थनाएँ और निवेदन करके अकबर को रास्ते पर लाना चाहा। पर उसकी यह सम्मति थी कि मिरजा हकीम ने हमे कई बार तग किया है। यदि इस बार भी हम लोग इसी तरह लौट

जायँगे, तो कल फिर यही झगड़ा उठ खड़ा होगा। उसने यह भी सोचा होगा कि सेना के हृदय में इस प्रकार का भय बैठना ठीक नहीं है। वह इस बात का भी पता अवश्य लगाता होगा कि ये लोग इस देश की कठिनाइयों से घबराकर इस लड़ाई से बचना चाहते हैं या इनके हृदय में मिरजा हकीम के प्रेम ने घर किया है। शेख अब्बुलफजल को आज्ञा दी कि परामर्श के लिये सभा करो। उसमें हर एक आदमी जो कुछ कहे, वह लिखकर मेरे सामने उपस्थित करो। शेख ने हर एक का कथन और तर्क संक्षेप में लिखकर सेवा में उपस्थित किया। पर बादशाह के विचार पर उन सब बातों का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। मानसिंह शाहजादे को लिए हुए आगे बढ़ा था। उसे बादशाह ने और आगे बढ़ा दिया; और आप लश्कर लेकर चल पड़ा। बरसात ने अटक का पुल न बाँधने दिया। स्वयं बादशाह और लश्कर के सब लोग नावों पर चढ़कर नदी के पार हो गए। भारी सामान अटक के किनारे छोड़ दिए और यों ही सेना लेकर आगे चल पड़े। साथ ही भाई के पास ऐसे सँदेसे भी भेजे जाते थे जिनसे उसका चित्त भी कुछ शान्त हो और वह कुछ डरे भी। बल्कि कुछ देर भी यही समझ कर की जा रही थी कि कहीं बादशाही लश्कर के दौड़ा-दौड़ पहुँचने से सन्धि और मेल का अवसर हाथ से न निकल जाय और नवयुवक भाई के प्राण व्यर्थ न जायँ। इसलिये अटक नदी पार करके मिरजा हकीम के नाम एक आज्ञापत्र भेजा। उसका सारांश यह था कि भारतवर्ष के विस्तृत देश में राजमुकुट धारण करनेवाले बहुत से राजा-महाराज थे। पर अब वह सारा देश

हमारे अधिकार मे आ गया। बड़े-बड़े सरदारो ने सिर झुका दिए। तुम्हारे वंश के अमीर उन राजाओ और बादशाहो के स्थान पर बैठे हुए शासन कर रहे हैं। जब यहाँ की यह अवस्था है, तब इस सुख से भाई ही क्यो वंचित रहे? पुराने समय के बड़े लोगो ने छोटे भाई को लडके के स्थान पर बतलाया है, पर वास्तव मे बात यह है कि लडका तो और भी हो सकता है, पर भाई और नही हो सकता। अब तुम्हारी बुद्धि और समझ के लिये यही उपयुक्त है कि तुम इस अज्ञान की निद्रा छोड़कर जागो और हमे मिल कर प्रसन्न करो। अब इससे अधिक हमे अपने दर्शनो से वंचित न रखो।

मिरजा के यहाँ से कुछ तो जबानी सँदेसा आया और साथ मे एक पत्र भी आया जिसमे अपने किए पर पश्चात्ताप प्रकट किया गया था और क्षमा माँगी गई थी। पर वह पत्र निराधार और नियम-विरुद्ध था। वहाँ से जो आदमी आया था, उसके साथ अकबर ने एक अमीर यहाँ से भेजा और कहलाया कि तुम्हारे अपराध की क्षमा तो इसी बात पर निर्भर है कि जो कुछ हुआ, उसके लिये पश्चात्ताप करो और लज्जित हो। भविष्य के लिये तुम जो कुछ प्रण करो, उसे शपथ की शृंखलाओ से दृढ करो, और जिस बहन का विवाह ख्वाजा हसन से करना ठीक किया है, उसे इधर भेज दो। मिरजा ने कहा कि मुझे और सब बाते तो सच्चे हृदय से स्वीकृत है, पर बहन को भेजने के लिये ख्वाजा हसन तैयार नहीं होता। वह उसे बदख्शाँ ले गया है। हाँ मैंने जो कुछ किया है, उसके लिये मुझे बहुत पश्चात्ताप है।

मिरजा के इस प्रकार निवेदन करने और सँदेसे भेजने से

अमीरो को उसका अपराध क्षमा करने की चर्चा चलाने का और भी अधिक अवसर मिला। यह भी पता चला कि कलीचखाँ और यूसुफखाँ कोका आदि बड़े-बड़े अमीरो के पास उन्हे अपनी ओर मिलाने के लिये मिरज़ा ने पत्र भेजे हैं। यद्यपि उन लोगो ने पत्र लानेवालो को वध तक का दंड दिया, पर फिर भी अकबर ने मन्त्रणा के लिये सभा की और अब्बुलफजल मन्त्री हुए। उस सभा के बीस सदस्य थे। सब की सम्मति का साराश यही था कि मिरज़ा अपने किए पर पश्चात्ताप प्रकट करता है; और अपराध क्षमा करना बादशाह के अनुग्रह का नियम है, इसलिये उसका अपराध क्षमा किया जाय और देश भी उसी के पास छोड़ दिया जाय। सब लोग यहाँ से लौट चले। शेख यद्यपि नए आए थे और अभी नौ दस बरस के ही नौकर थे, न तो उमर ने उनकी दाढ़ी ही बढ़ाई थी और न उसे सफेद ही किया था, न वे कई पीढ़ियों के सेवक ही थे, पर फिर भी समय देख कर उसी के अनुसार बातें करना उनका सिद्धान्त था। इसलिये उन्होंने खूब जी खोल कर भाषण किया। उन्होने कहा कि बादशाही लश्कर इतना सामान लेकर इतनी दूर तक आ पहुँचा है। स्वयं बादशाह उसके सिर पर उपस्थित हैं। कुछ ही पड़ाव आगे अभीष्ट स्थान है। खाली बातो पर, निराधार लेख पर, अज्ञात और अप्रसिद्ध आदमी के वकालत करने पर लौट चलना कहाँ की समझदारी है। और जरा पीछे घूमकर तो देखो। पंजाब का देश है। बरसात सिर पर है। नदियाँ चढ़ गई हैं। इस दशा मे यह दुनियाँ भर का सामान साथ है। सैनिक सामग्री भी कम नहीं है। यहाँ से पीछे लौटना तो आगे बढ़ने से भी अधिक कठिन

है। हानि उठा कर लौटना और लाभ को छोड देना किसी प्रकार उचित नहीं है। फल पास आ गया है। उसे प्राप्त कर लो। अच्छी तरह दंड या शिक्षा देने के बाद क्षमा प्रकट करने में भी कोई हानि नहीं है। दरबार के अमीर इस लच्छेदार भाषण से अप्रसन्न हो गए। बहुत सी बातें हुईं। अन्त में शेख ने कहा कि अच्छी बात है। हर आदमी अपनी-अपनी सम्मति बादशाह की सेवा में निवेदन कर दे। इस सेवक से जब तक वे कुछ न पूछेंगे, तब तक यह कुछ न बोलेगा। इस पर सब लोग उठ खडे हुए।

इस सभा का कार्य-विवरण लिखा गया। दूसरे दिन शेख को ज्वर चढ आया। कार्य-विवरण बादशाह की सेवा में उपस्थित किया गया। बादशाह ने पूछा कि शेख कहाँ है और उसकी क्या सम्मति है? एक आदमी ने धृष्टता करके कहा कि वह बीमार है, पर उसकी सम्मति भी यही है। बादशाह बहुत दुःखी हुए। बोले कि हमारे सामने तो उसकी ऐसी सम्मति थी। वहाँ सभा में जाकर वह इन लोगों के साथ हो गया। शेख जब दूसरे दिन सेवा में गए तो देखते हैं कि बादशाह के तेवर बिगडे हुए हैं। वह लिखते हैं कि मैं समझ गया कि दगाबाजों ने कोई पेच मारा। मैं अपने जीवन से दुःखी हो गया। अन्त में भाषण को प्रेरणा हुई और बात की जाँच हुई। तब कहीं चित्त शान्त हुआ। बादशाह ने बिगड कर कहा कि काबुल की सरदी और यात्रा की कठिनाइयाँ लोगों को डराती हैं। ये लोग आराम को देखते हैं। यह नहीं देखते कि इस समय क्या करना उचित है। अच्छा अमीर लोग यहीं रहें। हम यों ही अपने सेवकों को साथ लेकर चढाई पर जायँगे। भला यह किस की मजाल

थी कि अकबर बादशाह तो आगे जाय और लोग वहीं रह जायँ? कूच पर कूच चलना आरम्भ किया। अब तक जो धीरे-धीरे आगे बढ़ते थे, उसका कारण यही था कि सँदेसे आदि भेजने से ही मिरजा ठीक मार्ग पर आ जाय। ऐसा न हो कि निराश होकर घबरा जाय और अचानक तुर्किस्तान को निकल जाय। निजामउद्दीन बख्शी से कहा कि तुम बहुत जल्दी जलालाबाद जाओ और शाहजादे के लश्कर में बैठ कर वहाँ के अमीरों से परामर्श करके सारा हाल लिखो। वह गए और बहुत जल्दी लौट आए। यह समाचार लाए कि यद्यपि मिरजा जबान से कहते हैं कि हम बहुत हैं, बहुत हैं, पर उनकी दशा यही कहती है कि विजय श्रीमान् के ही चरणों में है।

जो जो भारी चीजें थीं, वह सब पेशावर में छोड़ दी गईं। सलीम को राजा भगवानदास की रक्षा में लश्कर के साथ छोड़ा। बादशाही ठाठ-बाट भी छोड़ दिया और हलके होकर जल्दी-जल्दी आगे बढ़ने के लिये घोड़ों की बागें लीं। कुछ साहसहीन वहीं रह गए और कुछ मार्ग में से लौट गए।

अब मिरजा हकीम की कहानी सुनो। उपद्रव करनेवाले उससे यही कहते जाते थे कि अकबर इधर नहीं आवेगा। और यदि आवेगा भी तो इतना पीछा नहीं करेगा। पर जब उसने देखा कि अकबर और उसके सब साथी बिना पुल के ही अटक से पार हुए और लश्कर रूपी नदी की लहरें बराबर आगे को ही बढ़ती चली आती हैं, तब उसने नगर की कुंजियाँ वहाँ के बड़े-बूढ़ों को दे दीं और बाल-बच्चों को बदख्शाँ भेज दिया। धन-सम्पत्ति के सन्दूक और आवश्यक सामग्री लेकर आप बाहर

निकल गया। एक विचार यह था कि फकीर होकर तुर्किस्तान चला जाय। दरबारी लोग उसे सलाह देते थे कि यंगश के मार्ग से फिर भारत चल कर वहाँ उपद्रव करो। या अफगानिस्तान के पहाड़ो मे सिर फोड़ते फिरो, और जैसी कि इधर की प्रथा है, लूट-मार करते रहो।

मिरजा इसी तरह आगा-पीछा कर रहा था कि इतने मे उसे समाचार मिला कि बादशाह के अमीरो मे से कोई इधर आने के लिये तैयार नही है। उपद्रवियो को मानो फिर एक दिया-सलाई मिल गई। उन्होने फिर आग सुलगाई। उस समय जो अवस्था थी, वह उसे बतलाई और कहा कि बादशाह के लश्कर मे सभी जातियो के लोग है। ईरानी, तूरानी, खुरासानी, अफगानी सभी हैं। इनमे से कोई आप पर तलवार न खींचेगा। जब सामना होगा, तब सभी लोग हम से आ मिलेगे। हिन्दू और उनकी तलवार कभी विलायती तलवार के आगे नही चल सकती और उनका जी यहाँ को सरदी और बरफ के नाम से थर्राता है। उचित यही है कि वीरो की तरह साहस करके एक युद्ध करे। यदि मैदान हाथ आ गया तो ईश्वर की कृपा ही है। और यदि कुछ भी न हुआ, तो जो मार्ग हमारे सामने उपस्थित है, उन्हे तो कोई बन्द कर ही नही सकता।

कुछ तो इन लोगो ने उसकाया और कुछ बाबरी खून मे धूआँ उठा। नवयुवक का विचार भी बदल गया। उसने कहा कि मै बिना मरे-मारे देश हाथ मे न जाने दूँगा। उसने सरदारो को यह कह कर आगे बढाया कि नाशक लश्कर समेटते चले जाओ, और जहाँ अवसर मिले, बादशाही लश्कर पर हाथ

साफ करते जाओ। अफगानिस्तान सरीखे देश में इस प्रकार लश्कर इकट्ठा करना और पहाड़ों के पीछे से शिकार मारते जाना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। वे लोग आगे चले। पीछे मिरजा ने भी साहस के झंडे पर फरहरा चढाया। बादशाही लश्कर का ताँता बँधा हुआ था। इन्होंने जहाँ पाया, पहाडियों के पीछे से निकल-निकल कर हाथ मारना आरम्भ किया, पर डाकुओं की तरह। हाँ फरीदूँखाँ ने मानसिंह के लश्कर के पिछले भाग पर अच्छा धावा किया। उसने बादशाही खजाना लूट लिया और सरदारों को पकड़ लिया। डाक-चौकी का प्रधान अधिकारी दौरा करता हुआ बादशाह के लश्कर से मानसिंह के लश्कर तक आता-जाता था। वह उस समय पहुँचा, जब कि वहीर लुट रही थी। वह उन्हीं पैरों भागा।

यह वह समय था जब कि कुँवर मानसिंह अपने साथ नवयुवक शाहजादा मुराद को लिए हुए खुर्द काबुल तक, जो काबुल से सात कोस इधर था, जा पहुँचा था। इधर बादशाह जलालाबाद से बढ़ कर सुरखाब नामक स्थान पर मानसिंह से पन्द्रह कोस इधर पहुँच चुके थे। मिरजा की दुर्दशा और अपने लश्कर के अच्छी तरह बढ़ने के समाचार बराबर चले आते थे। अचानक समाचारों का आना बिलकुल बन्द हो गया। पर डाक-चौकी के हरकारे बराबर समाचार ला रहे थे। उनसे पता लगने पर डाक के अफसर हाजी मुहम्मद अहदी ने आकर निवेदन किया कि बादशाही सेना परास्त हो गई। अफगानों ने मार्ग बन्द कर दिया है। अकबर को बड़ी चिन्ता हुई। इतने में डाक-चौकी के अफसर ने आकर बड़ी घबराहट के साथ समाचार

दिया, पर केवल इतना ही कि लडाई हुई और बादशाही लश्कर हार गया। तुरन्त मन्त्रणा के लिये सभा बैठी। पहले इस विषय पर वाद-विवाद हुआ कि समाचारो का आना क्यो बन्द है। इसी मे बात-चीत बहुत बढ गई। अकबर ने कहा कि यदि हमारा लश्कर हार जाता तो वह इतना बडा था और अन्तर भी इतना थोडा, केवल पन्द्रह कोस का था कि उनमे से सैंकडो लूटे-मारे हुए लोग अब तक यहाँ आ जाते। एक ही आदमी आया और फिर समाचारो का आना बिलकुल बन्द हो गया। इसका क्या अर्थ है? यह समाचार ठीक नहीं है। विचार करने के योग्य दूसरी बात यह है कि अब क्या करना चाहिए। कुछ लोगो ने कहा कि उलटे पैरो लौट जाना चाहिए। जो बादशाही लश्कर पीछे आ रहा है, उसे और पूरी सामग्री साथ लेकर यहाँ आना चाहिए और इसके लिये उपद्रवियो को पूरा-पूरा दंड देना चाहिए। इस पर यह आपत्ति हुई कि यदि बादशाह ने एक पैर भी पीछे हटाया तो फिर लाहौर तक ठहरने के लिये जगह न मिलेगी। सारी हवा बिगड जायगी। मिरजा का साहस एक से हजार हो जायगा। हमारे लश्कर के लोगो के जी छोटे हो जायँगे। अफगानो के कुत्ते और बिल्लियाँ शेर बन कर तुम्हारे सिपाहियो को फाड खायँगे। देश अफगानी है। देखो, हमारी शक्ति के तीन टुकडे हो गए। एक सेना अटक के किनारे पडी है। दूसरी पेशावर मे है और तीसरी खुर्द काबुल मे पहुँच चुकी है। तीन जगह लडाई आ पडी। एक सम्मति यह भी थी कि यहीं ठहरना चाहिए और जो लश्कर पीछे आ रहा है, उसकी प्रतीक्षा करनी चाहिए। इसमे यह झगडा निकला कि

इस प्रकार यहाँ चुपचाप बैठना भी पीछे हटने से कम नहीं है। यदि बादशाह कुछ सरदारों के साथ बीच में घिर गए तो भी कठिनता होगी। बादशाह का मिजाज पहचाननेवाले बोल उठे कि ईश्वर पर भरोसा करके आगे बढ़े चलो। यद्यपि बादशाह के साथ जान निछावर करनेवालों की संख्या कम है, तो भी उनका बल अधिक है; क्योंकि वे अनुभवी योद्धा और जान हथेली पर रख कर लड़नेवाले हैं और साथ ही सच्चे हृदय से स्वामी पर निष्ठा रखनेवाले हैं। यदि मिरज़ा हकीम ने लश्कर को रोका भी होगा, तो बादशाही धौंसे का शब्द सुनते ही छिन्न-भिन्न होकर हट जायगा। यही सम्मति ठीक ठहरी और सब लोग आगे बढ़े।

समाचारों के बन्द होने का कारण केवल यही था कि मिरज़ा का मामा फरीदूँ उपद्रव करता हुआ पहाड़ के पीछे-पीछे चला आता था। उसने अपने बाहुओं में इतना बल नहीं देखा कि इन शेरों के साथ सामने होकर लड़े। इसलिये वह सेना के पीछे से आकर चँदावल पर गिरा। भला वहीर की बिसात ही क्या! सब लोग भागने लगे। साहसी सैनिक लौटकर पीछे आए। पर लूटने के लिये आनेवाले अफगान भागने मे ही विजय से बढ़कर सफलता समझते थे। वे पहाड़ों में भाग गए। बादशाह ने कई लाख का खजाना भेजा था जो कलीचखाँ के संरक्षण मे था, और वह भी सेना के पिछले भाग मे था। इस भागा-भाग मे शत्रुओं का हाथ उस पर पड़ गया। वे लोग खजाने के ऊँट भी घसीट ले गए। इसी अवस्था मे डाक-चौकी का अफसर वहाँ जा पहुँचा। वहीर को भागते हुए देखकर वह पीछे हटा और बादशाह के पास समाचार ले गया। साहसी बादशाह अपने

अमीरो को साथ लिए हुए वागें उठाए चला जाता था। हर कदम पर साहस उसके घोडे को चावुक और हौसला एड़ लगाता चलता था। वादशाह उस समय सुरखाव और जगदलक नामक स्थानो के वीच मे था। वहीं विजय का सु-समाचार पहुँचा। वादशाह ने तुरन्त घोडे पर से उतरकर जमीन पर सिर रख दिया और देर तक ईश्वर को धन्यवाद देने का आनन्द लूटता रहा।

अव युद्ध-क्षेत्र की अवस्था भी सुनने के योग्य है। यद्यपि वादशाही खजाना लूटने के कारण मिरजा का अभिमान वढ गया था, पर उसका दिल घटा जाता था। वह दिन की लडाई से घवरा गया था और रात के समय छापा मारना चाहता था। मानसिह सेना लिए तैयार था और ईश्वर से मनाता था कि किसी प्रकार शत्रु मैदान मे सामने आवे। उधर वह साहस-हीन और कायर पैदल सैनिक एकत्र किए जाता था और मेल-मिलाप के उद्देश्य से लश्कर के अमीरो के नाम चिट्ठियो के चूहे दौडाता था। वह चाहता था कि वादशाह के मन मे इन अमीरो की ओर से कुछ सन्देह और खुटका उत्पन्न हो जाय। वादशाही सेनापति शाहजादा मुराद को अपने साथ लिए हुए खुर्द कावुल नामक स्थान पर पडा था। मिरजा सामने पहाड पर था। एक रात को वहुत चहल-पहल दिखाई पडी। रात को सामने वहुत से स्थानो पर आग जलती हुई दिखाई दी। भारतीय सैनिक देखकर चकित रह गए। सोचने लगे कि यह शव-वरात की रात है या दीवाली की धूम-धाम है। उन्होने अपने सव प्रवन्ध ऐसे पक्के कर लिए कि यदि शत्रु रात के समय छापा मारे तो पछताकर पीछे हटे। प्रात काल के प्रकाश ने आकर युद्ध का सँदेसा पहुचाया। मिरजा

एक घाटी से सेना लेकर निकला और युद्ध आरम्भ हुआ। नवयुवक सेनापति एक पहाड़ी पर खड़ा हुआ पछता रहा था कि हाय, यहाँ मैदान न हुआ। हरावल ने बढ़कर टक्कर मारी। बहुत कुछ हत्या और रक्तपात हुआ। मिरजा भी खूब जान तोड़कर लड़ा। वह भी समझ चुका था कि यदि मैं दाल खाने-वाले भारतवासियो के सामने से भागा तो काला मुँह लेकर कहाँ जाऊँगा। उधर मानसिंह को भी राजपूत के नाम की लज्जा थी। खूब बढ़ बढ़कर तलवारें मारी और ऐसी वीरता दिखलाई कि अन्त में दाल ने गोश्त को दबा लिया। मिरजा मैदान छोड़कर भाग गए। इस युद्ध मे हरावल के साहस ने ऐसा काम किया कि लश्कर के और लोगो की वीरता दिखलाने की कामना मन की मन मे ही रह गई।

दूसरे दिन प्रात'काल का समय था। मिरजा का मामा फरीदूँ खाँ फिर सेना लेकर प्रकट हुआ। मोहरे पर मानसिंह की ही सेना थी। म्यान से तलवारें निकलीं और कमानो में से तीर चले। बन्दूको ने आग उगली, पर तोपें अपना हौसला मन मे ही लिए खड़ी थीं, क्योंकि वह प्रदेश पहाड़ी था। जगह-जगह लड़ाई छिड़ गई। काबुली वीर यद्यपि शेर थे, पर ये लोग भी कोई दाल-भात का कौर तो थे ही नहीं कि वे इनको निगल जाते। रेल-पेल हो रही थी। कहीं ये लोग चढ़ जाते थे, कहीं वे लोग बढ़ आते थे। मानसिंह एक पहाड़ी पर खड़ा देख रहा था। जिधर बढ़ने का अवसर देखता था, उधर सेना को आगे बढ़ाता था। जिधर जगह नहीं पाता था, उधर से हटा लेता था। कठिनता यह थी कि वहाँ की जमीन ऊबड़-खाबड़ थी, जिसमे

कोई ठीक और निश्चित व्यवस्था नहीं होने पाती थी। अचानक शत्रु जोरों से बढ़ आया। हरावल की सेना अपनी छाती को ढाल बनाकर आगे हुई। पर लड़ाई बहुत ही पास और सटकर हो रही थी। कुछ लोग तो प्राण देकर धन्य हुए और कुछ लोगों ने पीछे हट जाना ही उचित समझा। सेनापति ताड़ गया कि मेरी सेना ने रंग बदला। वह तड़प उठा। अपने भाई को उसने अपने पास से अलग किया। तलवार चलानेवाले सूरमा और सरदार राजपूत उसके आस-पास जमे हुए थे। उन्हें भी आज्ञा दी और अवसर देख देखकर सहायता के लिये सेनाएँ भेजना आरम्भ किया। गज-नाले भरी तैयार थीं। हाथियों को रेला और तोपों को महताब दिखाई जिससे जंगल गूँज उठा और पहाड़ धूआँधार हो गए। वे हाथी खास बादशाह के साथ रहनेवालों में से थे। शेरों के शिकार के लिये सधे हुए थे। वे बादलों की तरह पहाड़ियों पर उड़ने लगे। यह विपत्ति देखकर अफगानों के बढ़े हुए दिल पीछे हटे और थोड़ी ही देर में उनके पैर उखड़ गए। निशानची ने निशान फेंका और सब लोग मैदान छोड़कर भाग गए। मिरज़ा ने चाहा था कि यदि सैनिक लोग अपने प्राणों को प्रिय समझकर पीछे हट गए हैं, तो मैं ही प्रतिष्ठा और सम्मान पर अपने प्राण निछावर कर दूँ। पर थोड़े से शुभचिन्तकों ने आकर उसे घेर लिया। मिरज़ा ने झुँझलाकर उन्हें पीछे हटा दिया और आगे बढ़कर आक्रमण करना चाहा। पर मुहम्मद अली उसके घोड़े की बाग पकड़कर घोड़े से लिपट गया और बोला कि पहले मेरे प्राण ले लो। फिर तुम्हें अधिकार है, जो चाहो सो करो। तात्पर्य यह कि इस प्रकार मिरज़ा भी वहाँ से भाग गए।

सूरमा राजपूतों ने बड़ा साका किया। वीरो ने बहुत अच्छे-अच्छे काम करके दिखलाए। भागते हुए शत्रुओ के पीछे घोड़े उठाए। तलवारें खींच ली और दूर तक मारते और ललकारते हुए चले गए। फिर भी जैसा पीछा करना चाहिए था और जैसा पीछा वे करना चाहते थे, वैसा न हो सका। उनके मन का हौसला मन मे ही रह गया। वे लोग यह भी सोचते थे कि कहीं ऐसा न हो कि मिरजा किसी टीले के पीछे से चक्कर मार कर दूसरी ओर निकल आवे और सेना के पिछले भाग पर आक्रमण कर बैठे। कुछ बहादुर घोड़े बढाते हुए ऐसे गए कि कई कोस आगे बढ़कर उन्होंने मिरजा को जा लिया। उस समय उसने अपने प्राण बचाने मे ही सब से बड़ी जीत समझी। सेनापति विजय के धौंसे बजाता हुआ काबुल जा पहुँचा। अकबर भी पीछे-पीछे चला आता था। उस दिन बुतखाक नामक स्थान पर उसका डेरा था। मानसिंह सरदारो को साथ लिए हुए पहुँचे और उन्होंने सफल होकर विजय की बधाई दी। बादशाह ने काबुल मे पहुँच कर फिर वह देश मिरजा हकीम को प्रदान किया और पेशावर तथा सीमा प्रान्त का प्रबन्ध और अधिकार कुँवर मानसिंह को सौंप दिया और अटक के किनारे किला बनवाया। उस नवयुवक हिन्दू राजा ने अफगानों के साथ जो अच्छा मेल-जोल पैदा किया, इसके लिये उसकी योग्यता की प्रशंसा न तो जबान से हो सकती है और न कलम से। सीमा प्रान्त के अफगानो का भी उन्होंने ऐसा प्रबन्ध किया कि विद्रोह की गरदनें ढीली हो गई।

सन् ९९२ हि० में उस समय की और भावी बातों पर अच्छी तरह विचार करके यह परामर्श हुआ कि कछवाहा वंश के

साथ साम्राज्य के उत्तराधिकारी का सम्बन्ध अधिक और दृढ कर दिया जाय। राजा मानसिंह की बहन से विवाह निश्चित हुआ। इस विवाह मे जो धूम-धाम और सजावट आदि हुई थी, उसका विवरण कहीं लिखा हुआ नहीं है। पर यदि यह विवरण कहीं लिखा हुआ होता तो उसकी एक पुस्तक ही बन जाती। मुल्ला साहब ने सचित्र रूप मे लिखा है कि सलीम की अवस्था सोलह बरस की थी। बादशाह दरबार के अमीरो को साथ लेकर आप ब्याहने चढे। विवाह की मजलिस मे काजी, मुफ्ती और अनेक मुसलमान सज्जन उपस्थित हुए। निकाह पढ़ा गया, दो करोड तिंगे का महर बाधा (अर्थात् दो करोड तिंगे दुलहिन को उपहार और स्त्री-धन के रूप मे दिए गए)। फेरे भी हुए। हिंदुओ की हवन आदि क्रियाएँ भी हुई। दुलहिन के घर से दुलहे के घर तक रास्ते भर पालकी पर से अशरफियाँ निछावर करते हुए लाए। लडकी के पिता राजा भगवानदास ने कई तबेले, घोडे और सौ हाथी दिए। साथ मे खुतनी हब्शी चरकस और भारतीय सैकडो दास और दासियाँ दीं। दुलहिन के गहनो का तो कहना ही क्या है। बरतन तक सोने-चाँदी के और जड़ाऊ थे। अनेक प्रकार के वस्त्रो के सैकडो सन्दूक भरे हुए थे। दहेज मे फर्श आदि और दूसरे पदार्थ भी इतने थे कि न उनकी गिनती थी और न सीमा। अमीरो मे से भी हर एक को उसकी योग्यता तथा मर्यादा आदि के अनुसार खिलअते और ईरानी, तुरकी, ताजी आदि घोडे दिए, जिन पर सुनहली और रुपहली जीने और साज आदि थे।

काबुल से समाचार आ रहे थे कि मुहम्मद हकीम मिरजा

को मद्य-पान चौपट कर रहा है। सन् ९९४ हि० में इसी मद्य-पान ने उसके प्राण ही ले लिए। अकबर ने कुँवर मानसिंह को इसी लिये पहले से वहाँ की दीवार के नीचे ही नियुक्त कर रखा था। आज्ञा पहुँची कि तुरन्त सेना लेकर काबुल मे जा बैठो। यह भी पता चल गया था कि मिरजा हकीम के मामा फरीदूँखाँ और जो दूसरे दरबारी तथा सेवक उसके पास रहते थे, वही उसे अधिक बहकाया करते थे। अब उनमें से कुछ लोगो को तो यह भय हुआ कि ईश्वर जाने, अकबर के दरबार से हमारे साथ कैसा व्यवहार हो; और कुछ लोगो मे आपस मे ही लड़ाई-झगड़े होने लग गए थे। इसलिये वे लोग मिरजा के बच्चो को अपने साथ लेकर तुर्किस्तान मे अब्दुल्लाखाँ उजबक के पास जाने को तैयार हो गए। अकबर ने अपने दो पुराने और ऐसे सेवकों को भेजा जो पीढ़ियों से इस वंश की सेवा कर रहे थे। आज्ञा-पत्र भेजकर उन सब लोगों को दिलासे दिए और पीछे-पीछे आप भी पंजाब की ओर आगे बढा। उधर मानसिंह के अटक पार होते ही दल के दल अफगान सलाम करने के लिये उसकी सेवा मे उपस्थित होने लगे। उसने काबुल पहुँच कर शासन और व्यवस्था की वह योग्यता दिखलाई, जो उसे अपने पूर्वजों से सैकड़ो वर्ष के शासन से उत्तराधिकार में मिली थी। उसके मेल-मिलाप, अनुग्रह और सद्व्यवहार आदि ने काबुलवालों के हृदय को अपने हाथ मे कर लिया। दो बरस पहले जो सहायक थे, उन्होंने उसका समर्थन किया। मिरजा ने मरने से पहले अकबर के पास एक निवेदन-पत्र भेजा था, जिसमे अपने किए हुए अपराधो के लिये क्षमा माँगी थी। साथ ही अपने

दोनों बच्चों, बहन बख्तउन्निसा और उसके लड़के मिरजा वाली को दरबार में भेजने के विचार से जलालाबाद भेज दिया था। उनमें से मिरजा का अनाथ लडका अफरासियाब ग्यारह बरस का, कैकबाद चार बरस का और उसका भाञ्जा वाली भी छोटी ही अवस्था का था। उपद्रव करनेवाले फरीदूँखाँ आदि अपने दुष्ट विचारों में ही भटक रहे थे। मानसिंह ने मेल-मिलाप की बातें करके सब लोगों को ठीक मार्ग पर लाकर नीति और चातुरी के बन्धन में बाँध लिया। अपने लड़के जगतसिंह को वहाँ छोड़ा और आप उन सब लोगों को लेकर चल पडा। रावलपिंडी पहुँच कर अकबर के सिंहासन का चुम्बन किया और सबको सेवा में उपस्थित किया। अकबर ने बहुत उदारतापूर्वक सब व्यवहार किया। ६६ हजार रुपए पारितोषिक में दिए। सब की अवस्था और मर्यादा के अनुसार जागीरें और वृत्तियाँ आदि नियत करके प्रेम का बीज बोया। उदार-हृदय अकबर ने सीमा प्रान्त के यूसुफजई आदि इलाके कुँवर को दे दिए और काबुल में राजा भगवानदास को बैठाया। वहाँ राजा को पुराने बल्कि वंशगत रोग ने पागल कर दिया। कुँवर ने तुरन्त जाकर राजा का स्थान लिया और वहाँ राज्य करना आरम्भ किया। कुँवर ने अपने इस शासन में यह काम किया कि यूसुफ-जई के पहाडी इलाके में अफरीदी आदि जो अफगानी जत्थे उपद्रव की आग जला रहे थे, उन्हें देश से निकाल दिया। इस बीच में अकबर अटक के किनारे-किनारे इधर-उधर घूमता फिरता था। कभी शिकार खेलता था और कभी अटक के किले के कारखाने में तोपें ढलने का तमाशा देखता था और उसमें सुन्दर

सुन्दर आविष्कार करता था। ये खेल-तमाशे भी नीति से खाली नहीं रहे। यूसुफजई के सरदारों की व्यवस्था जम गई। काबुल का प्रबन्ध हो गया। सब अदूरदर्शी अफगान अपने-अपने स्थान पर बैठ गए। देश का स्वामी स्वयं उपस्थित है। सब से बड़ी बात यह हुई कि जो अब्दुल्लाखाँ उजबक यह समझ रहा था कि काबुल का शिकार अब मैंने मारा, वह अकबर की इन सफलताओं और सीमा पर होनेवाली कार्रवाइयों से डर गया। उसने सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि मेरे पैतृक देश पर ही कोई आपत्ति आवे। इसलिये उसने राजोचित भेंट आदि के साथ अपना राजदूत भेजा और उसके हाथ सन्धिपत्र भी भेज दिया।

सन् ९९५ हि० मे मानसिंह की बहन के घर लड़का पैदा हुआ। बादशाह ने उसका नाम खुसरो रखा। आजाद की बुद्धि तो संसार की दुष्टता और उपद्रव की वृत्ति देखकर चकरा रही है। इसी लाहौर नगर मे वह बालक उत्पन्न हुआ था। यहीं छठी की खुशियाँ मनाई गई थीं और बधाइयाँ बजी थी। यहीं बालक नवयुवक होकर पिता से विद्रोही हुआ और पकड़ा जाकर इसी लाहौर नगर मे आया। जहाँगीरी नियमों के अनुसार गले मे तलवार लटक रही थी। सिर झुकाए हुए था और थर-थर काँपता था। दरबार में अपने पिता के सामने खड़ा था। आज न बाप हैं और न बेटा। सब बाते कहानी हो गईं।

जिस समय अकबर की चातुरी और ईश्वरदत्त बुद्धिमत्ता का वर्णन हो, उस समय मानसिंह की योग्यता को भी न भूलना चाहिए। वह नवयुवक था। अवस्था उसकी थोड़ी थी और काबुल जैसा देश था, जहाँ उद्दंड मुल्लाओं और जंगली मुसलमानों

का सब प्रकार से पूरा-पूरा अधिकार था और मानसिंह उन लोगों पर शासन करता था। । वह बरस भर से अधिक वहाँ रहा और बहुत तपाक से शासन करता था। केवल राजपूत सरदार और राजपूत सेना ही उसके अधिकार में नहीं थी, बल्कि हजारों तुर्क, अफगानी और भारतीय उसके साथ थे। क्या गरमी और क्या जाडा, बरफीले पहाड पर शेर की तरह दौडता फिरता था। जहाँ कोई बात बिगडती थी, तुरन्त उसका सुधार करता था।

सन ९९५ हि० में राजा भगवानदास को बादशाह के अन्त पुर और महलों का प्रबन्ध सौंपा गया। और यह सेवा प्राय इन्हीं के सपुर्द रहती थी। यात्रा में अन्त पुर की सवारियों का प्रबन्ध सदा यही किया करते थे। मरियम मकानी की सवारी की व्यवस्था भी यही करते थे। अफगानिस्तान से शिकायतें पहुँचीं कि राजपूत लोग इस देश के निवासियों पर अत्याचार करते हैं। इसलिये कुँवर मानसिंह को बिहार का हाकिम बनाकर भेज दिया। बगाल में अफगानों की कमीनी और उद्दड खुरचन बाकी थी। जिन दिनों मुगलों ने विद्रोह किया था, उन दिनों वे भी निकम्मे नहीं बैठे थे। उन्होंने कत्तू जाट को अपना सरदार बनाया और सारे उडीसा देश तथा दामोदर नद के तट के सब नगरों पर अधिकार कर लिया। कुँवर मानसिंह ने वहाँ पहुँचकर प्रबन्ध करना आरम्भ किया। कई बरस पहले कुछ नमक-हराम अमीरों ने बगाल देश में मुसलमान विद्वानों और शेखों से फतवा या धार्मिक व्यवस्था लिखवाकर लोगों में यह प्रसिद्ध कर दिया था कि बादशाह धर्मभ्रष्ट हो गया है, और उन्होंने तलवारें खींचकर जगह-जगह विद्रोह के झंडे

खड़े कर दिए थे। अब उनकी गरदनें सैनिक रक्तपात की सहायता से तोड़ी गई। पर उनमें से कुछ लोग अब भी ऐसे बचे हुए थे जो जमींदारो की छाया मे सिर छिपाए हुए बैठे थे। वे लोग जब अवसर पाते थे, तब उपद्रव करते थे। मानसिंह ने उनके मार्ग बन्द किए। राजा पूरनमल कन्धौरिया एक बहुत बड़ा और विशाल किला बनाकर उसमे बैठे हुए थे और समझते थे कि हम लंका के कोट मे बैठे हैं। उन्हे तलवार के घाट पर उतारकर सीधा किया। लूट-मार मे बहुत से खजाने और मालखाने हाथ आए। अपने भाई के लिये उसकी लड़की ली। सन्धि के समय भेंट और उपहार मे तथा बिदाई के समय दहेज मे सब कुछ पाया। संग्राम को लोहे की चोट से दबाया। आनन्द चरदा पर भी चढ गया। उससे भी अधीनता स्वीकृत करा के बहुत से उपहार आदि लिए। अनेक अद्भुत और सुन्दर पदार्थों के साथ ५४ हाथी दरबार में भेजे।

सन् ९९७ हि० मे अकबर का मन काश्मीर की सैर की हवा मे लहलहाया। राजा भगवानदास को लाहौर का प्रबन्ध सौंप कर प्रस्थान किया। यहाँ राजा टोडरमल का स्वर्गवास हुआ। राजा भगवानदास बादशाह को पहले पड़ाव तक पहुँचाने के लिये गए। आते ही पेट मे ऐसा दरद होने लगा कि उसने उन्हे लेटा दिया। किसी चिकित्सा से कोई लाभ न हुआ। पाँचवे दिन उन्होंने भी इस संसार से प्रस्थान किया। शेख अब्बुल फजल उनके सम्बन्ध मे अपनी यह सम्मति लिखते हैं कि वह सत्यता और सहन-शीलता से सम्पन्न था। बादशाह काश्मीर से लौट कर काबुल की ओर चले थे। मार्ग मे उन्हे यह समाचार

मिला। बहुत दुःख किया। कुँवर मानसिंह को राजा की उपाधि दी, खासे की खिलअत दी, जरी के जीन का घोड़ा दिया और पंज-हजारी मन्सब देकर उनका सम्मान बढ़ाया।

बिहार का समुचित प्रबन्ध करके तो मानसिंह का चित्त शान्त और सन्तुष्ट हुआ, पर अकबर के सेनापति से भला चुप-चाप कैसे बैठा जाता! सन् ९९७ हि० में उड़ीसा की ओर घोड़े उठाए। यह देश बंगाल की सीमा के उस पार स्थित है। पहले प्रतापदेव वहाँ का राजा था। उसके अयोग्य पुत्र नृसिंह-देव ने पिता को विष देकर मार डाला और बहुत जल्दी मार डाला। उस समय बुद्धिमत्ता और धर्म का पुतला सुलैमान किरारानी बंगाल में शासन करता था। उसने मुफ्त में उक्त देश ले लिया। पर समय ने थोड़े ही दिनों बाद उसका भी पृष्ठ उलट दिया।

उड़ीसा कतलूखाँ आदि अफगानों के हाथ में रहा। उस समय मानसिंह ने विजय के दंड पर फरहरा चढ़ाया। बरसात दल-बादल के लश्कर में बिजली की झंडियाँ चमका रही थीं। पानी बरस रहे थे। नदियाँ चढ़ी हुई थीं। उधर से कतलू आया और पचीस कोस के अन्तर पर उसने डेरे डालकर युद्ध-क्षेत्र में आने के लिये निमन्त्रित किया। मानसिंह ने उसका सामना करने के लिये अपने बड़े लड़के को भेजा। वह अपने पिता का सुयोग्य पुत्र था। पर अभी युवावस्था का मसाला तेज था। ऐसा गरम हो गया कि व्यवस्था का सूत्र उसके हाथ से निकल गया और विजय ने पराजय का रूप धारण किया। सेनापति ने स्वयं आगे बढ़कर बिगड़ा हुआ काम सँभाला। सरदारों को धैर्य दिलाकर

और फिर से सेना को समेट कर सामने किया। ईश्वर की ओर से सहायता यह हुई कि कतलूखाँ मर गया। अफगानों मे फूट पड़ गई। बहुत से सरदार शत्रु पक्ष से टूटकर इधर आ मिले। जो लोग बाकी बच रहे थे, वे इस शर्त्त पर सन्धि करने के लिये उत्सुक हुए कि अकबर के नाम का खुतबा पढ़ा जायगा। हम लोग प्रति वर्ष राज-कर और भेंट सेवा में भेजा करेंगे। जब आज्ञा होगी, तब सेवा करने के लिये उपस्थित हुआ करेंगे। सेनापति ने भी देखा कि इस समय इस प्रकार सन्धि कर लेना ही उचित है। १५० हाथी और बहुत से बहुमूल्य उपहार आदि लेकर दरबार मे भेज दिए।

जब तक कतलू का वकील और प्रतिनिधि ईसा जीता रहा, तब तक सन्धि की सब शर्त्तों का ठीक तरह से पालन होता रहा। उसके कुछ ही वर्षों बाद नए नवयुवक अफगानो के साहस ने जोर किया। उन्होंने पहले जगन्नाथ का इलाका मारा। फिर बादशाही देश पर हाथ डालने लगे। मानसिंह ईश्वर से मना ही रहा था कि सन्धि की शर्त्तें तोड़ने के लिये कोई बहाना हाथ आवे। तुरन्त बहुत बड़ी सेना लेकर चला। स्वयं नदी के मार्ग से आगे बढ़ा और सरदारो को चारखंड के मार्ग से बढ़ाया। उन्होंने शत्रु के इलाके मे पहुँचकर विजय के झंडे फहरा दिए। यद्यपि अफगान लोग सन्धि की झंडियाँ लहरा रहे थे, पर अब यह क्यों सुनने लगा था। इसने युद्ध के लिये निमन्त्रित किया। उन लोगो ने भी विवश हो कर हाथ-पैर सँभाले। बुड्ढे और जवान बड़े-बड़े पठान एकत्र हुए। पास-पड़ोस के राजाओं ने भी उनका साथ दिया। बहुत बड़ी लड़ाई आ पडी। वीरों ने बहुत साहस के और

अच्छे-अच्छे काम कर दिखलाए। बड़े-बड़े रण पड़े। उक्त देश प्रकृति का हाथी-खाना है। युद्ध-क्षेत्र मे हाथी मेढो की तरह लडते और दौड़ते फिरते थे, और अकबर की सेना के बहादुर उन पर तीर चला कर उन्हे मिट्टी का ढेर बनाते थे। अन्त मे सूरमा सेनापति ने विजय पाई। देश को बढ़ाते-बढाते समुद्र तक पहुँचा दिया। नगर-नगर मे अकबर के नाम का खुतबा पढा गया। जगन्नाथजी ने भी अकबर बादशाह पर दया की कि अपना मन्दिर देश समेत दे दिया। मानसिंह सुन्दर वन के पूर्वी भागो के फानी आदि स्थानो मे फैलता जाता था। उचित यह जान पडा कि इधर एक ऐसा नगर बसाया जाय जहाँ एक बडा हाकिम रहा करे और जहाँ से चारो ओर सहायता पहुँच सके। जल की ओर से होनेवाले आक्रमण से भी वह रक्षित रहे और दुष्ट विचारवाले शत्रुओ की छाती पर पत्थर रहे। बहुत कुछ ढूँढ़ने, देखने और परामर्श आदि करने पर यह निश्चय हुआ कि आक महल नामक स्थान पर ऐसा नगर बसाया जाय। शुभ मुहूर्त्त देख कर नींव का पत्थर रखा गया और उसका नाम अकबर नगर पडा। आज-कल यही राजमहल के नाम से प्रसिद्ध है। शेर शाह ने अपने घूमने-फिरने और मनोविनोद के लिये यह सुन्दर स्थान चुनकर इसे प्रसिद्ध किया था। अब भी जब कोई यात्री उस ओर जा निकलता है, तो बकावली और बदरे मुनीर की कल्पित कहानियाँ मिटे हुए चित्रो की तरह पृथ्वी के पृष्ठ पर दिखाई पडती है। इसी स्थान पर एक बहुत बडा किला बनाकर उसका नाम सलीम नगर रखा। शेरपुर का किला और अकबरनगर का मोरचा ऊँचे-ऊँचे भवनो, सजे हुए मकानो और चलते हुए बाजारो के

कारण थोड़े ही दिनो में इन्द्रजाल की सी अवस्था दिखलाने लगा। मानसिंह के धौंसे का शब्द ब्रह्मपुत्र के किनारे-किनारे समस्त पूर्वी बंगाल में गूँजने लगा।

राजा मानसिंह ने जो अनेक बड़े-बड़े काम किए थे और बड़े-बडे साहस दिखलाए थे, वे लेख की कलम को सिर नीचा नहीं करने देते। पर अकबर के गुण भी इतने उच्च कोटि के हैं कि उनका वर्णन किए बिना रहा नहीं जाता। उड़ीसा देश मे राजा रामचन्द्र नामक एक शासक था। वह स्वयं तो मानसिंह के दरबार मे नहीं आया, हाँ उसने अपने लड़के को भेज दिया। राजा ने कहा कि लड़के का आना ठीक नहीं है। राजा रामचन्द्र को स्वयं यहाँ आना चाहिए। कतलूवाले युद्ध में राजा इनकी सहायता भी कर चुका था। पर फिर भी उसे आने का साहस नहीं होता था। वह सोचता था कि ये राजनीतिक मामले हैं। ईश्वर जाने वहाँ जाने पर क्या हो। मानसिंह ने उसकी की हुई सब सेवाओं को उठाकर ताक पर रख दिया और सेना साथ देकर अपने लड़के को उस पर चढ़ाई करने के लिये भेज दिया। उस नवयुवक ने जाते ही उसके इलाके की मिट्टी उड़ा दी। कई किले जीत लिए। राजा किले मे बन्द हो गया और चारों ओर घेरा पड़ गया। बादशाह के पास भी यह समाचार पहुँचा। उसने मानसिंह के नाम आज्ञापत्र भेजा कि यदि राजा रामचन्द्र इस समय नहीं आए हैं, तो फिर आ जायँगे। ऐसा कदापि नहीं होना चाहिए। देश और वैभव की उन्नति इस प्रकार की बातो से नहीं होती। जल्दी घेरा उठा लो; क्योंकि इस प्रकार घेरा डालना औचित्य के नियमो के विरुद्ध है। मानसिंह ने तुरन्त बादशाह की आज्ञा का

पालन किया और अपने लड़के को वापस बुला लिया। सन १००१ हि० में बंगाल और उड़ीसा को सब प्रकार के उपद्रवों और बखेड़ों आदि से रहित करके बादशाह के आज्ञानुसार दरबार में उपस्थित हुआ। उस देश के कई प्रसिद्ध राजाओं और सरदारों को भी अपने साथ दरबार में लेता गया। उन्हें भी बादशाह की सेवा में उपस्थित कराया और बादशाह की राज्यश्री के मस्तक पर ईश्वरीय प्रकाश का तिलक लगाया। इतिहास-लेखकों ने बंगाल को उपद्रवों आदि से रहित करने का श्रेय इन्हीं को दिया है।

यद्यपि उस समय जहाँगीर का लड़का खुसरो बहुत ही छोटा था, पर फिर भी सन १००२ हि० में वार्षिक जशन के अवसर पर उसे पाँच-हजारी मन्सब देकर उड़ीसा देश जागीर में दे दिया। कुछ राजपूत सरदारों के अधिकार भी उसमें सम्मिलित कर दिए और राजा मानसिंह को उसके गुरु और शिक्षक होने का सम्मान प्रदान किया। उसकी सरकार का प्रबन्ध भी राजा मानसिंह को ही सौंपा गया। राजा को बंगाल देश देकर उधर भेज दिया और उसी देश पर उसका वेतन मुजरा कर दिया। नवयुवक जगतसिंह अब इस योग्य हो गया था कि स्वयं ही अकेला बादशाही सेवाएँ कर सके।

सन १००७ हि० में कूचबिहार के राजा ने सरस्मा सेनापति के दरबार में अभिवादन करके अकबर की अधीनता स्वीकृत की। इस देश की लम्बाई सौ कोस है और चौड़ाई में यह चालिस से सौ कोस के बीच में फैलता और सिमटता चला जाता है। यहाँ के राजा के यहाँ चार लाख सवार, दो लाख पैदल, सात सौ हाथी और एक हजार सैनिक नावें सदा सेवा

और जान निछावर करने के लिये उपस्थित रहती थी। यद्यपि सन् १००५ हि० मे मानसिंह के लड़के जगतसिंह को पंजाब के पहाडी प्रदेशो का प्रबन्ध सौंपा गया, पर फिर भी मानसिंह के लिये यह वर्ष बहुत ही खराब और मनहूस हुआ।

मानसिंह के लड़के हिम्मतसिंह को पहले तो मिचली आने लगी और फिर मिचली से उसे दस्त आने लगे, और इन दस्तों के कारण उसकी बुरी दशा हो गई और अन्त मे वह मर भी गया। हिचकी लग गई थी और उसी में प्राण निकल गए। शेख अब्बुलफज्जल कहते हैं कि वह वीर और साहसी था। प्रबन्ध और नेतृत्व के उसमे स्वाभाविक गुण थे। समय और अवसर पर वह चूकता नहीं था। उसके मरने से सारी कछवाहा जाति मे हाहाकार मच गया था। बादशाह की सहानुभूति ने सब के हृदय के घावों पर मरहम रखा। सब लोगों को धैर्य हो गया।

इसी सन मे ईसाखाँ अफगान ने विद्रोह किया। मानसिंह ने अपने लड़के दुर्जनसिंह को सेना देकर भेजा। सरदारों में से एक सरदार नमक-हराम था जो शत्रु-पक्ष से मिला हुआ था। वह उधर समाचार पहुँचा रहा था। एक जगह पर ये लोग बेखबर थे और शत्रु इन पर आ पड़ा। घोर युद्ध हुआ। दुर्जनसिंह मारा गया। और भी बहुत से लोगों के प्राण गए। सब खजाने और मालखाने लुट गए। पर पीछे से ईसाखाँ अपने किए पर पछताया। उसने जो कुछ माल असबाब लिया था, वह सब बहुत कुछ पश्चात्ताप और क्षमा-प्रार्थना आदि करके लौटा दिया। हद है कि बहन भी दे दी। हाय, और सब कुछ तो आ गया, पर दुर्जनसिंह कहाँ से आवें।

सन १००७ हि० में मानसिंह का प्रताप फिर नहूसत की काली चादर ओढ़कर निकला। अवस्था यह हुई कि अकबर को जिस प्रकार समरकन्द और बुखारा लेने की कामना थी, उसी प्रकार मेवाड़ के राणा से अधीनता स्वीकृत कराने की भी अभिलाषा थी। इसलिये जब तूरान का बादशाह अब्दुल्लाखाँ उजबक मर गया, तब अकबर ने विचारों के बड़े बड़े मनसूबे बाँधे और शतरंज पर मोहरे फैलाए। विचार यह था कि उधर के मनसूबे पूरे करके और विजय प्राप्त करके पहले निश्चिन्त हो लिया जाय और तब पैतृक देश पर चढ़ाई की जाय। शाहजादा दानियाल, अब्दुल रहीम खानखानाँ और शेख अबुलफजल को दक्खिन की चढ़ाई पर भेजा हुआ था और उन लोगों के पीछे पीछे आप था। जहाँगीर को राणा पर चढ़ाई करने के लिये भेज दिया। मानसिंह को सेनापति बनाकर पुराने-पुराने अमीरों के साथ उसको सहायता के लिये नियुक्त कर दिया। बंगाल में उसकी जो जागीर थी, वह उसके उत्तराधिकारी जगतसिंह को प्रदान की। नवयुवक कुँवर ने बहुत प्रसन्न होकर वहाँ के लिये प्रस्थान किया। वह आगरे पहुँच कर आगे बढ़ने की सब व्यवस्था कर ही रहा था कि अचानक जगतसिंह की मृत्यु हो गई। सारी कछवाहा जाति में घर-घर शोक छा गया। अकबर को भी बहुत दुःख हुआ। उसके लड़के महासिंह को उसके पिता का स्थान दिया और प्रस्थान करने का आज्ञापत्र देकर रवाना किया। उद्दंड और उपद्रवी अफगानों ने देखा कि यह अवसर बहुत अच्छा है। वे आँधी की तरह उठे। महासिंह साहस करके आगे बढ़ा। पर यौवन-काल की ओट थी

इसलिये उसने ठोकर खाई। विद्रोहियों ने भद्रक नामक स्थान पर बादशाही लश्कर को पराजित किया और पानी की तरह फैलकर सारे बंगाल का बहुत बड़ा भाग दबा लिया। उधर सलीम (जहाँगीर) सदा आनन्द-मंगल में मग्न रहनेवाला आदमी था। वह यह नहीं चाहता था कि उदयपुर के पहाड़ों में जाय और वहाँ के पत्थरों से सिर टकराता फिरे। उसकी इच्छा पूरी हो गई। राणा पर की चढ़ाई स्थगित कर दी गई और बंगाल की ओर प्रस्थान हुआ। बाप उधर आसीर पर घेरा डाले हुए पड़ा था। किलेवालों के प्राणों पर आ बनी थी; वे मर जाना अच्छा समझते थे। खानखानाँ अहमदनगर पर विजय प्राप्त किया चाहता था। अकबर के प्रताप के कारण सारे दक्षिण देश में भूँचाल सा आ रहा था। इब्राहीम आदिल शाह ने बहुमूल्य उपहारों और भेंटों के साथ अपनी कन्या को भेजा था कि दानियाल के महलों में ब्याह रचे। पर मूर्ख शाहजादे ने इस बात का कुछ भी विचार नहीं किया कि पिता किन किन उद्देश्यों से क्या-क्या कार्य कर रहा है और इस समय क्या परिस्थिति है। उसने मानसिंह को तो बंगाल की ओर भेज दिया और आप आगरे जा पहुँचा। किले में जाकर अपनी दादी को सलाम तक न किया। जब दादी ने आप उसके पास जाकर उससे मिलना चाहा तो ऊपर से ऊपर नाव में बैठ कर इलाहाबाद की ओर चल पड़ा। वहाँ जाकर खूब आनन्द-मंगल और भोग-विलास करने लगा। अकबर को उसका यह आचरण अच्छा न लगा। बल्कि उसके मन में यह बात आई कि मानसिंह ने ही इसको कुछ ऐसा समझाया-बुझाया है कि यह राणा की

ओर से हटा है और बंगाल की ओर चला है। सब से बढकर विपत्ति यह हुई कि शाहजादे के विद्रोह करने के कुछ लक्षण दिखाई पडने लगे। नमक-हलाल अमीरो के निवेदन-पत्र आने आरम्भ हुए। यदि अकबर का यह सन्देह किसी दूसरे अमीर पर होता, तो कोई बडी बात नही थी। क्योकि जब कोई बादशाह बुड्ढा होता है, तब दरबारवालो की आशाएँ सदा युवराज की ओर ही झुकती है। लेकिन शाहजादा सलीम के साथ मानसिंह का जो विशेष सम्बन्ध था, उसने इन सन्देहो के और भी भद्दे भद्दे चित्र लाकर उपस्थित किए। चाहे झूठ हो और चाहे सच, इससे राजा मानसिंह के नाम पर जो कलंक लगा, उसका अकबर को बहुत दु ख हुआ।

खैर, ये तो घर की बाते है। राजा मानसिंह ने ज्यो ही बंगाल के विद्रोह का समाचार सुना, त्यो ही वह शेर की तरह उधर झपटा। जिस समय वह वहाँ पहुँचा, उस समय पुरनिया, कहगरवाल, विक्रमपुर आदि भिन्न-भिन्न स्थानो मे शत्रुओ ने स्वतन्त्रता के झडे खडे कर रखे थे। उसने जगह जगह के लिये सेनाएँ भेजी, और जहाँ आवश्यकता देखी, वहाँ चलकर स्वय पहुँच गया। अकबर के पुण्य-प्रताप और राजा मानसिंह के साहस तथा अच्छी नीयत ने कुछ दिनो के बाद विद्रोह की आग बुझाई और तब मानसिंह ने ढाके मे आकर निश्चिन्त भाव से शासन करना आरम्भ किया।

बादशाहो के मन का हाल तो भला कोई कैसे जान सकता है, पर ऊपर से देखने से यही मालूम हुआ कि अकबर का मन उसकी ओर से साफ हो गया। इस विद्रोह मे जो युद्ध हुए थे,

उनसे यह भी पता चलता है कि बंगाल के विद्रोहियों के साथ फिरंग के सिपाही भी सम्मिलित थे और उनके साथ रहकर अपने प्राण देते थे। कदाचित् ये लोग डच या पुर्त्तगाली थे।

सन १००२ हि० में जब भारत में सब ओर शान्ति और व्यवस्था हो गई और तूरान के बादशाहों में आपस में झगड़े-बखेड़े होने लगे, तब अकबर का ध्यान फिर तूरान की ओर गया। उसने सेनापति खानखानाँ और दूसरे सरदारों को परामर्श करने के लिये बुलाया। मानसिंह के नाम भी सेवा में उपस्थित होने के लिये आज्ञा-पत्र भेजा गया और उसे यह भी लिखा गया कि कुछ बहुत ही आवश्यक समस्याएँ उपस्थित हैं, जिनके लिये सब लोगों का परामर्श लिया जायगा। तुम बादशाह के बहुत पुराने और खास सेवक हो, इस दरबार के प्रिय "आक सक्काल"* हो; इसलिये उचित है कि तुम भी दरगाह (दरबार) की ओर प्रवृत्त हो। इसी सन् में उसे जौंद का परगना प्रदान किया गया और आज्ञा हुई कि रोहतास के किले की मरम्मत करो। उसके पुत्र भावसिंह को हजारी जात, पाँच सौ सवार का मन्सब प्रदान किया गया।

---

* तुर्की भाषा में "आक सक़ाल" सफेद दाढ़ीवाले को या वृद्ध को कहते हैं। इसका आशय "पूज्य वृद्ध व्यक्ति" है। आजकल तुर्किस्तान के नगरों में चौधरी या महल्ले मुख्तार ही "आक सक्काल" कहलाता है। हर एक गाँव में और नगर के हर एक महल्ले में एक एक "आक सक्काल" होता है। पेशेवालों के हर एक दल का "आक सक़ाल" भी अलग अलग हुआ करता है।

सन् १०१३ हि० मे मानसिह के भानजे और जहाँगीर के बडे लडके खुसरो को दस-हजारी मन्सब मिला। मानसिह उसके शिक्षक और गुरु नियुक्त हुए और उनका मन्सब भी बढाकर सात-हजारी छ हजार सवार का कर दिया गया। उनका पोता भावसिह हजारी मन्सब और तीन सौ सवार पर नियत हुआ। अब तक कोई अमीर पाँच-हजारी मन्सब से आगे नही बढा था। पर यह सम्मान सबसे पहले इसी शुद्ध-हृदय राजा की निष्ठा और जान निछावर करनेवाली सेवाओ ने लिया और अकबर की गुण-ग्राहकता ने उसे दिया।

जब तक अकबर जीता रहा, तब तक मानसिह का सितारा बृहस्पति मे रहा (बहुत उच्च रहा)। पर जब वह अन्तिम बार बीमार होकर मृत्यु-शय्या पर पडा, तब से उसका सितारा भी ढलने लगा। सबसे पहले खुसरो के विचार से ही स्वयं अकबर को यह उचित था कि मानसिह को आगरे से हटा दिया जाय (देखो अकबर का हाल)। इसलिये उन्हे आज्ञा हुई कि अपनी जागीर पर जाओ। उस आज्ञाकारी सेवक ने अपनी समस्त कामनाओ और इच्छाओ को अपने प्रिय स्वामी की प्रसन्नता के हाथ बेच डाला था। यद्यपि उसके पास बीस हजार निजी नौकर थे और वह समस्त कछवाहा जाति का सरदार था, यदि बिगड बैठता तो सारी जाति तलवार पकडकर खडी हो जाती, पर फिर भी उसने तुरन्त बगाल की ओर प्रस्थान किया और खुसरो को भी अपने साथ ले लिया। जब नया बादशाह सिहासन पर बैठा, तब सभी पुराने अमीर दरबार मे उपस्थित हुए। नवयुवक बादशाह उस समय मस्त था। पर उसके सम्बन्ध मे भी यह

बात प्रशंसा करने के योग्य है कि वह सब पुरानी बातो को भूल गया। वह स्वयं लिखता है कि मानसिंह ने कुछ ऐसी बातें की थी कि वह अपने लिये इस कृपा की आशा नहीं रखता था। पर फिर भी उसे चार-कुब्ब (एक प्रकार की बढ़िया) खिलअत, जड़ाऊ तलवार, जरी के जीन के सहित खासे का घोड़ा आदि देकर उसका सम्मान बढ़ाया और बंगाल का सूबा दोबारा अपनी ओर से उसे प्रदान किया। पर भाग्य की वक्रता को कौन सीधा कर सकता है! कुछ ही महीने बीते थे कि खुसरो ने विद्रोह खड़ा कर दिया। पर फिर भी धन्य है जहाँगीर का हौसला कि मानसिंह के कार-बार में उसने किसी प्रकार के परिवर्त्तन का कोई लक्षण नहीं प्रकट किया। मानसिंह को भी धन्य कहना चाहिए, क्योंकि वह अपने भानजे का भला तो अवश्य चाहता होगा। परन्तु इस अवसर पर उसने भी कोई ऐसा काम नहीं किया जिसके कारण उसपर स्वामी-द्रोह का अभियोग लगा सके।

मस्त बादशाह जहाँगीर अपने राज्यारोहण के एक बरस आठ महीने के बाद स्वयं लिखता है, परन्तु उसके लेख पर कुछ धूल-मिट्टी पड़ी हुई जान पड़ती है। ऐसा जान पड़ता है कि ये बातें किसी दु:खी हृदय से निकल रही हैं। वह लिखता है कि राजा मानसिंह रोहतास के किले से चलकर दरबार में सेवा में उपस्थित हुआ। रोहतास का किला पटने के प्रदेश में स्थित है। जब छ सात आज्ञापत्र जा चुके हैं, तब आया है। वह भी खान आजम की तरह इस साम्राज्य के पुराने पापियों में से एक है। जो कुछ इन्होंने मेरे साथ किया और जो कुछ मैंने इन लोगों के

साथ किया, वह भेद जाननेवाला ईश्वर ही जानता है। और कोई किसी के साथ इस प्रकार निर्वाह नहीं कर सकता। राजा ने नर और मादा सौ हाथी भेट किए। पर उनसे एक हाथी मे भी कोई ऐसी बात नहीं थी कि वह खास (बादशाही) हाथियो मे सम्मिलित किया जा सकता। वह मेरे पिता के बनाए हुए नवयुवको मे से है। उनके अपराधो का मैंने उसके सामने कुछ भी उल्लेख नहीं किया और राजोचित कृपाओ से उसे सम्मानित किया। पूरे दो महीने के बाद फिर लिखता है कि एक घोडा मेरे और सब घोडो का सरदार था। वह मैंने कृपा की दृष्टि से मानसिह को प्रदान किया। यह घोडा कई और घोडो के साथ और अच्छे-अच्छे उपहारो के साथ शाह अब्बास ने मनोचहरखॉ के दूतत्व मे स्वर्गीय पूज्य पिता जी (अकबर) को भेजा था। मनोचहर उक्त शाह का विश्वसनीय दास है। जब मैंने यह घोड़ा प्रदान किया, तब मानसिह मारे प्रसन्नता के इस प्रकार लोटा जाता था कि यदि मै उसे कोई साम्राज्य दे देता, तो पता नहीं कि वह इतना प्रसन्न होता या न होता। जब यह घोडा आया था, तब तीन चार बरस का था। भारत मे आकर ही यह बडा हुआ था और यहीं इसमे सब गुण प्रकट हुए थे। दरबार मे रहनेवाले सभी मुगल और राजपूत सेवको ने एक स्वर से यह निवेदन किया कि ऐसा घोड कभी ईरान से भारत मे नहीं आया था। जब पूज्य पिता जी भाई दानियाल को खानदेश और दक्खिन का सूबा प्रदान कर के आगरे की ओर लौटने लगे, तब उन्होने प्रेम की दृष्टि से उससे कहा था कि तुझे जो चीज बहुत पसन्द हो, वह मुझ से माँग। उसने अवसर पाकर यह घोडा माँगा। इसी कारण उसे दे दिया था।

आजाद कहता है कि भला बीस बरस के बुड्ढे घोड़े पर क्या प्रसन्न होना था ! यह कहो कि समय को देखते थे, आदमी को पहचानते थे और थे मसखरे। क्या यह और क्या खानखानाँ, मस्त को पागल बनाते थे। बुड्ढे हुए तो हो जायँ, पर तबीयत की शोखी तो नहीं जा सकती। अकबर के शासन-काल में बुद्धिमत्ता, साहस, हौसले और जान निछावर करने का समय था। उसे ये लोग इन्हीं बातों से प्रसन्न करते थे। जब इसे देखा कि यह इस ढब का नहीं है, तो इसे दूसरे ढब से नरम कर लिया।

बादशाह के खानजहाँ आदि अमीर दक्खिन में अपनी कार-गुजारियाँ दिखला रहे थे। उनका साहस और योग्यता अवश्य यह चाहती होगी कि हम भी मैदान में चलकर अपने गुण दिख-लावें, और जान निछावर करने की आदत ने इसमें और भी उत्तेजना दी होगी। लेकिन खुसरो के कारण मामला कुछ नाजुक हो रहा था। इसलिये वह पहले अपनी जन्मभूमि को गया और वहाँ अपने पुराने कर्मचारियों से परामर्श करके जहाँगीर से निवेदन किया और अपने लश्कर सहित दक्खिन पहुँचा। दो बरस तक वहाँ रहा; और सन् १०२३ हि० में वहीं से परलोक सिधारा। उसके लड़कों में से केवल एक भावसिंह जीता बचा था। जहाँगीर ने इस अवसर पर स्वयं लिखा है कि पूज्य पिता जी के अच्छे-अच्छे अमीरों और सहायकों में से मैंने दरबार के अनेक सेवकों को एक-एक करके दक्खिन में काम करने के लिये भेजा था। वह भी इन दिनों वहाँ सेवा कर रहा था। वहीं मर गया। मिरजा भावसिंह उसका सुयोग्य पुत्र था। मैंने बुला भेजा। जिस समय मैं युवराज था, उस समय वह मेरी सेवा अधिक से

भी अधिक किया करता था। हिन्दुओ की प्रथा के अनुसार जगतसिह के लडके महासिह को रियासत मिली थी, क्योंकि वही सब भाइयो मे बडा था। वह राजा के जीवन-काल मे ही मर गया था। परन्तु मैंने इस बात का विचार न किया। भावसिह को मिरजा राजा की उपाधि देकर चार-हजारी जात और तीन सौ सवार के मन्सब से सम्मानित किया। आमेर का इलाका उसे प्रदान किया। वही उसके बाप-दादा की जन्मभूमि है। इस विचार से कि महासिह भी प्रसन्न रहे, उसका मन रखने के लिये उसके पुराने मन्सब पर पॉच सदी बढाकर गढ का देश उसे पुरस्कार मे दिया।

जो लोग वास्तविक बाते न जानते होंगे, वे यह वर्णन पढकर चट बोल उठेंगे कि जहाँगीर के शासन-काल मे उसने कुछ भी उन्नति नही की। परन्तु जाननेवाले लोग जानते हैं कि उसका मामला कैसा पेचीला था। बल्कि उसकी बुद्धिमत्ता और उत्तम आचरण हजार प्रशंसा के योग्य हैं। चारो ओर चढाइयाँ और लडाई-झगडे हो रहे थे। परन्तु वह किसी विपत्ति की झपट मे नही आया। उसने अपनी प्रतिष्ठापूर्ण अवस्था का प्रतिष्ठापूर्वक अन्त किया। खानखानाँ और मिरजा अजीज कोका आरम्भ मे ही उन्नति के क्षेत्र मे इसके साथ घोडे दौडाते थे। उनकी अवस्था की इसकी अवस्था से तुलना करके देखो। जहाँगीर के शासन-काल मे उन लोगो ने कैसी कैसी विपत्तियाँ सही। पर इसके आचरण और गति मे एक विशेष सिद्धान्त था, जिसने इसे कुशलपूर्वक क्षेत्र के मार्ग मे उद्दिष्ट स्थान तक पहुँचाया। प्रतिष्ठा और सम्मान की जो पगडी अकबर ने अपने हाथ से इसके

सिर पर बाँधी थी, उसे दोनो हाथ से पकड़े हुए यह बहुत ही सुख और शान्ति से निकल गया।

इसने देशो पर विजय प्राप्त करने और उनका शासन तथा रक्षा करने के सभी गुणों में अपना पूरा-पूरा अंश प्राप्त किया था। यह जिधर लश्कर ले गया, उधर ही इसे सफलता हुई। काबुल मे आज तक बच्चा-बच्चा उसका नाम जानता है। उसके सम्बन्ध की कहावतें आज तक लोगों की जबानो पर हैं। इसने पूर्व में अकबर के शासन का धौंसा समुद्र के किनारे तक जा बजाया। बंगाल मे इसने अपने उत्तम शील और गुणों के ऐसे अच्छे बाग लगाए हैं जो आज तक हरे-भरे हैं। उसकी विशाल-हृदयता और उदारता के स्रोत अब तक लोगों की जबानो पर प्रवाहित हो रहे हैं, और आशा है कि बहुत दिनों तक यो ही बने रहेंगे। उसकी माट की सरकार मे सौ हाथी फीलखाने में झूमते थे। बीस हजार अच्छे अच्छे सैनिक और योद्धा उसके निजी सेवक थे। उसके लश्कर के साथ बड़े-बडे विश्वसनीय सरदारों, ठाकुरों और अच्छे-अच्छे अमीरो की सवारियाँ बराबर अमीरी ठाठ से निकलती थीं। सभी सैनिकों के लिये अच्छे वेतन नियत थे और वे सब प्रकार मे सुखी तथा सम्पन्न थे। प्रत्येक गुण और कला के पूर्ण ज्ञाता उसके राजसी दरबार मे सदा उपस्थित रहते थे और प्रतिष्ठापूर्वक, सुखी और सम्पन्न रहते थे।

इतना सब कुछ होने पर भी उनका स्वभाव बहुत अच्छा और मिलनसार था और वह सदा प्रसन्न-चित्त रहता था। जहाँ दूसरों जल से में बैठता था, अपने भाषण को नम्रता और सरो के

आदर-सत्कार से रँग देता था। जब दक्खिन मे युद्ध करने के लिये गया था, तब खानजहाँ लोधी सेनापति था। उस समय वहाँ ऐसे पन्द्रह पज-हजारी अमीर उपस्थित थे, जिन्हे बादशाह की ओर से झडा और नगाडा आदि मिला हुआ था। उनमे खानखानाँ, स्वयं राजा मानसिह, आसफखाँ और शरीफखाँ अमीर उल् उमरा आदि सम्मिलित थे। चार-हजारी से पाँच-सदी तक एक हजार मन्सबदार सेनाएँ लिए हुए और कमर बाँधे हुए उपस्थित थे। बालाघाट नामक स्थान पर बादशाही लश्कर पर बहुत बडी विपत्ति आई। देश मे अकाल पड गया। रास्ते भी बहुत खराब थे, इसलिये रसद का आना बन्द होने लगा। अमीर लोग नित्य एकत्र होकर परामर्श के लिये सभाएँ करते थे, पर कोई उपाय ठीक बैठता हुआ दिखाई नही देता था। एक दिन मानसिह ने भरी सभा मे खडे होकर कहा कि यदि मै मुसलमान होता, तो दिन-रात मे एक समय आप सब सज्जनो के साथ बैठकर भोजन किया करता। अब तो दाढी सफेद हो गई है, इसलिये कुछ कहना उचित नही है। एक पान है। आप सब सज्जन स्वीकृत करे। सब से पहले खानजहाँ ने उनका मन रखा और मान का पान समझकर सब लोगो ने उसे स्वीकृत कर लिया। पज-हजारी से लेकर सदी तक के सभी मन्सबदारो के यहाँ उनकी मर्यादा और पद के अनुसार नगद और भोजन के लिये सब आवश्यक सामग्री हर आदमी की सरकार मे पहुँच जाया करती थी। हर थैले और खरीते पर उस मन्सबदार का नाम लिखा हुआ होता था। तीन चार महीने तक यह क्रम बराबर चलता रहा। एक दिन भी नागा नही हुआ। बनजारो ने

रसद का तांता लगा दिया। लश्कर के बाजार में हर चीज के ढेर पड़े रहते थे, और चीजों का जो भाव आमेर में था, वही यहाँ भी था। एक समय का भोजन भी सबको मिलता था। उसकी कुँवर नाम की रानी बहुत ही बुद्धिमती थी और सब बातों की बहुत अच्छी व्यवस्था करती थी। वह घर मे बैठी रहती थी और सब बातो का बराबर प्रबन्ध किया करती थी। यहाँ तक कि कूच मे और ठहरने के स्थानो पर मुसलमानों को स्नानागार और मसजिद के ढंग के खेमे भी तैयार मिलते थे।

उत्तम शील और आचरणवाला यह राजा सदा प्रफुल्लित और प्रसन्न रहता था। एक बार दरबार में एक सैयद साहब किसी ब्राह्मण से उलझ पड़े। अन्त मे उन्होने कहा कि जो कुछ राजा साहब कह दें, वही ठीक माना जाय। राजा ने कहा कि मुझ मे इतना ज्ञान नहीं है जो मैं ऐसे विषयो मे बात-चीत कर सकूँ। पर हाँ, एक बात देखता हूँ कि हिन्दुओ मे कोई कैसा ही गुणवान्, पडित, ज्ञानी, ध्यानी या साधु जब मर गया तो जल गया। उसकी राख उड़ गई। रात के समय वहाँ जाओ तो भूत-प्रेत का भय है। इस्लाम में जिस नगर बल्कि गाँव मे जाओ, अनेक पूज्य वृद्ध पडे सोते हैं। दीपक जलते हैं। फूल महक रहे हैं। चढ़ावे चढ़ते हैं और लोग उनके व्यक्तित्व से लाभ उठाते हैं।

एक दिन वे और खानखानाँ बैठे हुए शतरंज या चौपड खेल रहे थे। शर्त यह हुई कि जो हारे, वह जीतनेवाले के कहने के अनुसार एक पशु की बोली बोले। खानखानाँ की बाजी दबने लगी। मानसिंह ने हँसना आरम्भ किया। कहा कि मैं तो बिल्ली

की बोली बुलवाऊँगा। खानखानाँ साहस करते गए। अन्त मे चार पाँच चालो के उपरान्त निराश हो गए। पर वे बडे चालबाज थे। उन्होने घबरा कर उठना चाहा। कहा कि ओहो! मैं तो बिलकुल भूल ही गया था। बहुत अच्छा हुआ कि इस समय स्मरण आ गया। मानसिह ने कहा—आप कहाँ चले? उन्होने कहा—बादशाह सलामत ने एक काम के लिये मुझे आज्ञा दी थी। वह बात अभी इसी समय मुझे याद आई। मै जाकर जल्दी उसका प्रबन्ध करता हूँ। राजा ने कहा—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। खानखानाँ बोले—मै अभी आता हूँ। राजा ने उनका पल्ला पकड़ लिया और कहा—बहुत अच्छी बात है। आप बिल्ली की बोली बोल लीजिए और फिर चले जाइए। उन्होने कहा—आप मेरा पल्ला छोड दीजिए। मे आयम। मे आयम। मे आयम। (अर्थात् मै आता हूँ। मै आता हूँ। मै आता हूँ।) (इस प्रकार फारसी भाषा मे अपनी बात भी कह दी और बिल्ली की बोली 'म्याँव' की नकल भी कर दी।) वह भी हँस पडे। ये भी हँस पडे। वाह, क्या बात है! अपनी बात भी कह दी और विपक्षी की बात भी पूरी कर दी।

मानसिह सदा साधुओ और त्यागियो आदि की सेवा मे जाया करता था। इस विषय मे वह हिन्दू और मुसलमान मे किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रखता था। बगाल की यात्रा मे एक स्थान पर शाह दौलत नामक फकीर के गुणो और योग्यताओ की प्रशसा सुनी। जाकर उनकी सेवा मे उपस्थित हुआ। वे भी उसकी पवित्र और बुद्धिमत्ता-पूर्ण बातो से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने कहा—मानसिह, तुम मुसलमान क्यो नहीं हो जाते? मान-

सिंह ने मुस्कराकर कुरान की एक आयत पढ़ी जिसका आशय यह है कि यह (धर्म) ईश्वर की की हुई मोहर है। इसे मनुष्य कैसे तोड़ सकता है? यदि तोडे तो उसका अनादर होता है।

मानसिंह के सम्बन्ध मे यह दुःख वास्तव मे नहीं भूलता कि जहाँगीर के शासन-काल मे आकर सेनापतित्व और देशों पर विजय प्राप्त करने की योग्यता मुरझा कर रह गई। शराबी-कबाबी बादशाह ने उसकी कुछ परवाह नहीं की, बल्कि उसकी ओर से खटकता रहा। गुणग्राहक वही मरनेवाला था, जिसने उसकी योग्यता और गुणों को छोटी अवस्था से ही पालकर पूर्णता के बहुत ऊँचे पद पर पहुँचाया था। वह यदि जीवित रहता तो ईश्वर जाने इसकी तलवार से अपने पूर्वजों के देश के पहाडो को टकराता या समुद्र मे फिरंगियो का बल तोड़ता। अकबर सदा खानखानाँ को मिरजा खाँ, खान आजम को मिरजा अजीज और मानसिंह को मिरजा राजा कहा करता था। घर की रीत-रस्मों और दूसरी सभी बातों मे उसके साथ पुत्रों का सा व्यवहार होता था। विशेषतः अन्तःपुर के सब कार-बार, यात्रा के समय उसका सारा प्रबन्ध राजा भगवानदास के ही हाथ मे रहता था। मरियम मकानी तक की सवारी होती तो राजा साहब साथ रहते थे। इससे अधिक और क्या विश्वास हो सकता है! बहुत ही पवित्र समय था और बहुत ही पवित्र हृदय थे। देखो उनके परिणाम भी कैसे शुभ और पवित्र निकलते थे।

मानसिंह के जीवन-चरित्र मे इस वर्णन पर फूल बरसाने

चाहिए कि उसने और उसके सारे वंश ने अपनी सब बातो को अकबर की इच्छा और प्रसन्नता पर निछावर कर दिया था। पर फिर भी धर्म के विषय मे अपनी बात कभी हाथ से जाने नही दी। जिन दिनो अकबर के चलाए हुए दीन इलाही अकबर-शाही का जोर हुआ और अब्बुलफजल उसके खलीफा हुए, तब जो बीरबल ब्राह्मण कहलाते थे, उन्होने शिष्यता के क्रम मे चौथा स्थान प्राप्त किया था। परन्तु मानसिंह गम्भीरता और बुद्धिमता के बिन्दु से बाल बराबर भी नही हटा। एक बार की बात है कि रात के समय साम्राज्य की कुछ विकट समस्याओ पर विचार करने के लिये मन्त्रणा सभा हो रही थी। इनको हाजीपुर पटना जागीर मे प्रदान किया गया। इसके बाद एकान्त की सभा होने लगी। खानखानाँ भी उपस्थित थे। अकबर मानसिंह को टटोलने लगे कि देखूँ, यह भी मेरे शिष्यो और अनुयायियो मे आता है या नहीं। बात-चीत का क्रम इस प्रकार छिडा कि जब तक वह चार बाते नहीं होतीं, तब तक पूर्ण प्रेम नहीं होता। सिपाही राजपूत ने स्पष्ट भाव और नि सकोच रूप से उत्तर दिया कि हुजूर, यदि शिष्यता मे प्राण निछावर करने का अभिप्राय है तो आप देखते है कि हम अपनी जान हथेली पर रखे हुए हैं। इसमे परीक्षा की कोई आवश्यकता नही। यदि इसका अभि-प्राय कुछ और है और हुजूर का आशय धर्म से है तो मै हिन्दू हूँ। यदि आपकी आज्ञा हो तो मुसलमान हो जाऊँ। और मार्ग मैं नहीं जानता कि कौन सा है जो मै ग्रहण करूँ। अकबर भी टाल गए। और हम तो कहते है कि वास्तविक बात यही है कि जो आदमी अपने धर्म का पक्का और पूरा होगा, वही निष्ठा

और प्रेम-सम्बन्ध मे भी पूरा होगा। निष्ठा और प्रेम की दृढता ही प्रत्येक धर्म का मूल है। भला संसार मे कौन सा ऐसा धर्म है जिसने निष्ठा और प्रेम-भाव को बुरा समझा होगा ! जो अच्छी बातें हैं, वे सभी धर्मों मे अच्छी मानी गई हैं और उनका पालन करने पर सभी मे जोर दिया गया है। यदि किसी धर्म के अनुयायी उन बातो का पालन न करे तो इसमें उस धर्म का कोई दोष नहीं है। हाँ उन धर्म-भ्रष्ट लोगो का अवश्य दोष है।

यह चुटकुला भी लिखने के योग्य है कि राजा की १५ सौ रानियाँ थीं और उनमें से हर एक के गर्भ से एक-एक दो-दो सन्तानें उत्पन्न हुई थीं। हाँ, वीर ऐसे ही होते हैं। पर दु ख है कि वे कोंपलें टहनी से निकलती गईं और जलती गईं। कुछ ही बच्चे ऐसे थे जो युवावस्था तक पहुँचे और दु ख है कि वे भी इसके सामने ही चले गए। एक भावसिंह को जीता छोड़ गया था। पर वह भी शराब की भेंट हुए। जब राजा साहब का स्वर्गवास हुआ, तब साठ रानियों ने सती होकर परलोक-गमन मे उनका साथ दिया था।

जिस भूमि पर ताजगंज का रौजा है, वह राजा मानसिंह की थी। मैंने आगरे मे जाकर पूछा तो पता चला कि अब भी उसके आस-पास कुछ बीघे ऐसी भूमि है जो जयपुर के राजा के नाम लिखी चली आती है। जयपुर के महाराज सवाई के कर्मचारी उसपर अपना अधिकार रखने मे अपना गौरव समझते हैं।

सूक्ष्मदर्शिता—एक फकीर ने एक बीघा भर जमीन के लिये अकबर के दरबार मे प्रार्थना की। वहाँ सैकड़ों हजारों

बीघे की भी कोई बड़ी बिसात नहीं थी। भूमि प्रदान कर दी गई। उसकी सनद पर सभी अमीरो के कार्यालयों से हस्ताक्षर होते चले आए। जब वह कागज मानसिंह के सामने आया, तब उन्होंने उसपर लिख दिया कि काश्मीर की भूमि को छोडकर, जहाँ केसर उत्पन्न होता है। जब उस फकीर ने यह लिखा देखा, तब वह सनद फेंक कर चला गया। बोला कि अब मुझे क्या करना है। यदि साधारण बीघा भर जमीन ही लेनी होती तो जहाँ चाहता, वहीं बैठ जाता। ईश्वर का क्षेत्र विस्तृत पडा है। कुछ अन्वेषकों से यह भी पता चला कि यह काम टोडरमल ने किया था।

मेरे मित्रो, यदि इस समय हिन्दुओ और मुसलमानो के लिये कोई ऐसा शासन है जिसका अनुकरण देश के कल्याण, लोकहित, बल्कि भिन्न-भिन्न विरोधी धर्मों मे प्रेम और एकता उत्पन्न करने के लिये आवश्यक है, तो वह अकबर का शासन है। इस निरुपम और शुभ शासन काल मे मुसलमानो मे नेता और मार्गदर्शक अकबर और हिन्दुओं मे राजा मानसिंह है। कहाँ है वे सकुचित विचारवाले और संकुचित हृदयवाले जिन्होंने इस समय सबसे बडी देशहितैपिता इसी मे निश्चित की है कि दोनो धर्मवालो को आपस मे लडाया करें और हृदयो मे द्वेष और शत्रुता की आग सुलगाया करे। इस समय की सभाओ और समाजो के प्रभाव-शून्य भाषणो आदि से कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। जो बात हृदय से नहीं निकलती, वह हृदय पर प्रभाव भी नहीं डाल सकती। तुम अकबर के समय के इन पवित्र-हृदय लोगो के वर्णनो पर विचार करो और इन्हीं को अपना

मार्गदर्शक बनाओ। अकबर और मानसिंह ऐसे व्यक्ति हैं कि यदि इनकी मूर्त्तियाँ बनवा कर हर जातीय सभा की उनसे शोभा बढ़ाई जाय, तो दोनो दलो मे एकता उत्पन्न होने का यह एक अच्छा उपाय है। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि मानसिंह ने यह मेल अपने धर्म को पूरी तरह से बनाए रखकर स्थापित किया। यही वह गुण है जो हमारे हृदय में मानसिंह का बहुत अधिक आदर और प्रतिष्ठा स्थापित करता है। भला वह क्या धार्मिकता है जिससे दूसरों के हृदय को दुःख पहुँचता हो। मुसलमानों और हिन्दुओं के धर्मों मे हजारो ऐसी बातें हैं जिन्हें दोनो ही पक्ष उत्तम समझते हैं। अतः धार्मिक बनने के लिये ऐसी ही बातो का पालन करना चाहिए। राजा मानसिंह! नैतिक इतिहास में तुम्हारा नाम सुनहले अक्षरों मे प्रलय काल तक प्रकाशित रहेगा। नीति और धर्म के सम्बन्ध में निष्पक्षता तुम्हारे शुभ नाम पर सदा फूल और मोती बरसावेगी। तुम्हारा सिर ऐसे फूलों के हारों से सजा है जिनकी सुगन्ध प्रलय काल तक सारे संसार के दिमाग को सुगन्धित रखेगी।

मिरजा अब्दुलरहीम खानखानाँ

सन् ९६४ हि० मे बैरमखाँ का बुढ़ापा प्रताप के यौवन में लहलहा रहा था। हेमूँवाले युद्ध मे विजय प्राप्त कर ली थी। अकबर शिकार खेलते हुए लाहौर चले आते थे। बुलबुल के गीत के सुरो मे किसी ने कहा कि बुढ़ापे के बाग मे रंगीन फूल शुभ हो। विजय की प्रसन्नता में यह शुभ समाचार एक शकुन सा जान पड़ा; इसलिये बादशाह ने जशन किया, वजीर ने खजाने

लुटाए और अपने-परायो को पुरस्कार आदि से मालामाल कर दिया। बैरमखाँ को तो सारा संसार जानता है। अब माँ के वंश का हाल भी जान लो जो जमालखाँ मेवाती की कन्या और हसनखाँ मेवाती की भतीजी थी। उसकी बड़ी बहन बादशाह के महल मे थी* और छोटी वजीर के अन्त पुर मे। मौसा बादशाह ने स्वयं उसका नाम अब्दुलरहीम रखा। इस शुभ पुत्र का जन्म इसी लाहौर नगर मे हुआ था।

यह फूल प्राय तीन वर्ष तक लाड-प्यार और वैभव की हवा मे प्रताप की ओस से खिला और हरा रहा। अचानक पतझड की नहूसत ऐसी बगूला बनकर लिपटी कि उसके उपवन को जड से उखाड कर फेक दिया और घास-फूस की तरह बहुत दिनो तक इधर-उधर होती रही। कोई नहीं जानता था कि कहाँ इसका ठिकाना भी लगेगा या नहीं। हम कागजो के देखनेवाले तरस खाते हैं। फिर भला उसके सम्बन्धियो और शुभचिन्तक सेवको की क्या दशा हुई होगी। जब वे उसकी और अपनी दशा का स्मरण करते होगे, तब उनकी छाती पर साँप लोट जाते होगे कि क्या था और क्या हो गया। पर वास्तविक बात यह है कि इसी प्रकार लोग ऊँचे से नीचे गिरते है। यह गिरना उस समय होता है जब वे इतनी ऊँचाई पर पहुँचते है कि देखनेवाले आश्चर्य करके कहते है कि यह तारा कहाँ से निकल आया।

चाहे ईश्वर घी मे तर ग्रास दे और चाहे टुकडा, पर पिता

---

* अकबरनामे में तो यही लिखा है। पर आश्चर्य है कि मआसिर उल् उमरा में लिखा है कि बड़ी बहन हुमायूँ को ब्याही गई थी।

का हाथ बच्चे के पोषण का चमचा बल्कि उसके भाग्य का मूल मन्त्र होता है। जब बैरमखाँ के प्रताप ने मुँह फेरा, उसके प्रतिद्वन्द्वियों की बातों मे आकर अकबर दिल्ली मे आ बैठा, तब बैरमखाँ आगरे मे रह गए। यहीं से दुर्भाग्य का आरम्भ समझना चाहिए। दशा यह थी कि साथी साथ छोड़कर दिल्ली चले जाते हैं। निवेदनपत्र जाते है तो उलटे उत्तर आते हैं। जब निवेदन आदि करने के लिये वकील पहुँचता है, तो वह कैद कर लिया जाता है। दरबार के ढंग बेढब हो रहे हैं। जो समाचार आता है, वह विकट और भीषण। बेचारा निर्दोष बच्चा इन भेदों को न समझता होगा। पर इतना तो अवश्य देखता होगा कि पिता की मजलिस मे वह रौनक नहीं है। वह अमीरो और दरबारियों की भीड़-भाड़ क्या हो गई? पिता किस चिन्ता मे है कि मेरी ओर देखता भी नहीं?

बेचारा बैरमखाँ क्या करे! कभी बंगाल जाने का विचार करता है और कभी हज जाने के विचार मे गुजरात की ओर बढ़ने का। पर उधर मार्ग नहीं पाता। राजपूताने की ओर बढ़ता है। कुछ दिनों तक इधर-उधर घूमता है। अन्त मे पंजाब जाता है। कच्चा साथ ठहरा। अपने आपको और अपनी दशा को सँभाले कि बाल-बच्चों को। अन्त में अन्तःपुर के लोगों और जवाहिरखाने ने तोशाखाने आदि बहुत से सामान और आवश्यक पदार्थों को भटिंडे मे छोड़ा और आप पंजाब आया। भटिंडे का हाकिम उसी के नमक से पला था। वह मिट्टी मे से उठाया हुआ, हाथों का पाला हुआ, छोटे से बड़ा करके शासन तक पहुँचाया हुआ। उसने भी सम्पत्ति और बाल-बच्चों को अपने अधिकार में

पाकर दरबार मे भेज दिया। दिल्ली मे आकर सब कैद हो गए। सब सामान बादशाही खजाने मे रख दिया गया। वह तीन चार बरस का बच्चा, नित्य की परेशानी, सब वस्तुओ के अभाव, घर-वालो के इधर-उधर मारे-मारे फिरने से और नित्य नए-नए नगर और नए-नए जंगल देख कर चकित होता होगा कि यह क्या दशा है और हम कहाँ है। मेरी हवा खाने की सवारियो और सब लोगो की सहानुभूति और प्रेम आदि मे क्यो अन्तर आ गया। जो लोग मुझे हाथो की जगह आँखो पर लेते थे, वे सब क्या हो गए ?

और उस दशा के चित्र से तो रोंगटे खडे होते हैं कि पिता दरबार से विदा होकर हज करने चला गया। गुजरात-पटन पर डेरे हैं। अभी सूरज झलकता है। सन्ध्या होना ही चाहती है। लोग सोच यह रहे थे कि अब खानखानाँ आता होगा। इतने मे समाचार आया कि वह तो मारा गया। उसके मरते ही सेना मे हलचल मच गई। पल के पल मे अफगानो ने घर-बार लूट लिया। कोई गठरी लिए जाता है, तो कोई सन्दूक लिए जाता है। किसी ने मसनद घसीट ली, कोई बिछौना ले चला। उस बेचारे मुरदे के कपडे तक उतार लिए। बिना प्राणो की लाश को कफन कौन पहनावे, जहाँ अपने ही प्राणो का ध्यान नहीं है। वह तीन बरस की जान, भला क्या करता होगा ! माँ की गोद मे दबक जाता होगा। डरता होगा और दाई के पास छिप जाता होगा। अब वह बेचारियाँ उसे कहाँ छिपा ले ? उन्हे आप ही छिपने को जगह नहीं। ईश्वर तू ही रक्षक है। विलक्षण समय होगा। वह रात भी प्रलय की रात रही होगी। दिन चढा तो

यह भी हशर या अन्तिम विचार का। मुहम्मद अमीन दीवाना और जम्बूर आदि लश्करो को लड़ानेवाले थे। उस समय कुछ न बन आई थी। फिर भी वे लोग हजार वार धन्य हैं कि उन्होंने लुटे हुए दल को समेटा है और उड़े हुए अहमदाबाद चले जाते हैं। अवसर पाते हैं तो पलट कर एक हाथ मारते जाते है।

उस समय इन टूटे हुए पैरोंवाली स्त्रियो को, जिनमें सलीमा सुलतान वेगम और यह तीन वरस का वच्चा भी सम्मिलित है, ले निकलना ही वहुत है। लुटेरो ने अभी तक पीछा नहीं छोड़ा। पीछे-पीछे लूटते-मारते चले आते हैं। वेचारा निर्दोप वच्चा सहमा हुआ इधर-उधर देखता है और रह जाता है। कौन दिलासा दे? और यदि कोई दिलासा दे भी तो उससे होता क्या है! हे ईश्वर, ऐसा समय तुम शत्रुको भी मत देना।

इन विपत्ति के मारे हुए लोगो ने लड़ते-लड़ते अहमदाबाद में जाकर दम लिया। कई दिनों वाद गए हुए होश-हवास ठिकाने आए। परामर्श करके यह निश्चित किया गया कि दरवार के सिवा और कहीं शरण नहीं है। फिर चलना चाहिए। चार महीने के वाद आवश्यक सामग्री एकत्र करके प्रस्थान किया। वहाँ भी समाचार पहुँच गया था। चगताई उदारता और अकवरी क्षमा की नदी में लहर आई। इनके लिये आज्ञापत्र भेजा। खानखानाँ के मरने का शोक और इनके तवाह होने का दुःख था। साथ ही वडे दिलासे और सान्त्वना के साथ लिखा था कि अब्दुलरहीम को तसल्ली दो, और वहुत खवरदारी और सतर्कता के साथ लेकर दरवार मे उपस्थित हो। चित्त को शान्त और धीर करनेवाला यह जन्तर उन्हें जालोर नामक स्थान मे मिला

था। बड़ा सहारा हो गया। हिम्मत बँध गई और बादशाह की सेवा में उपस्थित हुए।

इस दल के वास्ते वह समय बहुत ही निराशा और आश्चर्य का हुआ होगा, जिस समय बाबा जम्बूर विपत्ति के मारे हुए इन सब लोगों को लेकर आगरे पहुँचे होंगे। स्त्रियों को महल में उतारा होगा। इस अनाथ बच्चे को, जिसका पिता किसी दिन दरबार का मालिक था, बादशाह के सामने लाकर छोड़ दिया होगा। अन्दर भग्न-हृदय स्त्रियों के मन में धुकुड़-पुकुड़ हो रही होगी। बाहर उसके पुराने नमक खानेवाले ईश्वर से प्रार्थनाएँ करते होंगे। कहते होंगे कि हे ईश्वर, इसके पिता ने दरबार की जो-जो सेवाएँ की हैं, उन्हें तू बादशाह की दृष्टि में ला। अन्त समय में इसके बाप ने जो कुछ किया है, वह इस समय भुला दे, जिससे बादशाह इस निर्दोष बच्चे पर और हम लोगों की दशा पर दया करे। हे ईश्वर, सारा दरबार शत्रुओं से भरा है। इस बिना बाप के बच्चे का कोई नहीं है। हमारे जीवन और भविष्य के कल्याण का सहारा कौन है। अगर है तो इसी बच्चे की जान है। तू ही इसे उन्नति के शिखर पर चढ़ावेगा और तू ही इस बेल को मँढे चढ़ावेगा।

चगताई वंश में इन थोड़े से बादशाहों की बातें क्षमा-प्रदान के विषय में बहुत प्रशंसा के योग्य हैं। यदि शत्रु भी सामने आता था, तो आँख झमक जाती थी। बल्कि उसकी जगह स्वयं लज्जित हो जाते थे। उसके अपराधों की कोई चर्चा ही नहीं होती थी। भला यह तो अबोध बच्चा था और वह भी बैरम का लड़का। जिस समय लोग उसे सामने लाए, उस

समय अकबर की आँखो मे आँसू भर आए। गोद में उठा लिया। उसके नौकरो के लिये वृत्तियाँ और वेतन यथेष्ट नियत किए और कहा कि इसके सामने कोई खान बाबा की चर्चा न किया करे। बच्चा है, मन मे बहुत दुःखी होगा। बाबा जम्बूर ने कहा कि हुजूर, ये बार-बार पूछते हैं, रात के समय चौंक उठते है। कहते हैं कि कहाँ गए। अब तक क्यो नहीं आए। अकबर ने कहा कि कह दिया करो कि हज करने गए हैं। ईश्वर के घर में पहुँच गए। बच्चा है। बातो मे बहला लिया करो। देखो, इसे सब प्रकार से प्रसन्न रखो। इसे यह पता न लगे कि खान बाबा सिर पर नहीं है। बाबा जम्बूर, यह हमारा बेटा है। इसे हमारी दृष्टि के सामने रखा करो।

सन् ९६९ हि० मे जब यह दया का पात्र बालक अकबर के दरबार मे पहुचा था, उस समय इसके पिता के घोर शत्रु साम्राज्य के स्तम्भ हो रहे थे। या तो स्वयं वे लोग और उनकी खुशामद करनेवाले सदा अकबर की सेवा में उपस्थित रहा करते थे। प्रायः ऐसी ही बातें छिड़ा करती थीं जिनसे बैरमखाँ की बाते अकबर को स्मरण हो आवें और उसका मन इन लोगो की ओर से खटक जाय। उनमे से अनेक लोग तो ऐसे भी थे जो खुल्लम खुल्ला समझाते थे। पर अकबर का हृदय शुद्ध था और इस बालक का प्रताप था जिससे कुछ भी नहीं होता था। बल्कि दूसरे लोगो के मन मे भी इन बातों से दया उत्पन्न होती थी। अकबर इसे मिरजा खाँ कहा करता था, और आरम्भिक वर्णन मे इतिहास-लेखक इसे प्राय. मिरजा खाँ ही लिखते हैं।

यह होनहार बालक अकबर की छाया मे पलने और बढने लगा। बडा होकर यह ऐसा निकला कि इतिहास-लेखक इसकी विद्या सम्बन्धी योग्यता की साक्षी देते हैं। बल्कि इसकी विद्वत्ता से बढकर वे इसकी बुद्धिमत्ता या विचार-शीलता और स्मरण-शक्ति की प्रशंसा करते है। किसी ने स्पष्ट और विस्तृत रूप से यह नही बतलाया कि अब्दुल रहीम ने कौन-कौन सी विद्याएँ और कलाएँ आदि सीखी थी अथवा किस प्रकार और कहाँ तक विद्या का अध्ययन किया था। लक्षणो से जान पड़ता है कि इसने अपने जीवन का आरम्भिक समय दूसरे अमीरो के लडको की तरह खेल-कूद मे नष्ट नही किया, क्योकि जब यह बडा हुआ, तब विद्वानो का बहुत बडा गुणग्राहक हुआ। लेखको और कवियो से बहुत प्रेम रखता था। स्वयं भी अच्छा कवि था। अरबी भाषा का ज्ञाता था और उसमे बहुत अच्छी तरह बात-चीत करता था। तुरकी और फारसी भाषाएँ भी, जो बाप-दादा से उत्तराधिकार के रूप मे मिली थी, नही छोडी। प्रत्येक बात का तुरन्त उत्तर देता था, बातें हास्य-रस से पूर्ण होती थी। उनमे बहुत बारीकी होती थी, और सभी विषयो पर बहुत अच्छी तरह बातें करता था। सस्कृत मे भी अच्छी योग्यता प्राप्त की थी। युद्ध विद्या मे भी इसकी योग्यता बहुत अधिक और उच्च कोटि की थी।

इसके साथ कुछ ऐसे लोग थे जो इसके पिता के परम निष्ठ और जान निछावर करनेवाले सेवक थे। वे प्रेम की शृंखलाओ मे जकडे हुए थे और अपने भाग्य को इस होनहार प्रतापी के हाथ बेचे हुए बैठे थे। उन्हे यह आशा थी कि कभी तो इसके यहाँ से वर्षा होगी और हमारे घर पर भी नाले गिरेंगे। अन्त पुर

मे कुछ भले घर की महिलाएँ भी थीं जो दीनता और विवशता की चादर मे लिपटी हुई बैठी थीं। कामनाएँ, आशाएँ और निराशाएँ उनके विचारों में इन्द्रजाल का सा कौतुक करती होंगी, कभी उन्हें बनाती होंगी और कभी बिगाड़ती होंगी। बादशाह का दरबार भी ईश्वर के यहाँ की अद्भुत वस्तुओं का संग्रहालय था। अमीर और सरदार वहाँ से रत्नों की पुतलियाँ बनकर निकलते थे। इसके साथी देखते थे और रह जाते थे। मन मे कहते थे कि इसका पिता भी किसी दिन जिसे चाहता था, उसे रत्नों और मोतियों में छिपा देता था। भला ईश्वर करे कि लड़का उस प्रकार के पुरस्कार पानेवाले लोगों में ही सम्मिलित हो जाय। उस ईश्वर में सब सामर्थ्य है। यदि वह चाहे तो फिर वही तमाशा दिखला सकता है। दिन-रात, सबेरे-सन्ध्या, आधी रात अर्थात् हर समय उनके हाथ आकाश की ओर ही रहते थे और उनका ध्यान सदा ईश्वर की ओर रहता था। वे अपने मन में कह रहे थे कि ईश्वर करे, ऐसा ही हो। ईश्वर करे, ऐसा ही हो।

मिरजाखाँ बहुत ही सुन्दर और रूपवान् था। जिस समय बाहर निकलता था, उस समय लोग देखते रह जाते थे। जो लोग नहीं जानते थे, वे राह मराह पूछते थे कि यह किस अमीर का लड़का है। चित्रकार उसके चित्र बनाते थे और उन चित्रों से अमीर लोग अपने मकान और दीवानखाने सजाते थे। बादशाह भी उसे अपने दरबार और सभा का शृंगार समझते थे। बैरमखाँ की कृपा से खाने-पीने और रहनेवाले आदमी सैकड़ों नहीं बल्कि हजारों थे। कोई तो परम निष्ट था। किसी पर समय ने विपत्ति ढाई थी। कोई विद्वान् था, कोई कवि और कोई

परम गुणी था। जो इसे देखता और इसका नाम सुनता था, वही आकर आशीर्वाद देता हुआ बैठता था। और उसके छोटे से दीवानखाने की साधारण दशा देखकर उसके पिता के वैभव और उपकारों का स्मरण करता था और आँखों में आँसू भर लाता था। उन लोगों की एक-एक बात उसके और उसके साथियों के लिये मरसिए या उस कविता का काम करती थी, जो किसी मृत व्यक्ति की मृत्यु पर दुःख प्रकट करने के लिये और उसके गुणों का कीर्तन करने के लिये होती है। और उनकी वह बात रक्त को आँसू बनाकर बहानेवाली होती थी।

जब कभी यह बादशाह के साथ दिल्ली, आगरे या लाहौर आदि जाता था, तब-तब बुड्ढे-बुड्ढे कला-कुशल अनेक प्रकार के उपहार, चित्रकार लोग चित्र और माली लोग डालियाँ लेकर इसके यहाँ आते थे। उस समय इसके अन्तःपुर में दो प्रकार के भाव उत्पन्न होते थे। एक तो इस बात का दुःख और पश्चात्ताप होता था कि हाय, हम इन लोगों से क्या लें, जब कि इनके लानेवालों को उनकी योग्यता के अनुसार कुछ दे न सकें। और कभी उन लोगों का ये सब पदार्थ लेकर आना एक शुभ शकुन का रंग दिखलाता था। मन में विचार आता था कि इन उपहारों की चमक-दमक से जान पड़ता है कि कभी हमारा भी रंग पलटेगा, और हमारे मुरझाए हुए हृदय पर भी प्रफुल्लता की ओस छिड़की जायगी।

अकबर बहुत अच्छी तरह जानता था कि माहम के वंश तथा पक्ष के अमीरों और सरदारों में से कौन-कौन से ऐसे लोग हैं जो इसके पिता से व्यक्तिगत द्वेष रखते हैं। इसलिये उसने खान आजम मिरजा अजीज कोकलताश की बहन माह बानो बेगम के

साथ मिरजाखाँ का विवाह कर दिया। इसमें उसका यह उद्देश्य था कि इसकी हिमायत के लिये भी दरबार मे प्रभाव उत्पन्न हो और बढ़े।

सन् ९७३ हि० मे इसके सौभाग्य के क्षेत्र मे एक शुभ शकुन की ज्योति दिखलाई पड़ी। अकबर उस समय खान आजम पर चढ़ाई करने गया हुआ था। उसने अपने अपराधो के लिये क्षमा-प्रार्थना की। उधर पंजाब से समाचार पहुँचा था कि मुहम्मद हकीम मिरजा काबुल से सेना लेकर आया है और लाहौर तक पहुँच गया है। अकबर ने खानजमाँ के अपराध क्षमा करके उसका देश उसी के पास रहने दिया और स्वयं पंजाब का प्रबन्ध करने के लिये चला। मिरजाखाँ को खिलअत और मन्सब प्रदान करके मुनइमखाँ की उपाधि दी (यद्यपि मुनइमखाँ उस समय स्वयं जीवित और उपस्थित था); और कुछ बुद्धिमान् अमीरो के साथ आगरे जाने के लिये विदा किया जिसमें वे लोग राजधानी में पहुँच कर वहाँ की व्यवस्था और रक्षा का पूरा-पूरा प्रबन्ध करे।

हमारी समझ में इसमें दो शुभ उद्देश्य थे। एक तो यह कि सुननेवाले लोग आकृति नहीं देखते, जो वे यह कहे कि बुड्ढा मुनइमखाँ नौ बरस का कैसे हो गया। हाँ, लोगो पर आतंक छा गया कि पुराना और अनुभवी काम करनेवाला घर पर उपस्थित है। खानखानाँ शब्द भी बहुत अच्छा है। पिता और पुत्र मे कुछ बहुत बड़ा अन्तर नहीं है। जरा साम्राज्य की नीति तो देखो। यही पेच है जिन्हे आजकल लोग "पालिसी" कहते हैं। यदि किसी नीति का आधार कोई अच्छा कार्य और अच्छा विचार हो तो वह असत्यता से युक्त नीति भी अच्छी ही है। हाँ, यदि

उसकी जड मे स्वार्थ और लोक-पीडन हो, तो वह छल और कपट है।

इसके सौभाग्य के उदय या वीरता के गुण की चमक हि० तेरहवी शताब्दी (?) मे सभी छोटे बडो की दृष्टि मे आई, जब सन् ९८० हि० मे खान आजम मिरजा अजीज कोका अहमदाबाद गुजरात मे घिर गया और अकबर दो महीने का मार्ग सात दिन मे चलकर गुजरात मे जा खडा हुआ। बडे-बडे पुराने और अनुभवी सरदार रह गए। भला तेरह बरस के लडके की क्या बिसात थी। वह बराबर बादशाह के साथ था। उसके मन का आवेश और वीरता की उमंग देखकर अकबर ने उसे लश्कर के मध्य भाग मे स्थान दिया था जो अच्छे सेनापतियो के लिये उपयुक्त होता है।

अब वह इस योग्य हुआ कि हर समय दरबार मे उपस्थित रहने लगा और बादशाह के अनेक कार्य करने लगा। प्राय कामो के लिये बादशाह की जबान पर इसी का नाम आने लगा और इसकी जेब भी हाथ डालने के योग्य (अर्थात भरी हुई) रहने लगी। अनुभवी नवयुवको, सुनते हो ? इसके लिये यही समय नाजुक था। स्मरण रहे कि अमीरो और भले आदमियो के लडके जो कुमार्गगामी होते है, उनके बिगडने का पहला स्थान यही है। हाँ, चाहे इसे उसका सौभाग्य कहो और चाहे उसके पिता की अच्छी नीयत कहो, यही अवसर उसके लिये उन्नति के आरम्भ का बिन्दु हुआ। मैने बडे लोगो मे सुना है और स्वय भी देखा है कि पिता का किया हुआ पुत्र के आगे आता है और पिता के विचारो का फल पुत्र को अवश्य मिलता

है। जो रुपया मिरज़ाखाँ के पास आता था, उससे वह अपने दस्तरख्वान का विस्तार करता था—लोगो को खूब खिलाया-पिलाया करता था। वह अपनी शान, सवारी और दरबारी रौनक बढाता था। बड़े-बड़े विद्वान् और गुणी आते थे। अब्दुलरहीम उन्हे पुरस्कार तो नहीं दे सकता था, पर जो कुछ देता था, वह इतनी सुन्दरता से देता था कि उसके छोटे-छोटे हाथों का दिया हुआ पुरस्कार लेनेवालों के हृदय पर बड़े-बड़े पुरस्कारो का सा प्रभाव उत्पन्न करता था। इसका वर्णन करते समय इसके निष्ट सेवकों और नमक खानेवालो को न भूलना चाहिए और उनकी भी प्रशंसा करनी चाहिए। क्योकि यह इसकी व्यवहार-कुशलता और योग्यता की परीक्षा का समय था जिसकी वे वर्षों से प्रतीक्षा कर रहे थे। इसमे सन्देह नहीं कि वे लोग परीक्षा मे पूरे उतरे। यह उन्हीं की बुद्धिमत्ता थी कि हर काम मे थोडी सी चीज मे बहुत बड़ा फैलाव दिखलाते थे। वे रुपए खर्च करते थे और अशर्फियो के रंग दिखाई पड़ते थे। और यही सब बातें थीं जो उस समय अमीरो के वास्ते दरबार मे मन्सब आदि की वृद्धि के लिये उनकी सिफारिश करती थीं। एशियाई शासनो का यह एक प्राचीन नियम था कि जिस आदमी का ठाठ-बाट अमीरो का सा देखते थे और जिस आदमी के यहाँ बहुत से लोगो को खाते-पीते देखते थे, उसी की अधिकतर और जल्दी-जल्दी उन्नति और पद-वृद्धि करते थे।

सन ९८२ हि० मे अकबर ने अहमदाबाद का शासन मिरज़ा को सौंपना चाहा, पर वह हठी अमीरज़ादा अड़ गया और बिगड़ बैठा कि मुझे यह बात कदापि स्वीकृत नहीं है।

उक्त स्थान सीमा पर का था और वहाँ सदा विद्रोहो और उपद्रवो की घुडदौड हुआ करती थी। अकबर ने वह सेवा इस नवयुवक को प्रदान की और इसने बहुत ही धन्यवादपूर्वक वह स्वीकृत की। उस समय इसकी अवस्था उन्नीस बीस वर्ष की रही होगी। बादशाह ने नीचे लिखे चार अनुभवी अमीर उसके साथ कर दिए जो बहुत दिनो से अकबर के दरबार का नमक खाकर पले थे। साथ ही इसे समझा दिया कि अभी तुम्हारी युवावस्था है और तुम्हे यह पहली पहली सेवा मिल रही है। इसलिये जो काम करना, वह वजीरखाँ के परामर्श से करना; क्योकि वह इस वंश का बहुत पुराना सेवक है। मीर अलाउद्दीन किजवीनी को आईनी के पद पर नियुक्त किया और प्रयागदास को, जो हिसाब-किताब के काम मे अपना जोड नही रखता था, दीवानी दी, और सैयद मुजफ्फर बारहा को सेना की बख्शीगिरी पर नियत किया।

सन् ९८६ हि० मे शहबाजखाँ राणा के कोमलमेर इलाके पर सेना लेकर चढा। मिरजाखाँ उसके कहने पर उसकी सहायता करने के लिये पहुँचे। कोमलमेर का किला, कोकन्दाक किला और उदयपुर बादशाही सेना के अधिकार मे आ गया। राणा पहाडो मे भाग गया। शहबाजखाँ बाज की तरह उडा और दो घोडेवाले सवारो को लिये उसके पीछे-पीछे अकेला ही बहुत घूमा, पर वह हाथ न आया। हाँ, उसके दो घोडोवाले सिपाहियो का प्रधान अधिकारी पकडा गया और लाकर दरबार मे हाजिर किया गया और उसका अपराध क्षमा हुआ।

खानखानाँ कभी तो अपने इलाके मे और कभी दरबार मे

अनेक प्रकार की सेवाएँ किया करता था और अपनी योग्यता दिखलाता था। सन् ९८८ हि० मे उसके सन्तोप, दयालुता, विश्वास और साहस पर दृष्टि रखकर उसे अर्ज-बेगी की सेवा सौंपी गई। इस पद पर रहनेवाले को अभिलापियो के निवेदन बादशाह की सेवा में उपस्थित करने पड़ते थे; और बादशाह उन निवेदनो पर जो आज्ञा देते थे, वह आज्ञा उन लोगों तक पहुँचानी पड़ती थी।

इसी सन् में अजमेर के इलाके मे उपद्रव हुआ। अजमेर का सूबेदार रुस्तमखाँ मारा गया। उसमें कछवाहे राजाओं की उद्दंडता भी सम्मिलित थी। वे राजा लोग राजा मानसिंह के भाई-बन्द थे। अकबर को हर एक बात के हर एक अंग का ध्यान रहता था। इसलिये रणथम्भौर खानखानाँ की जागीर मे देकर आज्ञा दी कि वहाँ जाकर उपद्रव शान्त करो और उपद्रवियो को उपद्रव करने के लिये दंड दो।

सन् ९९० हि० मे जब शाहजादा सलीम अर्थात् जहाँगीर की अवस्था बारह-तेरह वर्ष की हुई होगी और खानखानाँ अट्ठाइस बरस का रहा होगा, खानखानाँ को शाहजादे का शिक्षक नियुक्त किया।

मैं प्राय रियासतों के सम्बन्ध मे सुना करता हूँ कि वहाँ का राजा छोटी अवस्था का है। सरकार ने अमुक व्यक्ति को उसका शिक्षक या ट्यूटर (Tutor) नियुक्त करके भेजा है। इस अवसर पर अवश्य कुछ मिनट ठहरना चाहिए और उस समय के शिक्षक की आज-कल के ट्यूटर से तुलना करके देखनी चाहिए। यह देखना चाहिए कि प्राचीन काल मे बादशाह लोग

किसी शिक्षक में क्या-क्या गुण देखते थे। आज-कल सरकार जो बातें देखती है, वह तो सब लोग देख ही रहे हैं। पुराने समय के लोग सबसे पहले तो यह देखते थे कि शिक्षक स्वयं रईस हो और उत्तम तथा रईस वंश का हो। रईस का शब्द ही आज तक सब लोगों की जबान पर है। मगर मैं देखता हूँ कि इस समय के रईस का स्वरूप दिखलाने के लिये बहुत विस्तृत व्याख्या करने की आवश्यकता है। हमारे समय के शासक लोग तो इससे इतना ही अभिप्राय रखते हैं कि किसी व्यक्ति ने रूस या काबुल की लड़ाई में जाकर कभी किसी सड़क या इमारत का ठेका लेकर या कभी नहर की नौकरी करके बहुत सा धन कमा लिया है। वह अपने घर में बैठा हुआ है। बग्घी में चढ़कर हवा खाने के लिये निकलता है। जब विलायत से युवराज आते हैं या कोई लाट साहब जाते हैं या कमिश्नर साहब एक राज बनाते हैं, तो उसमें सबसे अधिक चन्दा देता है। वही सरकार में रईस माना जाता है और इसे दरबार में कुरसी मिलने की भी आशा है। डिप्टी कमिश्नर साहब ने एक ऐसी मोरी निकाली जिससे नगर की सारी गन्दगी निकल जाय। इसने उससे पहले से भी अधिक चन्दा दिया। इसलिये यह बहुत बड़ा और उदार रईस है। इसे खान बहादुर या राय बहादुर की उपाधि भी मिलनी चाहिए। और यह म्युनिसिपल मेम्बर भी हो, और आनरेरी मजिस्ट्रेट भी हो। यदि तहसीलदार या सरिश्तेदार यह सूचित करता है कि हुजूर इससे कुलीनों और वास्तविक रईसों के हृदय पर चोट पहुँचेगी, तो साहब लोग कहते हैं कि वेल, यह छिन्नतबाला लोग है। यह रईस है। अगर वह लोग भी रईस होना चाहते हैं,

तो हिम्मत दिखलावें। हम इसको सितारे हिन्द बनावेंगे। तब वह लोग देखेंगे। नए रईस की यह शान है कि जब घर से निकलते हैं, तो चारों ओर देखते रहते हैं कि हमे कौन-कौन सलाम करता है और सब लोग क्यो नहीं सलाम करते। विशेषतः जिसे कुलीन देखते हैं, उसे और भी अधिक दबाते हैं और समझते हैं कि हमारी रईसी तभी प्रमाणित होगी, जब ये झुककर हमें सलाम करेंगे। अब नगर की मजिस्ट्रेटी उनके हाथ मे है। सबको झुकना ही पडता है। न झुकें तो रहे कहाँ। पर उनके अभिमान और आडम्बर और बार-बार दिखाव दिखाने से केवल कुलीन लोग ही तंग नहीं होते, बल्कि महल्लेवाले भी तंग रहते हैं। जिन लोगो ने वास्तविक कुलीनों के पूर्वजो को देखा है, वे उन्हें स्मरण करके रोते हैं। और जो लोग उन्हें भूल गए थे, उनके हृदय मे प्रेम के मिटे हुए अक्षर फिर से स्पष्ट हो जाते हैं। पारखी लोगों ने ऐसे रईसो का अँगरेजी रईस और अँगरेजी शरीफ नाम रक्खा है।

आज-कल कभी-कभी रईस शब्द समाज में हमारे कानो तक पहुँचता है। यह बात भी सुनने के योग्य है। मान लीजिए कि अच्छे कपडे पहने हुए दो वृद्ध सज्जन किसी समाज या जलसे में आए। एक मीर साहब हैं और दूसरे मिरजा साहब हैं। आइए, तशरीफ रखिए। मीर साहब वहाँ के उपस्थित लोगो से कहते हैं कि जनाब, आपने हमारे मिरजा साहब से मुलाकात की? जी नहीं, मुझे तो मुलाकात का मौका नहीं मिला। जनाब, आप देहली के रईस हैं। मिरजा साहब एक ओर देखकर कहते हैं—जनाब, हमारे मीर साहब से अब तक आपकी मुलाकात नहीं हुई? जी नहीं, बन्दे को तो ऐसा मौका नहीं मिला। अजी आप लखनऊ के

रईस है। अब लखनऊ मे जाकर पूछिए 'कि मीर साहब कहाँ रहते हैं ? कुछ हो तो पता लगे। माँ टेनी, बाप कुलंग। बच्चे देखो रग-विरंग। लाहौल बिला कूवत इल्ला बिल्ला ! मिरजा साहब को देहली मे ढूँढिए तो बाप बबनियाँ, माँ पदनियाँ, मिरजा मननियाँ। नई रोशनी, असलियत का यह अन्धेर ! जो चाहे, सो बन जाय।

अब जरा यह भी सुन लो कि पुराने जमाने के वृद्ध लोग किसको रईस कहते थे और पुराने समय के बादशाह लोग रईसो पर क्यो जान देते थे। (१) मेरे मित्रो, तुम्हारे पूर्वज उसको रईस कहते थे जिसका मातृकुल और पितृकुल दोनो ही अच्छे और उत्तम होते थे। उन पर यह कलक न हो कि माँ दासी थी या दादा ने घर मे डोमनी रख ली थी। याद रखना कि चाहे कोई कितना ही बड़ा धनवान और सम्पन्न क्यो न हो, पर दोगले आदमी की लोगो की दृष्टि मे प्रतिष्ठा नही होती थी। जरा सी बात देखते हैं तो साफ कह बैठते हैं कि मियाँ, क्या है। आखिर तो डोमनी-बच्चा है। एक कहता है कि मियाँ, नवाबजादा है तो क्या हुआ ! पर लौंडी की यही तो रग है। उसका असर जरूर ही आवेगा। विना आए रह ही नहीं सकता।

(२) रईस के लिये यह भी आवश्यक था कि वह भी और उसके पूर्वज लोग भी धनवान् और सम्पन्न हो। वे दान देने मे बहुत उदार हो और लोगो का हाथ उनके दानशील हाथ के नीचे रहा हो। यदि कोई दरिद्र का लडका था और अब धनवान हो गया तो कोई उसका आदर न करेगा। उसे कुछ भी न समझेगा। वह यदि ब्याह-शादी के अवसर पर किसी को खिलाने-पिलाने के

समय या लेने-देने मे बल्कि एक मकान बनाने में जान-बूझ कर किसी अच्छे हेतु से भी कुछ कम खर्च करेगा, तो कहनेवाले अवश्य कह देगे कि साहब यह क्या जाने। कभी इसके बाप-दादा ने किया होता तो यह भी जानता। कभी कुछ देखा होता तो जानता।

(३) उसके लिये यह भी आवश्यक होता था कि स्वयं उदार हो, खाने-खिलानेवाला हो, दूसरो को लाभ पहुँचानेवाला और उनका उपकार करनेवाला हो। यदि वह कंजूस होगा और अधिकार-सम्पन्न होने पर भी उसके द्वारा लोगो को कोई लाभ न पहुँचेगा, तो कोई उसे कुछ भी न समझेगा। सब लोग साफ कह देंगे कि यदि उसके पास धन है तो अपने घर मे लिए बैठा रहे। हमे क्या है।

(४) उसके लिये यह भी आवश्यक था कि उसका आचरण और व्यवहार आदि बहुत अच्छा हो। जिस आदमी का आचरण अच्छा नहीं होता, वह चाहे लाख धनवान हो, पर लोगो की दृष्टि मे वह घृणित और तुच्छ ही होता है। उसका धन लोगों की आँखो मे नहीं जँचता। लोग उसपर भरोसा नहीं करते।

अच्छा, इन बातों से अभिप्राय यही था कि प्राचीन काल के बादशाह लोग किसी आदमी में यही सब गुण ढूँढते थे। बात यह है कि जो व्यक्ति इन गुणो से युक्त होकर अमीर होगा, उसके बाप-दादा भी अमीर होंगे। उसकी बातों और उसके कामो का सब लोगो की दृष्टि मे और हृदय में भी बहुत आदर और मान होगा। सब लोग उसका लिहाज करेंगे। उसके कहने के विरुद्ध आचरण करना उन्हे अन्दर से सह्य न होगा। ऐसे

एक आदमी को अपना कर लेना मानो बहुत से लोगो के समूह पर अधिकार कर लेना है। वह जहाँ जा खडा होगा, वहाँ बहुत से लोग भी उसके पास आ खडे होगे। समय पर राज्य के जो काम उस से निकलेगे, वह कमीने अमीर से नही निकलेगे। भला कमीने का साथ कौन देता है! और जब यह बात नही, तो फिर बादशाह उसे लेकर क्या करे!

(५) उसके लिये यह भी आवश्यक होता था कि चाहे विद्या की दृष्टि से वह बहुत बडा विद्वान् या पडित न भी हो, पर देश की विद्या सम्बन्धी भाषाओ का अवश्य ज्ञाता हो। यदि एशियाई देशो मे है तो अरबी और फारसी भाषाओं की साधारण पुस्तकें अवश्य पढा हो। प्रसिद्ध विद्याओ और कलाओ की प्रत्येक शाखा का उसे ज्ञान हो। उसे उत्तम कोटि के कौशल का अनुराग हो, और जब उसकी चर्चा होती हो, तो उससे उसे आनन्द आता हो। जिसे विद्याओ और गुणो आदि का ज्ञान न होगा, जिसे इन सब बातो मे आनन्द न आता होगा और जिसका हृदय तथा मस्तिष्क इस प्रकाश से प्रकाशमान न होगा, वह शिष्य के मस्तिष्क को क्या प्रकाशमान करेगा! जिसको बहुत बडे देश का बादशाह होना है और अनेक देशो तथा देशवासियो का रंजन करना है, उसका शिक्षक यदि ऐसा होगा जो विद्या सम्बन्धी चर्चा मे प्रसन्न होता होगा और ज्ञान की बात सुनकर जिसका मन और अधिक सुनने को चाहता होगा, तो शिष्य के हृदय पर भी उसका अच्छा प्रभाव पड सकेगा और उसके यहाँ सदा उसकी मनोरजक चर्चा होती रहेगी। यदि स्वय ही उसे इन सब बातो मे वास्तविक आनन्द न आता होगा तो रूखे-सूखे और खाली विषयो की

चकवक से वह शिष्य के हृदय को अपनी ओर क्या अनुरक्त करेगा ! और वह अनुरक्त ही कब होगा ! विद्या सम्बन्धी विषय उसके सामने ऐसे अच्छे ढंग से उपस्थित करने चाहिएँ, जैसे अच्छा स्वादिष्ट पदार्थ खाकर या अच्छी सुगन्धि सूँघ कर या सुन्दर फूल देख कर आनन्द आता है, वैसे ही विद्या विषयक बातें सुन कर भी आनन्द आवे। और तुम स्वयं समझ लो कि जब तक विद्या मे आनन्द न हो, तब तक कुछ आना सम्भव ही नहीं। जिसमे यह बात नहीं, वह विद्या का क्या आदर करेगा। और उसके यहाँ विद्वानों का क्या आदर होगा ! और वह अपने देश में विद्या और कलाओं आदि का क्या प्रचार कर सकेगा ! गुणी लोग उसके दरबार में क्या एकत्र हो सकेंगे ! और जब यह बात नहीं, तो फिर राज्य ही नहीं।

उस समय धर्म और विद्या की भाषा अरबी थी। अर्द्ध-साहित्यिक अर्थात् दरबारी दफ्तरो की और पत्र-व्यवहार आदि की भाषा फारसी थी। तुरकी का बड़ा आदर था और उससे बहुत कुछ काम भी निकलता था। वह उन दिनो वैसी ही थी, जैसी आज-कल अँगरेजी है, क्योंकि वह उस समय के बादशाहों की भाषा थी। सब अमीर लोग एशियाई कोचक के रहनेवाले थे। उनकी भी और सैनिको की भाषा भी तुरकी थी। ईरानी लोग भी तुरकी बोलते थे। और तुरकी समझते तो सभी लोग थे। स्वयं अकबर बहुत अच्छी तरह तुरकी बोलता था। यद्यपि खानखानाँ का जन्म इसी देश में हुआ था और उसका पालन-पोषण भी यहीं हुआ था, पर फिर भी तुरकमान की हड्डी थी। अपने पिता के नमक-हलाल और निष्ठ सेवकों की गोद मे उसका

ज्ञान प्राप्त करते थे, और वह इसलिये कि वे स्वयं भले और बुरे की परख कर सकें। घोडे पर चढ़ना, तीर चलाना, भाला चलाना, तलवार चलाना आदि-आदि सैनिक कलाओं मे वे बहुत उच्च कोटि का अभ्यास करते थे। आखेट या शिकार को उन लोगो ने अपने अभ्यास का साधन बना रखा था। परन्तु ये सब गुण अकबर के समय तक ही उपयोग मे आते रहे, क्योंकि वही था, जो स्वयं चढाइयाँ करके सेनाएँ ले जाता था और अचानक शत्रु की छाती पर जा खडा होता था। युद्ध-क्षेत्र मे वह स्वयं खड़ा होकर सेनाओ को लडाता था। वह स्वयं तलवार पकड कर आक्रमण करता था, नदी मे घोडा डालता था और पार उतर जाता था। उसकी तरह से फिर और कोई बादशाह नहीं लडा। सब आराम-तलब या विलास-प्रिय हो गए। बस उनके यहाँ खुशामद करनेवाले लोग कहते है कि सरकार, आप का प्रताप ही शत्रुओ को मार लेगा। सरकार बैठे हुए प्रसन्न हो रहे हैं। जब तक शिकार और उक्त सब कलाएँ उक्त उद्देश्य से हो, तब तक इन्हे गुण या कला, जो कुछ कहो, वह सब ठीक है। और नहीं तो वही आलमगीर का कहना ही ठीक है कि शिकार करना तो उन्ही लोगो का काम है जिन्हे और कोई काम नहीं होता।

ऊपर विद्याओ और कलाओ के जितने अंग बतलाए गए हैं, उन सब का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लेने के उपरान्त मनुष्य को सभा-चातुरी आती है। उसका सब से बडा अंग सुन्दर, स्पष्ट और प्रभावशाली रूप मे बातें करना और बुद्धिमत्तापूर्वक अच्छे अच्छे उपाय सोचना है। और यह एक ईश्वर-दत्त गुण है।

ईश्वर जिसे यह गुण दे, उसी को आ सकता है। एक पढ़ा-लिखा विद्वान् एक विषय पर कोई बात कहता है। पर किसी को पता भी नहीं लगता कि वह क्या कह गया। एक साधारण पढ़ा-लिखा मनुष्य किसी दरबार या सभा में कोई बात इस प्रकार कहता है कि अशिक्षित नौकर-चाकरों तक के कान भी उसी की ओर लग जाते हैं।

सब से बढ़कर बात यह है कि वह बात-चीत करने का समय और अवसर पहचाने। आँखों के मार्ग से लोगों के हृदय में उतर जाय। हर एक मनुष्य की प्रकृति और विचार का ठीक ठीक अनुमान कर ले, और तब उसी के अनुसार अपने अभिप्राय को भाषण का परिच्छद पहनावे और उसपर वर्णन का रंग चढ़ावे। मैं तो उन गुणी और प्रभावशाली वक्ता सज्जनों का दास हूँ जो एक भरी सभा में भाषण कर रहे है। वहाँ भिन्न भिन्न सम्मतियाँ, भिन्न भिन्न विचार और भिन्न भिन्न धर्म रखनेवाले बहुत से लोग बैठे हैं। पर उनके भाषण का एक शब्द भी किसी को नहीं खटकता। किसी को उनकी कोई बात बुरी नहीं लगती। यदि किसी खोन्चेवाले का लड़का या जुलाहे का लड़का मसजिद में रह कर बड़ा भारी विद्वान् हो गया या कालिज में पढ़कर बी० ए०, एम्० ए० हो गया, तो हुआ करे। ऊपर बतलाए हुए उद्देश्यों, सभा-चातुरी और सभा के नियमों आदि का उस बेचारे को क्या ज्ञान हो सकता है। वह स्वयं तो ये सब बातें जानता ही नहीं। फिर वह शिष्य को क्या सिखलावेगा। दरबारों-सरकारों की ड्योढ़ी तक जाने का सौभाग्य उसके बाप-दादों को तो प्राप्त हुआ ही नहीं। वह बेचारा वहाँ की बातें क्या

जाने। यदि कहीं लिखा हुआ पढकर या सुन-सुनाकर उसने उसका कुछ ज्ञान प्राप्त भी कर लिया, तो उससे क्या होता है। कहाँ ये और कहाँ वे जो इसी नदी की मछली थे। अपने बडे लोगो के साथ तैरकर बडे हुए थे। उनका दिल खुला हुआ था। समय पडने पर उन्हे नियम आदि सोचने की आवश्यकता नहीं पडती थी। समय पर उनके अगो मे आप से आप वही गति उत्पन्न हो जाती थी। अब भी नवीन ज्ञान और नवीन शिक्षा-प्राप्त लोग यदि कही जा पहुँचते है, तो उन्हे सलाम करना भी नहीं आता। मेरे मित्रो, उनके होश ही ठिकाने नहीं रहते। यदि वे चलते है तो उनका पैर ठिकाने पर नहीं पडता। और देखनेवाले लोग भी वहीं किनारे खडे है। बात-बात को परख रहे है कि यहाँ चूका, वहाँ भूला, यह ठोकर खाई, वह गिरा। फिर कह देते है कि ये मौलवी साहब अथवा बाबू साहब टकसाल-बाहर है। खैर, अब तो न वह दरबार है और न वह सरकार। यह ससार टूटा-फूटा कारखाना है। इसका रग बदलता जाता है। अच्छा हुआ कि ईश्वर ने सब का परदा रख लिया।

देखने के योग्य बात यह है कि इस होनहार नवयुवक ने अपनी विद्याओ, कलाओ, गुणो, व्यावहारिक नियमो, अभ्यासो और रग-ढग, गम्भीरता तथा उदारता से बादशाह के हृदय पर ऐसे अच्छे-अच्छे प्रभाव डाले होगे कि बडे-बडे पुराने और अनुभवी अमीरो के होते हुए भी उसने युवराज की शिक्षा-दीक्षा के लिये इसी को नियुक्त किया। जब उसे यह उच्च पद प्रदान किया गया, तब उसने इसके लिये धन्यवाद स्वरूप एक बहुत बडे और राजसी ढग के जलसे का प्रबन्ध किया। साथ ही बाद-

शाह की सेवा मे यह भी प्रार्थना की कि वह स्वयं पधार कर उस जलमे की शोभा बढ़ावे। बादशाह भी वहाँ पधारे। पानी को बरसना, नदी को बहना और बैरमखाँ के लड़के को उदारता कौन सिखलावे। उसने किले से लेकर अपने घर तक चांदी-सोने के फूल लुटाए। जब घर पास आया, तब मोती बरसाए। पैर पोछने की जगह मखमल और जरी के काम के कपड़े बिछाए। घर मे सवा लाख रुपए का चबूतरा बनाया। उस पर बादशाह को बैठा कर उसे भेट दी। वहाँ से उठा कर दूसरे भवन मे ले गया। वह चबूतरा लुटवा दिया। बादशाह पर मोती और जवाहिर निछावर किए। अमीरों ने वे सब लूटे। जो पदार्थ उसने बादशाह की सेवा में भेट किए थे, उनमे ऐसे ऐसे रत्न, वस्त्र और शस्त्र आदि थे जो राजकोष मे ही रखने के योग्य थे। अच्छे अच्छे हाथी और असील घोडे, जो बादशाही कारखानो की शोभा थे, भेट किए। दरबार के सब अमीरों को भी उनके पद और मर्यादा के अनुसार अनेक विलक्षण पदार्थ भेंट करके प्रसन्न किया और ये सब काम कर के स्वय प्रसन्न हुआ। परन्तु वास्तविक प्रसन्नता की बात उसके उन वृद्ध साथियो से पूछनी चाहिए जो आज के दिन की आशा पर जीवन का पल्ला पकड़े हुए चले आते थे। कडवी चाय की प्यालियाँ और फीके शरबत पीते थे और ईश्वर से प्रार्थनाएँ कर-कर के जीते थे। पर उन वृद्धा स्त्रियों की प्रसन्नता का शब्दो मे किसी प्रकार वर्णन ही नहीं हो सकता, जिन्हे न तो दिन को आराम था और न रात को नींद थी। जिस समय घर में अकबर का दरबार लगा होगा, उस समय उन वृद्धा स्त्रियों की क्या दशा हुई होगी। वे ईश्वर को

लाख-लाख धन्यवाद देती होगी। उनके नेत्रों से मारे प्रसन्नता के अश्रुपात हो रहा होगा। और यदि सच पूछो तो इससे बढ़कर उनके लिये प्रसन्नता की और कौन सी बात हो सकती थी। सूखी नहर मे पानी आया। विनष्ट उपवन फिर से हरा-भरा हुआ। उजड़ा हुआ खेत फिर से लहराया। जिस घर मे धुँधले दीपक जला करते थे, उस मे सूरज निकल आया।

मिरजा खाँ के गुणों और योग्यताओं का स्रोत बहुत दिनो से बन्द पड़ा हुआ था। सन ९९१ हि० मे वह फुहारा होकर उछला। बात यह हुई कि अकबर का जी यह चाहता था कि सारे भारतवर्ष मे इस सिरे से उस सिरे तक मेरा सिक्का चले। गुजरात की विजय के उपरान्त सुलतान महमूद गुजराती का नमक खानेवाला एतमाद खाँ नाम का एक पुराना सरदार उससे अलग होकर अकबर के अमीरो मे सम्मिलित हो गया था। वह सदा बादशाह का ध्यान उसी की ओर आकृष्ट किया करता था। इन दिनो अवसर देख कर उसने कुछ और अमीरो को भी अपने अनुकूल कर लिया और बहुत से ऐसे उपाय बतलाए जिनसे उस देश की आमदनी बढ़ सके, खर्चों मे किफायत हो और सीमा आगे हो सरके। सन ९९१ हि० मे उसने अवसर देखकर फिर निवेदन किया। कुछ अमीरो को अपनी ओर मिलाकर उनसे भी वही बात कहलवाई। अकबर ने देखा कि यह आदमी उस देश की सब बातो का बहुत अच्छा ज्ञान रखता है। इसलिये उसने यह उचित समझा कि शहाबउद्दीन अहमद खाँ को गुजरात से बुला ले और उसे सूबेदार बना कर वहाँ भेज दे।

अब वहाँ का हाल सुनो। मामला और भी अधिक पेचीदा

होता जा रहा था। याद करो कि अकबर ने गुजरात पर जो चढाई की थी, वह इब्राहीम हुसैन मिरजा आदि तैमूरी शाहजादों की जड उखाड़ चुकी थी। लेकिन फिर भी उसके गले-सड़े रेशे जमीन के अन्दर बाकी बचे हुए थे। उनके नाम लेनेवाले बहुत से बलख और बदख्शाँ-वाले तथा तुर्क लोग अभी तक जीवित थे। जब उन्होंने अकबर के प्रबन्धो की दृढता देखी, तब तलवारें जंगलो मे छिपाकर बैठ गए। जो सरदार उधर से जाता था, हेर-फेर करके उसके साथ रहनेवाले लोगो की नौकरी कर लेते थे। उपाय-चिन्तन के चूहे दौड़ाते थे और मन ही मन ईश्वर से प्रार्थनाएँ किया करते थे कि हमे फिर से कोई अच्छा अवसर हाथ लगे तो हम भी अपना काम निकाले।

जिस समय शहाबउद्दीन अहमद खाँ वहाँ पहुँचा था, उस समय उसे ज्ञात हो गया था कि ये उपद्रवी लोग पुराने हाकिम (वजीरखाँ) की व्यवस्था को भी बिगाड़ना चाहते थे, और अब भी ये लोग इसी ताक मे है। यह सरदार पुराना सैनिक और वीर था। उसने उनके नेताओं का पता लगाया और सबको सेना, थाने, तहसील आदि मे स्थान देकर हर एक को काम मे लगा दिया। तात्पर्य यह कि उसने इस प्रकार नीति-कौशल से उनके बल और जत्थों को तोड़ दिया था। जब बादशाह को यह समाचार मिला तो उसने यह आज्ञा भेजी कि इन लोगो को कदापि मत जमने दो और अपने विश्वसनीय तथा निष्ठ आदमियों से काम लो।

बुड्ढे सरदार को इस प्रकार की व्यवस्था करने का अवसर नहीं मिला। वह बात टालता रहा, बल्कि उनके पद और इलाके आदि बढ़ाकर दम-दिलासे से काम लेता रहा। जिस समय

एतमादखाँ पहुँचा, उस समय अकबर के विचारो और नए प्रबन्धो के सुर उनके कानो मे पहुँच चुके थे। उपद्रवियो ने विचार किया कि पहले शहाबउद्दीन अहमदखाँ के जीवन का अन्त कर देना चाहिए। एतमादखाँ यहाँ नया-नया आवेगा। सुलतान महमूद का लडका मुजफ्फर गुजराती, जो इस समय छिपा हुआ अज्ञात-वास कर रहा है, उसे बादशाह बनावेगे।

उन्ही मे से एक उपद्रवी ने इधर भी आकर यह समाचार दिया। शहाब का रग उड गया। परन्तु बादशाह की आज्ञा के कारण उसका भी उत्साह भंग हो रहा था, इसलिये उसने न तो इस विषय मे कोई जाँच-पडताल की और न इसकी कोई व्यवस्था ही की। इन लोगो को कहला भेजा कि तुम यहाँ से निकल जाओ। ये लोग तो हृदय से यही बात चाहते थे। झट-पट वहाँ से निकले और अपने पुराने परगनो मे पहुँच कर उपद्रवियो को एकत्र करने लगे। साथ ही मुजफ्फर के पास चिट्ठियाँ दौडाई। कुछ उपद्रवी शहाब मे पानी की तरह मिल गए और उस बुड्ढे से उन्होने इस बात की अनेक शपथे ले ली कि जब वह दरबार मे जाय, तो इन लोगो को भी अपने साथ लेता जायगा। वे अन्दर ही अन्दर और लोगो को बहकाते थे और अपने साथियो को यहा के समाचार पहुँचाते थे। इन सब लोगो का नेता मीर आबिद था।

विधाता का यह नियम है कि ससार मे वह जिन लोगो को बढाता है और जिन बातो को उनके बढने का साधन बनाता है, कुछ समय के उपरान्त वह ऐसा अवसर भी लाता है कि उन्ही लोगो को घटाता भी है, और जिन बातो को किसी समय उसने

उनके ऊपर चढ़ने के लिये सीढ़ियों के रूप मे बनाया था, उन्ही बातो को नासमझी का उदाहरण बनाकर घटाता है और उस समय वे आगे बढनेवाले जिन लोगो को अपने पैरों तले कुचल कर चढ़े-चढ़े थे, उन्ही को या उनकी सन्तान को उनके आगे बढाता है। पाठको को स्मरण होगा कि बैरमखाँ जैसे बुद्धिमत्ता के पर्वत को एक बुढ़िया अन्ना और उसके साथियो के हाथ से किस प्रकार तोड़ा! उन सब लोगो का तो उसी वर्ष मे अन्त हो गया था। बस एक यही रकम बाकी बच रही थी। ये शहाबखाँ से शहाबउद्दीन अहमदखाँ बनकर पंज-हजारी मन्सब तक पहुँच चुके थे और प्राय॰ युद्धो मे सेनापतित्व भी कर चुके थे। अब तमाशे देखो। उसी बैरमखाँ के पुत्र के सामने वह शहाब को किस तरह पानी-पानी करता है।

आजाद तो पुरानी लकीरो का फकीर है। बुड्ढो की बाते स्मरण करता है और उन्हींमे मग्न हो जाता है। वे कहा करते थे कि जाओ मियाँ, जैसा करोगे, वैसा अपने लड़के-पोतो के हाथों पाओगे। खैर, अब चाहे इसे बैरमखाँ की अच्छी नीयत कहो और चाहे मिरजाखाँ के प्रताप का बल कहो, शहाब की बुद्धिमत्ता उसे लडको के सामने मूर्ख बनाती है।

एतमादखाँ और ख्वाजा निजामउद्दीन* जो दरबार से भेजे गए थे, पटन नामक स्थान मे पहुँचे। शहाब का वकील या प्रतिनिधि आया हुआ था। उन्होंने अपना वकील उसके साथ कर दिया। दरबार से अपने साथ उसके लिये जो घोड़े,

---

* तबकाते अकबरी के लेखक। देखो परिशिष्ट।

खिलअत और विदा होने का आज्ञापत्र लेकर गए थे, वह सब उसके पास भेज दिया। शहाबखाँ स्वागत करने के लिये कई कोस आगे बढ़ कर पहुँचे। आज्ञापत्र लेकर सिर पर रखा। उठे, बैठे, सलाम किया, पढ़ा और उसी समय कुंजियाँ उन्हें सौंप दीं। आस-पास के किलों आदि पर उसने जो अपने थाने बैठाए हुए थे, वे सब उठवा मँगाए। नए और पुराने सब मिलाकर प्राय ८० किले थे। उनमें से बहुत से तो उसने स्वयं बनवाए थे और बहुतों की मरम्मत कराके उन्हें ठीक किया था। उपद्रव यहीं से आरम्भ हो गया। थानों के उठते ही वहाँ की कोली और करास आदि जंगली जातियाँ उठ खड़ी हुईं और उन्होंने प्राय किलों को उजाड़ कर सारे देश में लूट-मार मचा दी।

शहाबखाँ परवान नामक स्थान के किले से निकल कर उस्मानपुर में उसी नगर के किनारे के एक महल्ले में आ गए। एतमादखाँ, शाह अबू तुराब और ख्वाजा निजामउद्दीन अहमद ने बहुत प्रसन्नतापूर्वक किले में प्रवेश किया। जो नमक-हराम मीर आबिद पहले शहाबखाँ के यहाँ नौकर था, वह पाँच सौ आदमियों का एक जत्था बना कर अलग हो गया। वहाँ से उसने एतमादखाँ के पास सँदेसा भेजा कि हमारे पास कुछ भी साधन या सामग्री आदि नहीं है। हम शहाब के साथ नहीं जा सकते। उन्होंने जो जागीर * दी थी यदि वह हमारे पास

---

* उन दिनों सरदारों आदि को जागीर रूप में इलाके मिल जाया करते थे। वे लोग अपना व्यय और अपनी सेना का वेतन वहीं से वसूल कर लिया करते थे।

वहाल रखिए, तो हम आपकी सेवा करने को प्रस्तुत हैं। नहीं तो प्रजा भी ईश्वर की है और देश भी ईश्वर का है। हम विदा होते हैं। एतमादखाँ के कान खडे हो गए। परन्तु उन्होने न तो कुछ सोचा और न कुछ समझा। उन्होंने कहला भेजा कि विना वादशाह की आज्ञा के वे जागीरे तुम्हारे पास वेतन स्वरूप नहीं रह सकती। हाँ, मैं अपनी ओर से रिआयत करूँगा। उन्हे तो केवल एक वहाना चाहिए था। वे साफ अपने साथियों मे जा मिले। अव उपद्रव और भी वढ गया।

एतमादखाँ को सरकार से जो सेना मिली थी, वह अभी तक नहीं आई थी, इसलिये उसने सोचा कि इन उपद्रवकारियो को शहावखाँ के साथ लड़ाकर अपना रंग जमाना चाहिए। इसलिये शाह और ख्वाजा के हाथ सँदेसा भेजा कि तुम्हारे नौकरों ने उपद्रव किया है। अभी तुम मत जाओ। जरा ठहर जाओ और इन लोगों की व्यवस्था करो। वादशाह की सेवा मे तुम्हे इसका उत्तर लिखना पड़ेगा। उसने कहा कि ये उपद्रवी लोग तो ईश्वर से इसी दिन के लिये प्रार्थनाएँ कर रहे थे और मेरी हत्या करना चाहते थे। अव इस वात ने ऐसा रूप धारण कर लिया है कि इसका सुधार हो ही नहीं सकता। भला मुझमे क्या हो सकता है। अव तुम जानो और ये लोग जाने। परन्तु इस प्रकार देश पर अधिकार और शासन करने का काम नहीं चलता। इन लोगों को जागीर देकर परचाओ। यदि ऐसा न होगा, तो अभी तो उपद्रवकारियों की संख्या कम है; पर शीघ्र ही वह वहुत वढ़ जायगी और सारे देश मे

विद्रोह हो जायगा। सब इसी देश के और जंगली लोग हैं। अभी कोई योग्य और विश्वसनीय सरदार इनमें नहीं पहुँचा है। अपने और मेरे आदमियों को भेजो जो अचानक जाकर उन पर टूट पड़े और उन लोगों को तितर-बितर कर दें। एतमादखाँ ने कहा कि तुम नगर में आ जाओ। फिर परामर्श करने पर जो निश्चय होगा, उसी के अनुसार काम किया जायगा। ये भी शहाबउद्दीन अहमदखाँ थे। कोई लड़के नहीं थे। साहस के दूध की धारें देखी थीं। कहला भेजा कि मैंने तो स्वयं ऋण लेकर अपनी यात्रा की व्यवस्था की है। सेना की दशा बहुत ही बुरी है। बड़ी कठिनता से नगर के बाहर निकला हूँ। लौटकर फिर नगर में आने में ऊपर से और भी अधिक कठिनता होगी। तात्पर्य यह कि इसी प्रकार हीले-बहाने किए। एतमादखाँ ने कहा कि तुम नगर में चले जाओ। तुम्हारी सहायता के लिये मैं अपने कोष से धन दूँगा। इस प्रकार लड़ाई का ऊँच-नीच समझने, उत्तर-प्रत्युत्तर करने और धन का मान निश्चित करने में कई दिन बीत गए।

शहाब ताड़ गए कि यह दक्खिनी सरदार पुराना सिपाही है। बातों ही बातों में काम निकालना चाहता है। यह चाहता है कि जब तक इसकी सेना आवे, तब तक मुझे और मेरे आदमियों को रोककर अपना बल और सम्मान बनाए रखे। जब इसकी सेना आ जायगी, तब यह मुझे यों ही जंगल में छोड़ देगा। यदि इसकी नीयत अच्छी होती तो यह पहले ही दिन रुपयों की व्यवस्था करता और मेरे लश्कर की सामग्री आदि ठीक कर के परिस्थिति को सँभाल लेता। इसलिये शहाब अहमदाबाद के

मैदान से कूच कर के कड़ी नामक स्थान में जा पड़े, जो वहाँ से बीस कोस की दूरी पर है। उपद्रव करनेवाले और विद्रोही लोग मातर नामक स्थान मे पडे हुए थे। वे तुरन्त काठियावाड़ में जा पहुँचे। सुलतान महमूद गुजराती का लड़का मुज्फ्फर उन दिनों काठियावाड़ मे आकर अपनी ससुराल मे छिपा हुआ बैठा था। उसे उधर का सारा हाल सुनाकर खूब सब्ज बाग दिखलाए, बड़ी बड़ी आशाएँ दिलाई। उसके बाप-दादा का देश था। उसे इससे बढ़कर और कौन सा अवसर चाहिए था! वह तुरन्त उठ खड़ा हुआ। देश के कुछ उपद्रवी नेताओं को भी उसने अपने साथ ले लिया। पन्द्रह सौ के लगभग काठी लुटेरे उसके साथ हो गए। वे सब लोग इतनी शीघ्रता से आए कि ढोलका नामक स्थान मे पहुँचकर ही उन लोगो ने साँस लिया। वे यह सोच रहे थे कि शहाबखाँ यहाँ से दरबार की ओर जा रहा है। पहले चलकर इसी पर रात के समय छापा मारें, या किसी बसे हुए नगर को जा लूटें। एतमादखाँ पुराना सिपाही और इसी देश का सरदार था। पर उसकी बुद्धि पर भी परदा पड़ गया। जब उसने सुना कि मुजफ्फर ढोलका मे आ पहुँचा है, तब उसके भी होश उड़ गए। उसने अपने लड़के और दो तीन सरदारों को अहमदाबाद में ही छोड़ा और उनसे कहा कि मैं स्वयं अभी जाकर शहाबखाँ को ले आता हूँ। परामर्शदाताओं ने उसे बहुतेरा समझाया कि शत्रु बारह कोस पर आकर ठहरा हुआ है। इस समय यहाँ से अठारह कोस पर जाना और नगर को इस प्रकार अकेला छोड़ना ठीक नहीं है। पर उस बुड्ढे ने कुछ भी न सुना और ख्वाजा निजामउद्दीन को अपने साथ लेकर वहाँ से चल

पड़ा। उसके निकलते ही बदमाशों ने यह समाचार शत्रु के यहाँ जा पहुँचाया। शत्रु-पक्ष के लोग स्वयं ही चकित थे। वे यह भी नहीं जानते थे कि इस समय हमें कहाँ जाना चाहिए और क्या करना चाहिए। पर यह समाचार सुनते ही वे सब लोग उठ खड़े हुए और सीधे चलकर अहमदाबाद जा पहुँचे। एक एक पग पर सैकड़ों लुटेरे उसके साथ होते गए। सरगंज नामक स्थान वहाँ से तीन कोस पर है। जब मुजफ्फर वहाँ पहुँचा, तब तो कुछ मुजावरों ने आत्मिक बादशाहों या औलियाओं के दरबार से उठकर फूलों का एक छत्र सजाया और लेकर उसके सामने उपस्थित हुए। उसने इसे बहुत ही शुभ शकुन समझा और गोली की चोट नगर में प्रवेश किया *। उन दिनों पहलवान अली सीसरतानी उस नगर का कोतवाल था। आते ही उसे पछाड़कर कुरबान किया। नगर में प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया। बादशाही सरदारों के पास बल ही क्या था! उन्होंने अपनी जान लेकर भागने को ही सब से बड़ी विजय समझा। नगर का कोई रक्षक नहीं रह गया। उपद्रवियों ने लूट-मार आरम्भ कर दी। घर और बाजार, धन-सम्पत्ति, जवाहिरात और सामग्री से भरे हुए थे। बात की बात में वे सब लुटकर साफ हो गए।

उधर एतमादखाँ ने शहाब के पास पहुँच कर यह रंग जमाया कि दो लाख रुपए नगद मुझसे लो और जो परगने तुम्हारी जागीर में थे, उन्हें भी तुम अपने पास ही रखो और

---

* इसने नगर में रहगर दरवाजे से प्रवेश किया था जो उस समय किसी दरवाज का नाम था।

लौटकर अहमदाबाद चलो। वह किस्मत का मारा तैयार हो गया। दोनो बुड्ढे साथ ही वहाँ से चल पड़े।

शहाब अपने नौकरों का हाल जानता था। रात के समय बीच मे कुरान रखे गए। शपथो और वचनों से सब बातें पक्की की गई और सब ने वहाँ से प्रस्थान किया। थोड़ी ही दूर आगे बढ़े थे कि नगर से भागकर आए हुए लोग मिले। वे लोग जो धूल वहाँ पर उड़ाकर आए थे, वह यहाँ उनके चेहरो पर दिखाई पड रही थी। सुनते ही दोनों बुड्ढो के रंग हवा हो गए। आगे पीछे के सरदार इकट्ठे हुए। ख्वाजा निजामउद्दीन ने कहा कि घोड़े उठाओ और चल कर नगर पर आक्रमण करो। कहीं साँस मत लो। यदि शत्रु निकलकर सामने आवे और लडे तो वहीं लड मरो। या यदि वह हम लोगों के सौभाग्य से किला बन्द करके बैठा हो तो किले पर चारो ओर से घेरा डाल दो। एतमादखाँ की सेना भी आती ही होगी। उस समय जैसा होगा, देखा जायगा। पर शहाब तो लौटकर घर की ओर जा रहा था। उसका जी उचाट था। लश्कर-वालो के बाल-बच्चे भी सब साथ थे। उसने भूल यह की थी कि जब अहमदाबाद की ओर लौटने लगा था, तब भी उसने उनके कच्चे साथ को कुकरी में नहीं छोड़ा था। खैर, मारा-मार सब लोग नगर के पास पहुँचे। लश्करवाले लोग उस्मानपुर में आकर डेरे डालने लगे और अपने बाल-बच्चों के रहने की व्यवस्था करने लगे। उस समय भी निजामउद्दीन आदि कुछ साहसी लोगों ने कहा था कि इसी समय बागे उठाओ और नगर में धँस जाओ। सहज काम को जान-बूझकर कठिन न करो। पर उन बुड्ढों ने नहीं माना।

शत्रु-पक्ष को इन लोगों के आने का समाचार मिल चुका था। वह खूब अच्छी तरह युद्ध का सारा प्रबन्ध करके नगर के बाहर निकला। नदी के किनारे सेना का किला बाँध कर वह अच्छी तरह वहीं जम गया। शहाब आदि के पक्ष के लोग अपने बाल-बच्चों और सामान आदि की व्यवस्था कर ही रहे थे कि युद्ध आरम्भ हो गया। शहाब अपने साथ आठ सौ सिपाहियों को लेकर एक ऊँचे स्थान पर जा जमे। उन्होंने सेना को आगे बढाया और सेना ने भी अपने कर्त्तव्य का पूरा-पूरा पालन किया। पर सरदारों ने नमक-हरामी की। उनमे से जो लोग नमक-हलाल थे, वे वहीं हलाल हो गए। शहाब की भी नौबत आ गई। उनके साथी उन्हे छोड कर भागे। उनका घोडा गोली से छिदा। आस-पास केवल भाई-बन्द रह गए। बहुत से शत्रुओं को सामने देखकर जान निछावर करनेवाले एक सेवक ने बाग पकड कर खींची। उन्होंने भी इतने को ही बहुत समझा और वहाँ से भागे। उन्हीं के नौकरों मे से एक नमक-हराम ने उनकी पीठ पर तलवार मारी। पर ईश्वर की कृपा से हाथ ओछा पडा। ऐसे भागे कि पटन नहरवाला मे जाकर साँस लिया जो वहाँ से पचास कोस था। और इतना बडा रास्ता एक ही दिन मे तै किया।

काठी, कोली आदि जातियों के तथा और भी अनेक जंगली लुटेरे शत्रुओं के साथ लगे हुए थे। वे सब टिड्डियों की तरह उमड पडे और सारे लश्कर को काट कर उन्होंने बात की बात मे सफाई कर दी। नगद, सामान, हाथी और घोडे आदि इतने लिए कि उनका कोई हिसाब नहीं लगा सकता। अब सैनिकों के बाल-

बच्चो की जो दुर्दशा हुई होगी और उनपर जो बीती होगी, उसका अनुमान पाठक स्वयं ही कर सकते हैं।

विजयी मुजफ्फर विजय के घोड़े पर सवार होकर मूँछों पर ताव देते हुए नगर को लौटे। शहाब के नमक-हराम सेवक अपने मुँह की लाली बढ़ाते हुए अब उनके दरबार में जा उपस्थित हुए। उन्होंने जब देखा कि यहाँ सारा राजसी ठाठ प्रस्तुत है, तो दरबार कायम किया। सब को वैसी ही उपाधियाँ प्रदान की गईं, जैसी बादशाहो के यहाँ से प्रदान की जाती हैं। जामा मसजिद में उनके नाम का खुतबा पढ़ा गया। जो पुराने सरदार नहूसत के कोनो में छिपे हुए बैठे थे, उन्हे बुला भेजा। सब सुनते ही दौड़ पड़े। तात्पर्य यह कि जंगलो के लुटेरे, दीन, दरिद्र, देश के पुराने सिपाही, बुखारा और तुर्किस्तान के रहनेवाले सैनिक आदि जो तैमूरी शाहजादो की खुरचन थे, आ आकर इकट्ठे होने लगे। दो सप्ताह के अन्दर ही अन्दर मुजफ्फर के आस-पास चौदह हजार आदमियो की सेना एकत्र हो गई। यद्यपि मुजफ्फर ने इस प्रकार अच्छी विजय प्राप्त कर ली थी, पर फिर भी उसे कुतुबउद्दीनखाँ का खटका लगा हुआ था, इसलिये उसने कुछ सरदारो को तो यहीं छोड़ा और आप सेना लेकर बड़ौदे की ओर चला, क्योंकि कुतुबउद्दीनखाँ उस समय वहीं था। इधर दरबार मे एतमादखाँ की सेना भी आ पहुँची। शहाबउद्दीन आदि पटन नामक स्थान मे पिटे-कुटे पड़े थे। पर अब हो ही क्या सकता था! वे लोग उसी स्थान को दृढ़ करके वहीं बैठ गए।

शहाबखाँ और एतमादखाँ दोनों ही बराबर कुतुबउद्दीनखाँ

को लिख रहे थे कि तुम उधर से आओ और हम लोग इधर से चलते है। मुजफ्फर को दबा लेना कोई बहुत बडी बात नही है। पर कुतुबउद्दीनखॉ पज-हजारी सरदार और बहुत पुराना सेनापति था। ये दोनो बुड्ढे भी उसे अपने काम का एक ही समझते थे। वह दूर से बैठा बैठा टाल रहा था। जब दरबार मे क्रोधपूर्ण आज्ञापत्र पहुँचा, तब कुतुब अपने स्थान मे हिला। अब जब कि समय बीत चुका था, वह अपने सैनिको को वेतन आदि देकर उन्हे प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगा। वह छावनी से बडौदे तक ही पहुँचा था कि मुजफ्फर ने उसे आ दबाया। दोनो पक्षो मे लडाई हुई। वह अध-मरो की तरह हाथ-पैर मारकर बडौदे के किले के खँडहर मे दबक गया। सेना और सरदार जाकर मुजफ्फर के साथ मिल गए। अब धन-सम्पत्ति और वैभव का क्या पूछना है! ईश्वर की महिमा देखो। यह वही मुजफ्फर है जो तीस रुपए महीने पर आगरे मे पडा हुआ था। वहाँ से एक नाक और दो कान लेकर भागा था। आज उसके पास तीस हजार सैनिको का लश्कर है और अपने पिता के देश का मालिक बना हुआ बैठा है।

अब जरा इधर का हाल भी सुनो। मुजफ्फर तो इधर आ गया। उसके शेरखॉ फौलादी नामक सरदार ने कहा कि अब मुझे भी तो अपना लोहा दिखलाना चाहिए। वह सेना लेकर पटन की ओर चला। वहॉ वह बादशाही अमीरो को अपना करतब दिखलाना चाहता था। उसने स्वय तो पटन पर चढाई की और थोडी सी सेना कडी नामक स्थान की ओर भेज दी। ख्वाजा ने जो कडा कर के बादशाही सेना को बाहर निकाला।

जो सेना कड़ी पर चढ़ी आ रही थी, तुरन्त उसे जा मारा। अब शेरखाँ का सामना करने का अवसर आया। परन्तु बुड्ढे सरदारों पर ऐसी नामर्दी छाई थी कि उन्होंने घबराकर कहा कि इस समय यही उत्तम है कि पटन से हटकर जालौर मे चल बैठें। ख्वाजा निजामउद्दीन यद्यपि नवयुवक सिपाही था, पर फिर भी उसने इन लोगो को लज्जित कर के रोका और स्वयं सेना लेकर शत्रु के सामने जा पहुँचा। सामना होते ही मुठभेड हो गई और गुथकर लड़ाई होने लगी। दो ही हजार तो सेना थी, पर थे सब पुराने-पुराने सिपाही। वह पाँच हजार सैनिको के मुकाबले पर बढ़ कर म्याना नामक स्थान मे पहुँचा। नवयुवक सिपाही ने बडा साका किया। बहुत अधिक मार-काट हुई और रक्त की नदियाँ बही। खेत काटकर डाल दिया। युद्ध मे विजय प्राप्त की। शेरखाँ नोक-दुम गुजरात की ओर भागा। बादशाही सेना को बहुत अच्छी लूट हाथ आई। जरा आँसू पुँछ गए। सब लोग गठरियाँ बाँध बाँध कर दौड़े कि चल कर पटन में रख आवें। ख्वाजा बहुत समझाता रहा कि यह बहुत अच्छा अवसर है। गुजरात खाली पड़ा है। बागें उठाए हुए चले चलो। पर किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। बेचारा बारह दिनो तक वही पड़ा रहा। इतने में समाचार आया कि मुजफ्फर ने बडौदा मार लिया।

अब वहाँ की दशा भी कुछ सुन लीजिए। बड़ौदे का जो किला कुतुबुद्दीन की बुद्धि से भी बढ़कर बोदा था, मुजफ्फर ने घेर लिया और उसपर तोपें मारना आरम्भ कर दिया। उस समय की उसकी पुरानी दीवारें मुजफ्फर के प्रण और कुतुब के साहस से भी

बढकर निराधार थी, इसलिये गिरकर जमीन के बराबर हो गई। परन्तु कुतुब की आयु का किला उससे भी बढकर गया-बीता था। उस मूर्ख बुड्ढे ने जैन उद्दीन नामक अपने एक विश्वसनीय सरदार को शत्रु के पास सन्धि की बात-चीत करने के लिये भेजा। यद्यपि दूत को कहीं कोई कष्ट नहीं पहुँचाया जाता, पर फिर भी मुजफ्फर ने उसे देखते ही हजारों बरस के पुराने मुरदों मे मिला दिया। कुतुब का सितारा ऐसे चक्कर मे आया हुआ था कि अब भी उसकी समझ मे कुछ न आया। इसी सँदेसे भुगताने मे यह निश्चय हुआ कि मै मक्के चला जाऊँगा। मुझे बाल-बच्चो और धन-सम्पत्ति सहित सुरक्षित रूप से यहाँ से निकल जाने दो। इतना बडा सरदार, इस प्रकार बहुत ही दुर्दशा और कायरता से शत्रु के दरबार मे उपस्थित हुआ और वहाँ उसने बहुत ही दीनता-पूर्वक झुक कर सलाम किया।

पर फिर भी वह अकबर के यहाँ का पंज-हजारी सरदार था। कई पीढियों से साम्राज्य की सेवा करता आ रहा था। बहुत दिनो तक शाहजादो का शिक्षक रह चुका था। मुजफ्फर ने मिलने के समय उसका बहुत आदर-सम्मान किया। उठकर उसका स्वागत किया और मसनद-तकिए पर उसे स्थान दिया। बातो ने उसके आँसू पोछे, पर साथ ही हाथो से रक्त भी बहाया। और ऐसा बहाया कि उसका पल्ला मिट्टी के नीचे जाकर कारूँ के गड़े हुए खजानो मे मिल गया। उसके साथ चौदह लाख रुपए थे। वे सब मुजफ्फर ने ले लिए। खजानची उसकी व्यवस्था करने के लिये गया। दस करोड से भी अधिक रुपए गडे हुए थे। वह सब भी वे लोग निकाल लाए। नगद, सामग्री और धन-

सम्पत्ति का क्या ठिकाना है। और सब से बढ़कर मजे की बात यह है कि उसके आस-पास बड़े बड़े चार-हजारी और पाँच-हजारी सेनापति और अमीर, जैसे कलीचखाँ और शरीफखाँ, उसका अपना भाई मालवे का जागीरदार, पुरन्दर के सुलतान का पुत्र खास नौरंगखाँ आदि पास ही जिलों में बैठे हुए थे। वे सब लोग दूर से बैठे हुए तमाशा ही देखते रह गए।

हम बहे गम में बह गए और दोस्त आश्ना।
सब देखते रहे लबे साहिल खड़े हुए॥

(अर्थात् हम तो दुःख के समुद्र में बह गए और हमारे मित्र आदि किनारे पर खड़े हुए देखते रहे।)

मुजफ्फर के साथ हजारों तुर्क, अफगान और गुजराती सैनिकों का लश्कर हो गया। और एक थे तो दस, बल्कि हजार हो गए। पर इलाके इलाके में भूँचाल पड़ गया। ख्वाजा निजाम-उद्दीन यह सुनकर पटन की ओर लौटे। दरबार में आगे-पीछे समाचार पहुँचे; और जो समाचार पहुँचे, वे सब ऐसे ही पहुँचे। सब लोग सुनकर चुप थे। बादशाह को बहुत अधिक दुःख हुआ। जिस देश को उसने स्वयं दो बार चढ़ाई करके जीता था, वह इस प्रकार की दुर्दशा से हाथ से निकल गया।

पर फिर भी अकबर बादशाह था और प्रतापी बादशाह था। उसने इन सब बातों की कुछ भी परवाह नहीं की। दरबारी अमीरों में से बहुत से बारहा के सैयदों, ईरानी वीरों, सूरमा राजपूतों और राजाओं तथा ठाकुरों को चुनकर इस चढ़ाई के लिये नियत किया; और उस विशाल लश्कर का सेनापति नव-युवक मिरजाखाँ को बनाया, जिसका प्रताप भी उन दिनों अपने

पूरे यौवन पर था। पुराने और अनुभवी सरदारो को सेनाएँ देकर उसके साथ किया। कलीचखाँ के पास आज्ञापत्र भेज दिया गया कि तुरन्त मालवा पहुँचो और वहाँ से अमीरो को लेकर युद्ध मे सम्मिलित हो। दक्खिन के जिलो मे जो सरदार थे, उनके नाम भी जोर-शोर से आज्ञाएँ पहुँची कि शीघ्र युद्ध-क्षेत्र मे उपस्थित हो। मिरजाखाँ अपने साथियो को लेकर मारा-मार चला। पहाड़, जंगल, नदी, मैदान सबको लपेटता-सपेटता जालौर के रास्ते पटन को चला जा रहा था। परन्तु मार्ग मे उसे जो समाचार मिलता था, वह दुःखी और चकित करनेवाला ही मिलता था, इसलिये वह बहुत सोच-समझ कर पैर उठाता था। कुतुबउद्दीनखाँ का भी सब समाचार उसने सुन लिया, पर उसकी कोई बात सेना पर नहीं प्रकट की।

हम समझते है कि उस समय मिरजाखाँ को इस बात का ध्यान तो अवश्य आया होगा कि यह वही पटन है, जहाँ से मेरे पिता ने एक ही डग मे परलोक की यात्रा पूरी की थी। उस समय उसके अन्तःपुर की स्त्रियो की क्या दशा हुई होगी! मेरा उस समय क्या हाल हुआ होगा! और अहमदाबाद तक का मार्ग कितनी कठिनता से कटा होगा! यहाँ सब लोग ईद के चाँद की भाँति उसकी ओर देख रहे थे। कुछ सरदार स्वागत करने के लिये सिरोही तक चलकर आए थे। उन लोगो ने उस समय की सब बाते सुनाई और बहुत बहुत बधाइयाँ दी। वह केवल दिन भर वहाँ ठहरा और बिजली और हवा की तरह उड़कर पटन मे जाकर डेरे डाल दिए। सब अमीर और सेनाएँ उसका स्वागत करने के लिये आई। बधाइयाँ दी गई और आनन्द-सूचक बाजे

वजने लगे। यद्यपि उनका और शहाबउद्दीन अहमदखाँ का पीढ़ियों से वैर और वैमनस्य चला आता था, पर फिर भी उस समय वे सब बातें भूल गए। पता लगा कि मुजफ्फर ने विजयी हो कर कुछ और ही दिमाग पैदा किया है। पीछे की ओर का उसने बहुत ही दृढ प्रबन्ध कर लिया है और आगे खेमा डालकर युद्ध करने के लिये प्रस्तुत है।

नवयुवक सेनापति ने सरदारों को एकत्र करके मन्त्रणा करने के लिये सभा की। कुछ लोगों ने यह परामर्श दिया कि अकबर के प्रताप पर भरोसा करके बागें उठाओ, तलवारें खींचो और नगर पर जा पड़ो। कुछ लोगों की यह सम्मति थी कि कलीचखाँ मालवे से लश्कर लेकर आ रहा है। उधर बादशाह का आज्ञापत्र भी आ चुका है कि जब तक वह न आवे, तब तक युद्ध न कर बैठना। इसलिये उसकी प्रतीक्षा करना उचित है। यह भी बात-चीत आई कि यह अवसर बहुत ही विकट है। अब तो वही समय आ गया है कि यदि बादशाह स्वयं ही चलकर चढ़ाई करने के लिये यहाँ आवें, तो वीरता की लज्जा रह सकती है। नहीं तो ईश्वर जाने क्या परिणाम हो। दौलतखाँ एक बुड्ढा सरदार था और मिरजाखाँ का सेनापति कहलाता था। उसने कहा कि इस अवसर पर बादशाह को यहाँ तक बुलाना बहुत ही अनुचित है। कलीचखाँ की प्रतीक्षा करना भी इस समय युक्ति-संगत नहीं है। वह पुराना सेनापति है। यदि उसके सामने विजय हुई तो तुम्हारे सब साथी अपने अपने अंश से वंचित रह जायँगे। यदि तुम लोग यह चाहते हो कि विजय का डंका तुम्हारे नाम पर बजे, तो भाग्य पर भरोसा रखकर लड़

मरो। साथ ही यह भी समझ लो कि तुम बैरमखाँ के लड़के हो। जब तक स्वयं तलवार नहीं मारोगे, तब तक खानखानाँ नहीं बनोगे। अकेले ही विजय प्राप्त करनी चाहिए। अप्रतिष्ठित होकर जीवित रहने की अपेक्षा प्रतिष्ठापूर्वक प्राण दे देना कहीं उत्तम है। पुराने पुराने सेनापति तुम्हारे साथ हैं। सेना भी प्रस्तुत है। सब सामग्री भी है ही। फिर और चाहिए ही क्या ?

मिरजाखाँ भी अकबर के दरबार के एक चलते पुरजे आदमी थे। एक झूठ-मूठ की हवाई उड़ाई कि दरबार से आज्ञापत्र आ रहा है। अकबर के साम्राज्य के नियमों के अनुसार उस आज्ञापत्र के स्वागत की व्यवस्था की गई। वह आज्ञापत्र एक सार्वजनिक सभा में पढ़ा गया। उसका विषय यह था कि हमने अमुक तिथि को यहाँ से प्रस्थान किया है। स्वयं चढ़ कर आते हैं। जब तक हम न आवें, तब तक युद्ध आरम्भ न हो। आज्ञा-पत्र पढ़ने के उपरांत बधाइयों के बाजे बजने लगे। सारे लश्कर में बहुत आनन्द मनाया गया। दो दिन तक प्रतीक्षा की गई। पर दोनों ओर के वीर बढ़ कर अपने गुण और करतब दिखलाते थे। यद्यपि यह नीतियुक्त, झूठा और खाली जबानी जमा-खर्च था, पर फिर भी कम साहसवालों की कमर बँध गई और साहसी लोगों की कुछ और ही दशा हो गई। उधर शत्रुओं के जी छोटे हो गए।

मिरजाखाँ के डेरे अहमदाबाद से तीन कोस की दूरी पर सरगीच नामक स्थान पर पड़े हुए थे। मुजफ्फर शाह भीकन की मजार पर, अर्थात् वहाँ से दो कोस की दूरी पर था। मालवे की सेना के आने का समाचार सुन कर वह चाहता था कि उसके

आने से पहले ही लड़ मरे। उसने रात के समम छापा मारा, पर उसे सफलता नहीं हुई। मिरजाखाँ ने फिर मन्त्रणा के लिये सभा की। यही निश्चय हुआ कि जिस प्रकार हो, लड़ना चाहिए। इसलिये रात के समय ही चिट्ठियाँ बाँट दी गई। सभी सरदार रात के पिछले पहर ही अपनी अपनी सेनाओ को लेकर तैयार हो गए। एतमादखाँ को पटन की रक्षा करने के लिये छोड़ दिया गया था। उस्मानपुर के बहाने पर युद्ध-क्षेत्र हुआ। उस समय उसकी सेना दस हजार थी, और मुजफ्फर के पास चालिस हजार सैनिक थे। दोनो लश्कर परे बाँध कर आमने-सामने हुए। मिरजाखाँ ने दाहिने, बाएँ, आगे, पीछे सभी ओर सैनिको को बाँट कर नियुक्त कर दिया। वह बाल्यावस्था से ही अकबर की रकाब के साथ लगा फिरता था। ऐसा युद्ध-क्षेत्र उसके लिये कोई नया स्थान नहीं था। हाथियो की पंक्तियाँ सामने की ओर रखीं। ख्वाजा निजाम उद्दीन को दो सरदारो के साथ सेना देकर अलग कर दिया और कह दिया कि सरगीच को अपने दाहिने छोड़ कर आगे बढ जाओ, और जिस समय युद्ध मे दोनो पक्ष आमने-सामने या बराबर हो, उस समय पीछे की ओर से आकर शत्रु पर आक्रमण करो।

अब युद्ध आरम्भ हुआ और मुजफ्फर ने आगे बढ़ कर पहला वार किया। इधर से पहले तो लड़ाई को टालते थे। पर जब शत्रु सिर पर आ पहुँचा, तब इन लोगो ने भी आगे पैर बढाए। हरावल की सेना ने बडे साहस से बागें उठाई। पर बीच मे बहुत से कड़े उतार-चढ़ाव पडते थे। आगे की सेना, जो हरावल के पीछे थी, इतनी शीघ्रता से आगे पहुँची कि उसका

जो क्रम निश्चित किया गया था, वह टूट गया और लश्कर मे घबराहट फैल गई। हरावल के सरदार तलवारे पकड़ कर स्वयं आगे बढ गए थे। कई प्रसिद्ध और पुराने सैनिक मारे गए। सेना तितर-बितर हो गई। जिधर जिसका मुँह पड़ा, वह उधर ही जा पड़ा। जगह-जगह युद्ध होने लगे। नया सेनापति अपने साथ तीन सौ वीर सैनिक और एक सौ हाथियो की पंक्ति लिए हुए सामने खडा था और भाग्य के उलट-फेर का तमाशा देख रहा था। अपने मन मे कहता था कि वैरमखाँ का बेटा। जायगा तू कहाँ! पर देखो, अब ईश्वर क्या करता है। ऐसे समय मे भला आज्ञा क्या चल सकती थी! भला वह सेना को किधर से रोकता और किधर से बढ़ाता? केवल भाग्य पर भरोसा था। मुजफ्फर भी पाँच छ हजार सैनिको का परा जमाए हुए सामने खडा था। मिरजाखाँ ने देखा कि शत्रु का पल्ला भारी होने के लक्षण दिखाई पड रहे हैं। उस पर जान निछावर करनेवाले एक सेवक ने दौड कर उसकी बाग पर हाथ रखा। वह चाहता था कि मिरजाखाँ को वहाँ से घसीट कर बाहर निकाल ले जाय। उसकी यह कायरता देख कर मिरजाखाँ से न रहा गया। उसने आपे से बाहर होकर घोडा उठाया और फीलबानो को भी ललकार कर करना के द्वारा आवाज दी। उसका घोडा उठाना था कि अकबर के प्रताप ने अपना जादू दिखलाना आरम्भ किया। करना का शब्द सुन कर सब लोगो के हृदय मे आवेश उत्पन्न हुआ। सब लोग स्थान-स्थान पर शत्रु को पीछे ढकेल कर आप आगे बढे। भाग्य ने यह सहायता की कि इधर से तो इन्होने आक्रमण किया और उधर से ख्वाजा

निजाम उद्दीन भी मुजफ्फर की सेना के पिछले भाग पर आ टूटे। चारों ओर हल्ला मच गया कि अकबर बादशाह स्वयं चढ़ाई करके आया है। किसी ने समझा कि कलीचखाँ मालवे की सेना लेकर आ पहुँचा है। मुजफ्फर ऐसा घबराया कि उसके होश-हवास जाते रहे। आगे-आगे वह भागा और पीछे-पीछे उसके साथी भागे। शत्रु की सेनाएँ तितर-बितर हो गईं। हजारों का खेत हुआ। भला उनकी गिनती कौन कर सकता था। सन्ध्या होने को ही थी। शत्रु का पीछा करना उचित नहीं समझा गया। वह मामूराबाद के मार्ग से महेन्द्री नदी के रेगिस्तानों में निकल गया। उसके तीस हजार सैनिकों की भीड़-भाड़ घड़ियों में विकल होकर तितर-बितर हो गई। उसने लूट का बहुत सा जो माल मुफ्त में पाया था, वह जिन हाथों से लिया था, उन्हीं हाथों से दे गया। मिरजाखाँ ने वहाँ से इस युद्ध का विस्तृत विवरण बादशाह की सेवा में लिख भेजा। बादशाह ने ईश्वर को अनेकानेक धन्यवाद दिए; क्योंकि एक तो उस समय ईश्वर ने ऐसे अच्छे अवसर पर विजय प्राप्त कराई थी; और दूसरे यह कि वह विजय भी अपने हाथों के पाले हुए नवयुवक और वह भी अपने खान बाबा के लड़के के हाथों प्राप्त हुई थी।

मिरजाखाँ ने युद्ध से पहले यह मन्नत मानी थी कि यदि इस युद्ध में मैं विजयी होऊँगा तो अपना सारा धन, सामग्री, सम्पत्ति, खेमे, ऊँट, घोड़े, हाथी आदि सब कुछ गरीब सैनिकों और लश्करवालों को बाँट दूँगा, क्योंकि इन्हीं की कृपा से ईश्वर ने मुझे यह सारी सम्पत्ति दी है। और इस अच्छी नीयतवाले ने अन्त में ऐसा ही किया भी।

उदारता का अन्त—एक सिपाही ऐसे अवसर पर आया जब कि मिरजाखाँ कागजों पर हस्ताक्षर कर रहा था। उस समय उसके पास कुछ भी बच नहीं रहा था। केवल कलम-दान सामने था। वही उठाकर उसे दे दिया और कहा कि ले भाई, यही तेरे भाग्य में बदा था। ईश्वर जाने वह चाँदी का था या सोने का, सादा था या जड़ाऊ था। पर मुल्ला साहब इतने पर भी रुष्ट होते हैं और कहते हैं कि मिरजाखाँ ने अपने वचन का पालन करने के लिये अपने कुछ सेवकों को आज्ञा दी कि इस कलमदान का मूल्य नियत कर दो। हम उतना रुपया बाँट देंगे। दाम लगानेवाले बेईमान थे। उन्होंने उसके वास्तविक मूल्य का चौथा पाँचवाँ क्या बल्कि दसवाँ भाग भी मूल्य न लगाया। और उसमें से भी कुछ-कुछ तो आप ही हजम कर गए। फिर आगे चलकर कहते हैं कि दौलतखाँ लोधी, मुल्ला महमूदी आदि कुछ चपर-कनातियों ने उससे निवेदन किया कि यदि हम आपके नौकर हुए हैं, तो हमने कोई अपराध तो नहीं किया है, जो बादशाही नौकरों के नीचे इस प्रकार रखे रहें और वे हमसे ऊँचे रहें। तलवारें मारने में ये लोग हमसे कुछ आगे तो निकल ही नहीं जाते हैं। जिस प्रकार और लोग आपके सामने आकर अभिवादन आदि करते हैं, उसी प्रकार ये लोग भी क्यों न किया करें? ये वाहियात और मन को लुभानेवाली बातें मिरजाखाँ को अच्छी लगीं। पर फिर भी आखिर बैरमखाँ का लड़का था। खिलअत, घोड़े, सामग्री, पुरस्कार आदि बहुत कुछ उनको देने को तैयार किया। स्वयं तोशाखाने में जाकर बैठा और ख्वाजा निजामुद्दीन को (अब तो उनकी बुद्धिमत्ता और

चतुराई की धाक ही बँध गई थी) बुलवा कर उनसे परामर्श करने के लिये यह भेद कहा। किसी समय ख्वाजा की बहन बैरमखाँ को व्याही हुई थी। उसने कहा कि मै जानता हूँ कि यह सब तुम्हारे नौकरों की दुष्टता है। तुम्हारा ऐसा विचार नहीं है। पर जरा यह तो सोचो कि यदि हुजूर यह बात सुनेंगे, तो क्या कहेंगे। और यदि यह भी मान लिया जाय कि उन्होने कुछ भी न कहा, तो भी शहाबउद्दीन अहमदखाँ पंज-हजारी मन्सबदार ठहरा। उमर में बुड्ढा और तुमसे कहीं बड़ा है। वह आकर तुम्हारे सामने अभिवादन करे, यह शोभा नहीं देता। एक ऐसा समय था जब एतमादखाँ अपने निजी बीस हजार लश्कर का स्वामी था। वह पुराना अमीर है। वह आकर तुम्हारे सामने अभिवादन करे, भला इसमें क्या शोभा है! पायन्दाखाँ मुगल पुराना तुर्क है। आश्चर्य नहीं कि वह अभिवादन करने से इन्कार भी कर जाय। और बाकी जो लोग हैं, वे तो खैर किसी गिनती मे नहीं हैं। इस प्रकार समझाने-बुझाने से मिरजा समझ गए और उन्होंने उन लोगो से अभिवादन कराने का विचार छोड़ दिया।

संसार भी बहुत ही विलक्षण स्थान है। आखिर लड़का ही था। भाग्य ने हद से बढ़कर सहायता की। लाखो आदमी उसकी प्रशंसा करने लगे। चारों ओर से वाह-वाह होने लगी। और फिर बात भी वाह-वाही की थी। उसका दिमाग बहुत ऊँचे चढ़ गया।

सबेरे के समय अभी सूर्य ने अपना झंडा भी नहीं फहराया था कि खानखानाँ विजय का झंडा फहराता हुआ अहमदाबाद

नगर के अन्दर जा पहुँचा। यह वही नगर था जहाँ तीन वर्ष की अवस्था में उसका सारा घर लुट-पुटकर नष्ट हो गया था और तेरह वर्ष की अवस्था में जहाँ वह अकबर की चढाई में उसके साथ आया था। उसने नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि सब लोगों को अभय-दान दिया गया। प्रजा को उसने सान्त्वना और दिलासा दिया। बाजार खुलवाए और नगर तथा आस-पास के स्थानों का उपयुक्त प्रबन्ध किया। तीसरे दिन मालवे के कलीचखाँ आदि अमीर भी सेनाएँ लिए हुए आ पहुँचे। सब लोगों ने मिलकर परामर्श किया। नगर का भली भाँति प्रबन्ध करके ताजी आई हुई सेनाओं को साथ लेकर मुजफ्फरखाँ के पीछे चल पडे। सब लोगों ने बहुत कुछ समझाया-बुझाया कि अब सेनापति का गुजरात में ही रहना उचित है। पर वह कुछ कार्य और सेवा करके दिखलाना चाहता था। नया खून जोश मार रहा था। इसलिये उन लोगों के चले जाने पर मिरजाखाँ स्वयं भी उनके पीछे-पीछे रवाना हुआ।

मुजफ्फर खम्भात में जा पहुँचा। वहाँ जाकर उसने लोगों को परचाना और अपनी ओर मिलाना आरम्भ किया। उसे अपने पुराने स्वामी का पुत्र समझकर लोग भी उसके चारों ओर सिमटने लगे। व्यापारियों ने भी धन से सहायता की। दो हजार के लगभग सेना एकत्र हो गई। मिरजाखाँ भी बिजली की तरह पीछे-पीछे दस कोस की दूरी पर था। जब मुजफ्फरखाँ को उसके आने का समाचार मिला, तब वह वहाँ से निकल कर बडौदे में आ पहुँचा। मिरजाखाँ ने कलीचखाँ आदि कुछ सरदारों को सेना देकर आगे बढाया। ये लोग पुराने सिपाही थे। रास्ते की

खराबियाँ सामने देखकर इन लोगो ने आगे बढ़ना उचित न समझा। वह वहाँ से भी निकला। बादशाही सेना उसके पीछे-पीछे थी। अमीर लोग यदि आस-पास कहीं उपद्रवियो को देखते थे तो दाहिने-बाएँ होकर उनकी भी खबर लेते चलते थे। जब ये लोग नादौत नामक स्थान पर आए, तब मुजफ्फर वहाँ से उठकर पहाड़ मे घुस गया। वह चाहता था कि यहाँ जमकर एक मैदान और करना चाहिए और अन्तिम बार अपने भाग्य की परीक्षा कर देखनी चाहिए। उस समय उसकी सेना की संख्या तीस हज़ार और खानखानाँ की सेना की संख्या आठ-नौ हज़ार थी।

यह विजय-पत्र भी रुस्तम और अस्फन्दयार के विजय-पत्रों से कम नहीं है। मिरज़ाखाँ ने लश्कर का विभाग करके सेना के पैर जमाए। हरावल और दाहिने बाएँ पार्श्वों को बढ़ाया। पहले ही ख्वाजा निज़ामउद्दीन को आगे भेज दिया था, क्योंकि यह पहाड़ की लड़ाई थी। उससे कह दिया कि आगे चलकर देखो कि रास्ते का क्या हाल है, और शत्रु की सेना का क्या हिसाब और क्या रंग-ढंग है। जैसी परिस्थिति हो, उसी के अनुसार युद्ध आरम्भ किया जाय। ये पहाड़ की तराई मे जा पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही उसके पैदल सैनिकों से सामना हो गया। पर ख्वाजा निज़ामउद्दीन ने उन लोगों को ऐसा रेला कि सामने जो बड़ा पहाड़ था, उसी में वे लोग घुस गए। ये भी उन्हे दबाते हुए चले गए। वहाँ पहुँचकर देखा कि शत्रु का लश्कर एक लम्बी पंक्ति में मार्ग रोके हुए खड़ा है। सब स्थान युद्ध की सामग्री से पटे पड़े थे। पर फिर भी ये जाते ही उनसे भिड़ गए और ऐसा धूआँ-धार युद्ध हुआ कि दृष्टि काम नहीं करती थी। ख्वाजा ने करामात

यह की कि सवारों को पैदल करके
की पहाड़ी पर अधिकार कर लिया।
आदमी भेजे। वह भी बाएँ हाथ मे
भी आते ही शत्रु से टक्कर खाई।
पीछे हटा दिया और उसे दबाता हु
मे ख्वाजा के सामने का मार्ग खुल
अभी उसने बगलवाली पहाड़ी पर
बढकर पहाड पर चढ़ गई। शत्रु
दबाते हुए चले जा रहे थे, वे इन
ओर लौट पडे। यहाँ दोनो पक्षो
बहुत अधिक हत्या और रक्त-पात
पडे थे। उन्होने अपनी रक्षा के
समझा और वही ठहर कर वे सम

तीव्र-दृष्टि सेनापति बुद्धि की
जब जहाँ जैसा अवसर देखता
पहुँचाता था। उसने तुरन्त ही
और कह दिया कि जिस पहाड़ी
किया है, उस पर चढ जाओ।
उसने पहुँच कर शत्रु के बाएँ
कई स्थानो पर लडाई होने ल
जिसने पहली लडाई को भी मा
उसे अन्त्य स्थान मे चले कि श
जाकर गिरने लगे। यह वही
था। उसका उत्साह भग हो ग

कलंक को ही बहुत कुछ समझा और ना-मुजफ्फर (अ-विजयी या पराजित) होकर भाग गया। उसकी सेना की बहुत अधिक हानि हुई। वह भी अनगिनत माल असबाब छोड़ कर भागी। मिरजाखाँ ने अमीरों को जिधर-जिधर आवश्यक समझा, भेज दिया और आप आकर अहमदाबाद में देश और प्रजा की व्यवस्था करने लगा।

जब दरबार में मिरजाखाँ का निवेदनपत्र पढ़ा गया, तब अकबर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने आज्ञापत्र भेज कर सबका उत्साह बढ़ाया। मिरजाखाँ को खानखानाँ की उपाधि, खिलअत, घोड़ा, जड़ाऊ खंजर, तमन, तूग (झंडा) और साथ ही पंज-हजारी मन्सब प्रदान किया जो अमीरों की उन्नति की चरम सीमा है। और लोगों को भी दस, बीस और अठारह, तीस के अनुपात से उचित समझकर मन्सब बढ़ाए। यह घटना और दैवी विजय सन् ९९१ हि० मे घटित हुई थी।

मुझे बहुत से पत्रों और खरीतों आदि का एक बहुत पुराना संग्रह मिला है। उस विजय के अवसर पर खानखानाँ ने अपने पुत्र के नाम एक पत्र लिखा था। वह पत्र परिशिष्ट में दिया गया है। वह पत्र बहुत ध्यानपूर्वक पढ़ने के योग्य है। उससे युद्ध सम्बन्धी बहुत सी वास्तविक घटनाओं का पता चलता है। इस युद्ध मे उसके साथ जो विरोधी साथी गए थे, उनकी निष्ठा या द्रोह का उससे बहुत अच्छा पता चलता है। उसके शब्दों से यह टपकता है कि असहाय दशा में उसका हृदय पानी-पानी हो रहा था। क्षण-क्षण पर आशा और निराशा दोनों मिलकर उसके हृदय पर जो चित्र अंकित करती थीं, और फिर मिटाती

थी, वे सब उसमे दर्पण के समान देखने मे आते है। यह रग ऐसी कलम से फेरा गया है कि यदि पत्र किसी प्रकार बादशाह के हाथ मे भी जा पडे तो उसके हृदय पर भी बहुत सी अभीष्ट बातें अंकित कर दे। और उसने लड़के को यह भी अवश्य लिखा होगा कि यह पत्र स्वयं लेकर हुजूर की सेवा मे चले जाना। इस पत्र से यह भी पता चलता है कि उसकी लेखन-शक्ति भी बहुत अद्भुत थी और लिखने मे उसकी कलम बहुत अच्छी तरह चलती थी। वह अपना अभिप्राय बहुत ही प्रभावशाली रूप मे प्रकट करता था। प्रताप की सफलता और पद की वृद्धि हो रही थी। उस समय मिरजाखाँ की अवस्था बीस वर्ष या इससे कुछ ही ऊँचे-नीचे होगी। इसी अवस्था मे ईश्वर ने उसे वह वैभव प्रदान किया जो उसके पिता को भी बिलकुल अन्तिम अवस्था मे जाकर प्राप्त हुआ था।

यदि सच पूछा जाय तो अधिकार, शासन, वैभव और अमीरी का सारा सुख भी युवावस्था मे ही है, क्योंकि यह अवस्था भी एक बहुत बडी सम्पत्ति या वैभव है। वे लोग बहुत ही भाग्यवान और प्रतापशाली है जिन्हे सभी सम्पत्तियाँ ईश्वर एक साथ ही देता है। अमीरी और उसके साथ होनेवाली सब बातें, अच्छी सवारी और अच्छे मकान युवा अवस्था मे ही पूरी पूरी शोभा देते है। यदि यौवन काल हो तो अच्छा भोजन भी आनन्द देता है और अग लगता है। यदि बेचारे बुड्ढे के लिये अच्छा भोजन हो भी तो उसे उससे कोई आनन्द नहीं मिलता। यदि बुड्ढा अच्छे अच्छे वस्त्र पहनता है और हथियार सजकर घोडे पर चढता है तो उसकी कमर

झुकी हुई होती है और कन्धे ढलके हुए होते हैं। लोग देखकर हँस देते हैं, वल्कि अपने आपको देखकर स्वयं लज्जा आती है।

शेर शाह को उन्नति के पड़ाव पार करते करते इतना अधिक समय लग गया कि जब उसके सिर पर राजमुकुट रखने का समय आया, तब तक उसका बुढ़ापा भी आ गया था। जिस समय वह बादशाह बना था, उस समय उसका सिर सफेद हो गया था, दाढी बगले की तरह हो गई थी, मुँह पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं और आँखों में चश्मा लगाने की आवश्यकता आ पड़ी थी। वह जब राजोचित आभूषण पहनता था, तब उसके सामने दर्पण रखा रहता था। उसमें अपना प्रतिबिम्ब देखकर वह कहा करता था कि ईद तो हुई, पर सन्ध्या होते होते हुई।

ईश्वर दिल्ली के अपराध क्षमा करे। हर एक बादशाह को यही शौक रहा है कि मैं इस नगर में अपना बल-वैभव लोगों को दिखलाऊँ। जब शेर शाह बादशाह हुआ, तब उसने भी दिल्ली पहुँच कर जशन किया। सन्ध्या के समय वह अपने कुछ मुसाहबों को साथ लेकर घोड़े पर सवार होकर बाहर घूमने के लिये बाजार में निकला। वह चाहता था कि मैं सब लोगों को देखूँ और सब लोग मुझे देखें। भले घर की दो वृद्धा स्त्रियाँ थीं जो अब बहुत गरीब हो गई थीं। वे दिन भर चरखा काता करती थीं और सन्ध्या समय बाजार में जाकर सूत बेच आया करती थीं। उस समय भी वे दोनों बुरका ओढ़कर सूत बेचने के लिये बाजार में निकली थीं। बादशाह की सवारी निकलने का समाचार सुनकर वे भी एक किनारे खड़ी हो गईं। वे भी नए बादशाह को देखना चाहती थीं। शेर शाह घोड़े पर सवार, बाग ढीली छोड़े

हुए धीरे धीरे चले जा रहे थे। एक ने दूसरी से कहा—बूआ, तुमने देखा? दूसरी बोली—हाँ बूआ, देखा। पहली बोली—दुलहिन को दुलहा तो मिला, पर बुड्ढा। शेर शाह भी उस समय उन दोनों के पास पहुँच गया था। उसने भी सुन लिया। झट छाती उभारी और बाग खींच कर घोड़े को गुदगुदाया। ईश्वर जाने वह घोड़ा अरबी था या काठियावाड़ी। वह उछलने-कूदने लगा। दूसरी बुढ़िया बोली—ऐ बूआ, यह तो बुड्ढा भी है और मसखरा भी।

संयोग—उन दिनों बादशाह को अनेक प्रकार के चिन्तित करनेवाले समाचार मिला करते थे। वे हर दम इसी चिन्ता में रहते थे। एक दिन मीर फतहउल्लाह शीराजी को बुलवा कर उनसे प्रश्न किया कि इस युद्ध का क्या परिणाम होगा? उन्होंने नक्षत्र-यन्त्र निकाल कर देखा कि इस समय का स्वामी कौन सा नक्षत्र है। सब नक्षत्रों की स्थिति और आकाश-पिंडों की गति देख कर बतला दिया कि इस समय दो स्थानों पर युद्ध हो रहा है और दोनों स्थानों में हुजूर की ही विजय होगी। संयोग है कि ऐसा ही हुआ भी।

जिस समय मिरजाखाँ के अच्छे-अच्छे कार्य वहाँ उसे खानखानाँ बनाने के साधन प्रस्तुत कर रहे थे, उस समय अकबर के दरबार की जो अवस्था हो रही थी, उस अवस्था का चित्र किसी इतिहास-लेखक ने अंकित नहीं किया है। हाँ, अब्बुल-फजल ने खानखानाँ को बधाई देने के लिये जो पत्र लिखा था, उसमें उस समय की अवस्था का अवश्य कुछ वर्णन है। यह एक बहुत प्रसिद्ध पत्र है जो अपने विषय की उच्चता और भाषा

की कठिनता और उत्तमता आदि के लिये बडे-बड़े विद्वानो और पंडितों मे बहुत अधिक प्रसिद्ध है। उस पत्र से यह पता चलता है कि जब कई दिनो तक गुजरात से कोई समाचार न आया, तब लोग तरह-तरह की हवाइयाँ उड़ाने लगे थे। उसके और उसके पिता के शत्रु अपने छिपने के स्थान से बाहर निकल खड़े हुए थे। वे प्रसन्न होते थे और मित्रो से छेड-छाड करके गुज-रात का हाल पूछते थे। वे अकबर पर भी व्यंग्य करते थे। कहते थे कि एक तो दक्खिन का देश, और दूसरे वह भी बिगड़ा हुआ देश। जब ऐसे विकट अवसर पर दो वृद्ध सेनापति मात खा चुके थे, तब एक ऐसे नवयुवक को वहाँ क्यो भेजा गया, जिसे कुछ भी अनुभव नही है? भला वह सेनापति है? हाँ, सभा का शृंगार अवश्य है। उसका युद्ध और संग्राम से क्या सम्बन्ध! बैरमखाँ और उसके वंश के शुभ-चिन्तक भी चुप थे और अकबर भी चुप था। इसी लिये वह इलाहाबाद के किले की नींव रख कर जल्दी-जल्दी इस विचार से आगरे लौट आया कि मैं स्वयं ही चढ कर वहाँ चलूँगा और युद्ध को सँभालूँगा। वह थोडा घाटमपुर तक ही पहुँचा था कि उसे विजय का शुभ समाचार मिल गया। वह बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसने ईश्वर को अनेकानेक धन्यवाद दिए। दोरुखे ढंगलो ने तुरन्त अपनी बात-चीत का रुख और ढंग बदल दिया। झुक-झुक कर कहने लगे कि यह हुजूर की ही गुणो को परखनेवाली आँख थी जिसने उसका गुण तुरन्त ताड़ लिया। इतने पुराने-पुराने जान निछावर करनेवाले सेवक उपस्थित थे। पर हुजूर ने उसी को भेजा।

उसी समय आज्ञा हो गई कि नक्कारखाने मे बधाई की नौबत बजे। उक्त पत्र से यह भी पता चलता है कि उन दिनो बनजारो के चौधरियो और महाजनो के द्वारा बहुत शीघ्र समाचार पहुँचा करते थे। पहले कृष्ण चौधरी ने आकर समाचार दिया। फिर लश्कर के अमीरो के भी निवेदन-पत्र पहुँचने लगे। अकबर ने मिरजाखाँ की बहुत अधिक प्रशंसा की और कहा कि इसके पिता की खानखानाँ-वाली उपाधि इसे दे दो। बादशाह की प्रसन्नता का अनुमान एक इसी बात से कर लो कि उस पत्र मे शेख अब्दुल फजल ने लिखा है कि उस समय नक्कारखाने मे बधाई की नौबत बजने लगी। मित्र और शत्रु दोनों समान रूप से प्रसन्न होकर मिरजाखाँ की प्रशंसा कर रहे थे। और सच बात तो यह है कि यदि मिरजाखाँ को उपाधि या मन्सब कुछ भी न मिलता, तो भी उस समय उसने वास्तव मे ऐसा काम कर दिखलाया था कि सभी लोग, यहाँ तक कि शत्रु भी, उसकी प्रशंसा करने के लिये बाध्य हो गए थे। ऐसी ऊँची उपाधि, जिसकी कामना पंज-हजारी अमीर भी हृदय से करते थे, उसे इतनी जल्दी मिल गई थी कि सहसा किसी को उसकी कल्पना भी नहीं हो सकती थी। अब यदि उसे पंज-हजारी मन्सब भी मिल गया तो कौन सी बड़ी बात हुई।

इस पत्र मे यह भी पता चलता है कि दो विजयों के उपरान्त मिरजाखाँ ने अब्दुल फजल और उनके साथ ही हकीम हम्माम को भी पत्र भेजा था। उस पत्र मे सम्भवत उसने अपने हृदय की विकलता प्रकट की थी और लिखा था कि मेरे साथ यहाँ जो अमीर आए है, वे युद्ध-क्षेत्र मे मेरा साथ देने मे

जी चुराते हैं। और अब्बुल फजल के पत्र के अन्त में उन्हें शपथे देकर लिखा था कि हुजूर से निवेदन करो कि वे मुझे वापस बुला ले। इसके उत्तर मे शेख ने लिखा था कि मैंने बहुत विचार करके देखा, पर ऐसा करना मुझे किसी प्रकार उचित नहीं जान पड़ा। फिर मित्रों से भी परामर्श हुआ। उन सब लोगो की भी यही सम्मति हुई कि मिरजाखाँ को वापस बुलाने का प्रयत्न करने मे कोई हानि नहीं है। बादशाह की सेवा में निवेदन कर दो। आशा है तो लाभ की ही आशा है। खैर, किसी प्रकार बादशाह की सेवा में यह निवेदन उपस्थित किया गया, क्योंकि इसके लिये मिरजाखाँ का बहुत अधिक आग्रह था। अकबर ने बहुत ही चकित होकर कहा कि हैं! ऐसे समय मे यहाँ आना कैसा! हकीम ने अपनी वाचालता और चिकनी-चुपड़ी बातों की माजून तैयार करके बहुत कुछ कहा-सुना। पर फिर भी शेख अब्बुल फजल ने लिखा है कि जहाँ तक मैं समझता हूँ, जिस प्रकार इन बातों से हुजूर का आश्चर्य दूर नहीं हुआ, उसी प्रकार इनसे कोई हानि भी नहीं हुई।

खानखानाँ ने इसके उपरान्त जो निवेदन-पत्र लिखा था, उसमे बहुत सी बातों के साथ टोडरमल के लिये भी निवेदन किया था; और यह भी प्रार्थना की थी कि हुजूर स्वयं इस देश पर अपने प्रताप की छाया डालें। अकबर ने भी विचार किया था कि अगले महीने नौरोज है। जशन करने के उपरान्त मैं यहाँ से प्रस्थान करूँगा। साथ ही राजकोष भेजने और निवेदन-पत्रों की व्यवस्था करने की भी आज्ञा दे दी और उस आज्ञा का पालन भी हो गया। पर बादशाह स्वयं नहीं गए।

उक्त पत्र मे अब्बुलफजल ने लिखा है कि तुम्हारे पत्र से बहुत विकलता और घबराहट पाई जाती है। इस विषय पर उन्होंने बहुत से मित्र-भावपूर्ण और ऐसे वाक्य लिखे हैं, जैसे बडे लोग छोटो को लिखा करते है। शेख ने टोडरमल के बुलाने को भी अच्छा नही समझा है। और शेख का ऐसा समझना ठीक भी था। लेकिन नवयुवक सेनापति ने देखा कि मुझ पर एक बहुत बड़े युद्ध का पहाड़ और उत्तरदायित्व का आस्मान टूट पडा है। देश की ओर देखा तो वहाँ एक सिरे से दूसरे सिरे तक आग लगी हुई है। साथियो को देखा तो वे सब के सब बहुत पुराने महात्मा है, जिन्हे बादशाह ने उसकी अधीनता मे कर दिया है। अवसर ऐसा आ पड़ा है कि वे लोग आँख सामने नहीं कर सकते। बहुत ही विवश होकर मन्त्रणा-सभा मे आते है, लेकिन फिर भी गुम-सुम बैठे रहते है। किसी विषय पर सम्मति पूछो तो बात-बात पर अलग हो जाते है और कहते है कि हम तो आपके अधीन हैं। आप जो कुछ आज्ञा दे, सिर-आँखो से उसका पालन करने के लिये प्रस्तुत है। अपने साथियो के साथ एकान्त मे बैठकर ईश्वर जाने वे लोग आपस मे क्या-क्या कहा करते थे। नवयुवक को वहाँ के भी सब समाचार मिलते रहते थे। ऐसी अवस्था मे अब्बुलफजल सरीखे दृढ व्यक्ति के सिवा और कौन ऐसा था जो न घबराता। जिन लोगो को मनुष्य अपना हार्दिक और परम मित्र समझता है, उन्हीमे वह अपने हृदय की गूढ़ बातें कहा करता है, और जो अवस्था होती है, वह सब स्पष्ट रूप मे उन्हीं को लिखता है। इसमे सदेह नहीं कि इस नवयुवक के मन मे उस समय जो जो बाते उठी होंगी, वे सब

उसने अब्बुलफजल को स्पष्ट रूप से लिख दी होगी। और यही कारण राजा टोडरमल को बुलाने का हुआ होगा। क्योंकि राजा टोडरमल चाहे खानखानाँ के सच्चे मित्र रहे हो या न रहे हो, लेकिन फिर भी वे बहुत पुराने कार्य-कुशल और अनुभवी कर्मचारी थे और शुद्ध हृदय से साम्राज्य के शुभचिन्तक थे। ऐसा नहीं था कि किसी दूसरे राजकर्मचारी के साथ किसी प्रकार की शत्रुता होने के कारण ही बादशाह का कोई काम खराब कर देते। और सब से बढकर बात यह थी कि अकबर को उन पर पूरा-पूरा विश्वास था।

मिरजाखाँ ने बादशाह को वहाँ तक बुलाने के लिये भी प्रार्थना की थी। इसमे सन्देह नहीं कि वह नवयुवक यह अवश्य चाहता होगा कि जिस बादशाह ने मुझे पाला-पोसा है, जिसने मुझे शिक्षा-दीक्षा दी है, उसकी आँखों के सामने मैं कुछ काम कर दिखलाऊँ। वह भी समझ ले कि मैं क्या करता हूँ और ये पुराने पापी क्या करते हैं। और सम्भव है कि उसका यह भी विचार रहा हो कि मेरे जो साथी और सेवक बादशाह के नमक का ध्यान रखकर अपनी जान निछावर कर रहे है, उन्हें यथेष्ट पुरस्कार और पारितोपिक आदि भी दिलवाऊँ।

यहाँ हम संक्षेप मे यह भी बतला देना चाहते हैं कि उस समय शेख अब्बुलफजल और खानखानाँ मे किस प्रकार का सम्बन्ध और व्यवहार था। पाठक यह कल्पना करें कि एक ही दरबार मे समान अवस्था के दो सेवक हैं। खानखानाँ एक नवयुवक, सुशील, अच्छे लोगों की संगति मे रहनेवाला, मिलनसार, सब बातें समझनेवाला और अमीर का लड़का है। चाहे दरबार हो चाहे विद्या विषयक सभा हो, चाहे सवारी-शिकारी

हो, हर एक जगह, खुले दरबार में भी और एकान्त में भी, और यहाँ तक कि महलों में भी, पहुँचता है। यदि मनोविनोद के खेल-तमाशे हों, तो वहाँ भी वह एक बहुत अनुकूल मुसाहब के रूप में रहता है। अब्बुलफजल एक बहुत बड़ा विद्वान्, बहुत अच्छा लेखक, अच्छे स्वभाववाला और सदा अच्छे लोगों की संगति में रहनेवाला है। वह भी दरबार में, एकान्त में और दूसरी अनेक प्रकार की बैठकों में उपस्थित रहता है। उसकी पूर्ण योग्यता, बुद्धिमत्ता और भाषण तथा लेखन के कौशल ने खानखानाँ को अपना परम अनुरक्त कर रक्खा है। और अब्बुल-फजल इस विचार से उसके साथ मेल-मिलाप रखना आवश्यक और उचित समझता है कि उसका स्वभाव बहुत अच्छा है, उसकी संगत में रहने से बहुत आनन्द आता है। साथ ही वह यह भी देखता है कि यह मेरे लेखों और गुणों का बहुत आदर करता है। इसमें उसकी एक नीति यह भी रहती है कि यह नवयुवक हर दम बादशाह की सेवा में उपस्थित रहता है। और सबसे बड़ी बात यह है कि वह जानता है कि जिस विषय में मैं उन्नति कर सकता हूँ, वह इसकी उन्नति के मार्ग से बिलकुल स्वतन्त्र और अलग है। इस नवयुवक अमीर से उसे किसी प्रकार की हानि पहुँचने की कोई आशंका नहीं है। और इस बात में भी कोई आश्चर्य नहीं है कि जिस समय शेख के पुराने-पुराने शत्रु दरबार पर बादलों की तरह छाए होंगे, उस समय यह नवयुवक दरबार में शेख की हवा बाँधता होगा और एकान्त में बादशाह के हृदय पर उसकी ओर से शुभ विचारों के चित्र अंकित करता होगा।

अब्बुलफजल, फैजी, खानखानाँ, हकीम अब्बुलफतह, हकीम हम्माम, मीर फतहउल्लाह शीराजी आदि अवश्य भिन्न-भिन्न समयों मे और अवसरो पर एक दूसरे के रहने के स्थान पर एकत्र हुआ करते होगे। फैजी और अब्बुलफजल का एक ही धर्म था; और जो धर्म था, वह सब पर विदित ही है। बाकी सब लोग हृदय से तो शीया थे और नाम के लिये सुन्नत सम्प्रदाय के थे, पर वास्तव में ऐसे थे कि मानो सभी धर्म और सम्प्रदाय उन्हीं के हैं। इसलिये ये सब लोग आपस मे एक दूसरे के मित्र और सहायक बने रहते होंगे। हाँ जिन लोगों का धर्म एकांगी रहता होगा, वे इनसे अवश्य खटक रखते होंगे। और यह भी एक आवश्यक बात है कि नवयुवकों का नवयुवकों के साथ बहुत मेल-जोल रहा करता है, और बुड्ढों का बुड्ढों के साथ मेल-मिलाप रहता है। नवयुवको मे जो हृदय की प्रफुल्लता और आनन्दपूर्ण वृत्ति स्वाभाविक और वास्तविक रूप से होती है, वह सब बुड्ढे बेचारे कहाँ से लावें। यदि वे अपनी परिहास-वृत्ति दिखलावेंगे तो यही कहा जायगा कि बुड्ढे भी हैं और मसखरे भी हैं।

हे ईश्वर, मैं कहाँ था और किधर आ पड़ा। परन्तु बातो के मसाले के बिना ऐतिहासिक घटनाओं का पूरा-पूरा आनन्द भी नहीं आता।

सन ९९२ हि० मे मुजफ्फर ने तीसरी बार सिर उठाया। खानखानाँ ने अमीरों को सेनाएँ देकर कई ओर भेजा और स्वयं सेना लेकर अलग पहुँचा। मुजफ्फर ने देखा कि इस समय मेरी ऐसी अवस्था नहीं है कि मैं इन लोगो का सामना कर सकूँ,

इसलिये वह वहाँ से भागा। वह उस देश के राजाओं और आस-पास के जमींदारों आदि के पास अपने दूत और प्रतिनिधि दौड़ाता था और जगह जगह भागा फिरता था। लूट-मार कर के किसी प्रकार अपना निर्वाह करता था। उसने आस-पास के प्राय इलाके नष्ट-भ्रष्ट कर दिए। भला इस प्रकार कहीं साम्राज्य स्थापित होते है!

एक अवसर पर खानखानाँ के पास जाम ने यह समाचार भेजा कि मुजफ्फर अमुक स्थान पर ठहरा हुआ है। यदि तत्पर सिपाही और चालाक घोडे हो तो वह अभी पकडा जा सकता है। खानखानाँ स्वय सवार होकर दौडा, पर वह हाथ नहीं आया। पीछे से पता लगा कि जाम दोनो ओर मिला हुआ था और दोनो को एक दूसरे के भेद बतलाता था। इन लडाई-झगडो से इतना लाभ अवश्य हुआ कि पहले जो लोग मुजफ्फर का साथ दे रहे थे, वे अब अपनी खुशामदो की सिफारिश ले लेकर इनकी ओर प्रवृत्त होने लगे। जूनागढ के शासक अमीनखाँ गोरी ने अपने लडके को बहुत से बहुमूल्य उपहार आदि देकर खानखानाँ की सेवा मे भेजा।

मुजफ्फर ने देखा कि वीर सेनापति अपने सभी अमीरो को साथ लिए हुए इधर है। उसने अपनी सब आवश्यक सामग्री जाम के पास रख दी और अपने लडके को भी उसी के पास छिपा दिया। स्वयं घोडे उठा कर अहमदाबाद की ओर बढा। नेती नामक थाने पर खानखानाँ के विश्वसनीय और निष्ठ सेवक उपस्थित थे। वहाँ दोनो पक्षो मे अच्छी मुठ-भेड़ हुई। मुजफ्फर छाती पर धक्का खाकर पीछे की ओर लौटा। जब खानखानाँ को

इस षड्यन्त्र का पता चला, तब वे बहुत क्रुद्ध हुए और बोले कि मैं जाम (यह उस राजा की एक उपाधि भी है, और इसका दूसरा अर्थ "प्याला" भी होता है) को तोड़कर ठीकरा कर दूँगा। चट-पट सेना लेकर पहुँचा और अचानक नवा गाँव नामक स्थान से चार कोस की दूरी पर पहुँच कर वहाँ झंडा गाड़ दिया। नवा गाँव मे जाम की राजधानी थी। जाम चक्कर मे आए। उन्होंने बहुत ही नम्रता और दीनतापूर्वक एक निवेदन-पत्र लिखा। शरजा नामक हाथी और बहुत से अद्भुत तथा बहुमूल्य उपहारो के साथ अपने पुत्र को खानखानाँ की सेवा मे भेजा। सन्धि कर लेना, शान्ति बनाए रखना और लोगों को तसल्ली देना तो मानो अकबर के शासन और साम्राज्य का नियम ही था। और खानखानाँ भी अकबर के पूरे और पक्के शिष्य थे; इसलिये उन्होंने उस समय वहाँ से लौट आना ही उचित समझा।

अकबर ने हकीम ऐन उल् मुल्क आदि बुद्धिमान् और योग्य अमीरो को दक्षिण की सीमा पर जागीरें देकर लगा रखा था। उनके अच्छे अच्छे कार्यों का एक शुभ फल यह भी हुआ था कि बुरहानपुर का हाकिम राजी अलीखाँ अकबर के दरबार की ओर प्रवृत्त हो गया था। इस विचार से कि मेल-मिलाप और एकता का सम्बन्ध और भी दृढ़ हो जाय, अब्बुल फजल की बहन का विवाह राजी अलीखाँ के भाई खुदावन्द जहाँ के साथ कर दिया गया था। राजी अली खाँ एक बहुत पुराना और अनुभवी आदमी था। वह नाम के लिये बुरहानपुर और खान्देश का हाकिम था, पर वास्तव मे सारे खान्देश और दक्षिण में उसका प्रभाव विद्युत् के समान फैला हुआ था। जो लोग

साम्राज्य के कार्यों के बहुत अच्छे ज्ञाता थे, वे राजी अलीखाँ को दक्षिण देश की कुंजी कहा करते थे।

सन् ९९३ हि० मे खानखानाँ अहमदाबाद मे बैठे हुए अकबर का सिक्का जमा रहे थे। उस अवसर पर दक्षिण और खान्देश के हाकिम आपस मे बिगड खड़े हुए। राजी अलीखाँ ने अपना दूत भेजा और निवेदन की दूरबीन से दिखलाया कि दक्षिण देश का मार्ग खुला हुआ है। इधर यह इसी कामना की पूर्ति के लिये बहुतेरी मन्नते माने हुए बैठे थे। इन्होने अमीरो को एकत्र करके परामर्श करने के लिये मन्त्रणा-सभा की। खानखानाँ के पास आज्ञा पहुँची। वे भी अहमदाबाद से चलकर फतहपुर जा पहुँचे। यही निश्चय हुआ कि उक्त देश को जीतकर अपने अधिकार मे कर लेना ही इस समय उचित है। खानखानाँ फिर अहमदाबाद के लिये विदा हो गए और खान आजम दक्षिण की चढाई के सेनापति नियुक्त होकर उस ओर चल पडे।

जब मुजफ्फर ने देखा कि खानखानाँ यहाँ नही है और मैदान खाली है, तब उसने फिर एक बार अहमदाबाद की ओर बढने का विचार किया। जाम ने उसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी और उसे यह समझाया कि पहले जूनागढ ले लो, फिर अहमदाबाद से समझ लेना। वह इसी सरूर मे मस्त होकर आपे से बाहर हो गया और फिर सँभलकर बैठा। बादशाही अमीरो को भी यह समाचार मिला। वे लोग सुनते ही दौडे। उन्हे देखते ही वह उलटे पैरो भागा। इसी बीच मे खानखानाँ भी आ पहुँचे। वह तो निकल ही गया था। आस-पास जो इलाके बचे हुए थे, उनका इन्होने अच्छी तरह प्रबन्ध कर लिया।

खान आजम बहुत से बादशाही अमीरो को साथ लेकर उस ओर गए और लड़ाइयाँ छिड़ गई। गुजरात का अहमदाबाद मार्ग मे ही पड़ता था और दक्षिण की सीमा पर था। इस युद्ध में भी अकबर ने खानखानाँ को सम्मिलित किया था। अब्बुल-फजल के पत्रो मे उस समय का लिखा हुआ खानखानाँ के नाम का एक पत्र है। यद्यपि उसमे नाम मात्र के लिये बीरबल के मरने का हाल लिखा है, पर वास्तव मे वह इसी विषय से सम्बन्ध रखता है। उसमे लिखा है कि तुम्हारा निवेदन-पत्र मिला। देश के सम्बन्ध को जो बातें तुमने लिखी है, उन्हे पढ़कर सन्तोष हुआ। दक्षिण पर विजय प्राप्त करने के सम्बन्ध मे तुमने जो बातें और उपाय लिखे हैं, वे सब अच्छे जान पड़े। तुम्हारी उच्च कोटि की बुद्धिमत्ता और पूरी वीरता को देखते हुए आशा है कि शीघ्र ही वे सब बातें देखने मे आवेंगी जो तुमने लिखी हैं; और वह देश बहुत सहज मे जीत लिया जायगा। परन्तु इतिहासो मे पता चलता है कि उन्होंने सच्चे हृदय से खान आजम की सहायता नहीं की; और यदि सच पूछो तो खान आजम भी ऐसे आदमी नहीं थे कि कोई सच्चे हृदय से उनकी सहायता कर सकता।

अकबर की दो ही आँखे नहीं थीं, हजार आँखे थीं, जिनमे से एक आँख अपने पूर्वजो के देश पर भी थी। इसके थोड़े ही दिनों बाद उधर तो वह सौतेला भाई हकीम मिरजा मर गया, जिसके हाथ मे हुमायूँ के समय मे काबुल का शासन था; और साथ ही इधर यह भी सुना कि मावरा उल् नहर के हाकिम अब्दुल्लाखाँ उजबक ने जैहून नदी पार करके बदख्शाँ पर भी अधिकार कर लिया है और मिरजा सुलेमान को भी वहाँ से

निकाल दिया है। इसलिये उसने बदख्शाँ पर लश्कर भेजने का विचार किया।

यह वही अवसर है जब कि खान आजम दक्षिण के युद्ध को नष्ट-भ्रष्ट करके और स्वयं दुर्दशा भोग कर इनके पास पहुँचे थे। खानखानाँ ने बहुत अच्छी तरह उनकी दावत करके उन्हे विदा किया, और स्वयं सुसज्जित सेना लेकर वहाँ से चल पडे। जब बडौदे से होते हुए भडौच पहुँचे, तब खान आजम के पत्र आए कि अब तो वर्षा ऋतु आ गई है। इस वर्ष लडाई बन्द रखी जाय। अगले वर्ष हम और तुम दोनो साथ मिलकर चलेंगे। खानखानाँ अहमदाबाद को लौट आए। और यही कारण है कि मीर फतह उल्लाह शीराजी भी वहाँ उपस्थित है। इस घटना को पाँच महीने बीत चुके थे।

पर इनको समाचार पहुँचानेवाले लोग भी बडे अद्भुत थे। उन्हे भी समाचार मिल ही गया। उस साहसी नवयुवक के हृदय मे आवेश उत्पन्न हुआ होगा। सोचा होगा कि जिन पहाडियो पर मेरे पूज्य पिता ने स्वर्गीय हुमायूँ की सेवा मे अनेक बार प्राण निछावर किए थे, जहाँ उन्होने रात को रात और दिन को दिन नहीं समझा था, वहीं चलकर मै भी तलवारें मारूँ। दक्षिण से निवेदन-पत्र भेजा कि हुजूर ने बदख्शाँ पर चढाई करने का पक्का विचार कर लिया है। मुझे भी आपकी सेवा मे उपस्थित होने की कामना विकल कर रही है। मेरा भी जी चाहता है कि मै भी इस यात्रा मे हुजूर की रकाब पकड कर साथ साथ चलूँ।

सन ९९५ हि० मे ये और मीर फतहउल्लाह शीराजी बुलवाए गए। उन्होने ऊँटो और घोडो की डाक बैठाई और बहुत जल्दी-

जल्दी चलकर आए। बादशाह ने खान्देश की सब बातें सुनीं। दक्षिण की विजयों के सम्बन्ध मे परामर्श हुए। काबुल और बदख्शाँ के युद्ध के सम्बन्ध मे भी बात-चीत हुई। उस समय बदख्शाँ की चढ़ाई स्थगित कर दी गई।

मुजफ्फर ने भी अभी तक हिम्मत नहीं हारी थी। कभी खम्भात, कभी नादौत, कभी सूरत, कभी पूरवी, कभी अथनेर और कभी कच्छ आदि जिलो में कहीं न कहीं सिर निकालता था। जब एक जगह से हारता था, तब फिर इधर-उधर से जंगली लुटेरो आदि को एकत्र करके किसी दूसरी जगह आ पहुँचता था। कहीं स्वयं खानखानाँ और कहीं उसके अधीनस्थ अमीर उसे इधर-उधर ढकेलते फिरते थे। ये सब लोग देश की व्यवस्था और प्रबन्ध मे लगे हुए थे। उनमे कलीचखाँ पुराना अमीर था; और बन्नू नामक स्थान पर ख्वाजा निजामउद्दीन ने ऐसी वीरता दिखलाई थी कि देखनेवालो को उनसे बड़ी-बड़ी आशाएँ हो गई थीं।

सन् ९९७ हि० मे खान आजम को अहमदाबाद गुजरात प्रदान किया गया और खानखानाँ विजयी अमीरो के साथ बुलाए गए। पिता के पदो मे से वकील मुतलक या पूर्ण प्रतिनिधि का पद, बरसों हुए, घर से निकल चुका था। टोडरमल के मरने पर सन् ९९८ हि० मे वह पद फिर इनके अधिकार में आया। अहमदाबाद गुजरात के बदले मे इन्हें जौनपुर प्रदान किया गया।

खानखानाँ सदा राजनीतिक विषयों मे तो लगे ही रहते थे, पर साथ ही विद्या और साहित्य से भी खाली नहीं रहते थे।

इसी सन् मे उन्होने वादशाह की आज्ञा से वाकआत वावरी का अनुवाद करके वादशाह की सेवा मे उपस्थित किया। वादशाह ने उसे वहुत पसन्द और स्वीकृत किया।

सन् ९९९ हि० (१५९१ ई०) मे वादशाह ने मुलतान और भक्कर को खानखानाँ की जागीर कर दिया और वादशाही अमीर तथा सेनाएँ आदि देकर किसी-किसी के लिखने के अनुसार कन्धार की चढाई पर और किसी-किसी के लिखने के अनुसार ठट्ठा की चढाई पर भेजा। अकवरनामे के लेख मे भी इसकी कुछ गन्ध मिलती है। इससे मेरे मन मे इस सम्बन्ध मे अनुसन्धान करने का विचार उत्पन्न हुआ। इधर उधर देखा, पर कही पता न चला। अन्त मे मेरी वाल्यावस्था के मित्रो ने मेरी सहायता की। मेरे ये मित्र अब्बुलफजल के वे पत्र थे जो उसने खानखानाँ के नाम लिखे थे और जो मैने वाल्यावस्था मे पाठशाला मे वैठ कर कठस्थ किए थे। उन्होने यह भेद खोला। कन्धार को उस समय ईरान तो अपनी नियमानुमोदित सम्पत्ति ही समझता था, क्योकि हुमायूँ उसके सम्बन्ध मे वचन दे आए थे। अब्दुल्लाखाँ कहते थे कि हम कन्धार के साथ ही ईरान को भी घोल कर पी जायँ। अकवर ने उस समय देखा कि सफवी (सफी के वश के) शाहजादे लोग, जो ईरान के साम्राज्य की ओर से वहाँ के हाकिम है, ईरान के शाह से कुछ असन्तुष्ट और दु खी है और आपस मे भी लड रहे है, और प्रजा इस ओर अनुरक्त है। दोनो वादशाह अपनी-अपनी लडाइयो मे लगे हुए है। परामर्श तो वहुत दिनो से हो ही रहे थे। अव यह विचार निश्चित हुआ कि वैरमखाँ ने वहुत दिनो तक वहाँ शासन किया

है। खानखानाँ मुलतान के मार्ग से सेना लेकर वहाँ जायँ। इन्होंने भी कई बातें देखीं और सोचीं। एक तो यह कि इस समय वहाँ की जो परिस्थितियाँ और अवस्थाएँ देखने में आती हैं, उस समय वे इनसे कहीं अधिक भीषण और पेचीली थीं। दूसरे भारतवर्ष के लोग उन देशों की यात्रा करने से बहुत डरते हैं, जहाँ बरफ पड़ता है; और वहाँ की सेना में अधिकतर भारतीय ही होते हैं। तीसरा कारण यह भी था कि वहाँ की चढ़ाइयों में रुपए बहुत अधिक खर्च होते हैं और खानखानाँ के हाथ रुपयों के शत्रु थे। उनके पास चाहे कितना ही अधिक धन क्यों न आवे, कभी ठहरता ही न था। इसलिये कुछ तो अपनी इच्छा से और कुछ अपने साथियों के परामर्श से बादशाह से यह निवेदन किया कि पहले ठट्ठा का प्रदेश मेरी जागीर में कर दिया जाय। इसके उपरान्त मैं सेना लेकर कन्धार पर जाऊँगा। इनकी यह सम्मति भी युक्ति-पूर्ण थी। वह दूरदर्शी और सब बातों को समझनेवाला आदमी था। हजारों अनुभवी और जानकार अफगान, खुरासानी, ईरानी और तूरानी उसके दस्तरख्वान पर भोजन करते थे। वह जानता था कि गुजरात के जंगलों में जाकर नगाड़े बजाते फिरना और बात है, और कन्धार शहद की मक्खियों का छत्ता है। दो शेरों में मुँह से शिकार छीनना और उनके सामने बैठ कर उसे खाना लड़कों का खेल नहीं है।

जान पड़ता है कि बादशाह की इच्छा यही थी कि पहले सीधे कन्धार पर पहुँचो। इन्होंने और इनके साथियों ने अकबर का विचार इस ओर फेरा कि मार्ग में ठट्ठा पड़ता है। पहले

उस पर पूरा अधिकार करके रास्ता साफ कर लेना चाहिए। अब्बुलफजल की भी यही सम्मति थी कि ठट्ठे का विचार नहीं करना चाहिए। इसी लिये वे एक पत्र मे लिखते हैं कि तुम्हारे वियोग मे मुझे ये-ये दुःख है, और उनमे से एक दुःख इस बात का भी है कि तुमने कन्धार पर विजय प्राप्त करने का विचार छोडकर ठट्ठे की ओर रुख किया है।

इन पत्रो से यह भी पता लगता है कि सन् ९९९ हि० के अन्त मे सेना ने प्रस्थान किया था। पर अन्दर-अन्दर ईश्वर जाने कब से इसके लिये तैयारियाँ हो रही थी। क्योकि सन ९९८ हि० के पत्र मे शेख ने खानखानाँ को लिखा था कि ईश्वर को हजार हजार धन्यवाद है कि विजय की हवाएँ चलने लगी हैं। आशा है कि शीघ्र ही यह प्रदेश जीत लिया जाय। देखना, कन्धकार जाने का विचार और ठट्ठे की विजय किसी और समय पर न टालना, क्योकि समय और अवसर निकला जा रहा है। बडी बात यही है कि यदि चाहो तो हुजूर से उन लोगो को माँग लो जो इस समय उर्दू (लश्कर) मे व्यर्थ और फालतू है, और यह सेवा ग्रहण करके ठट्ठे को जागीर मे स्वीकृत कर लो। मुझे हजार वर्षों का अनुभवी समझ कर यदि यह बात मान लोगे, तो सम्भव है कि यह काम हो जायगा। यह पत्र उस समय का है, जब खानखानाँ को जौनपुर का इलाका मिला हुआ था और कन्धार के लिये अन्दर ही अन्दर बातें हो रही थीं। साम्राज्य के विषय मे ईश्वर जाने आज्ञाओ और हिसाब-किताब आदि की क्या-क्या उलझनें होगी। लिखते है कि प्रियवर, मेरी कटु बातो मे भी सदा प्रसन्न रहना और मन मे

कभी किसी प्रकार का दुःख न आने देना। यदि बादशाह के आज्ञानुसार लिखे हुए आज्ञा-पत्रो में (पर वे आज्ञा-पत्र भी दिखावटी बातों के सिवा और कुछ नहीं हैं) में कुछ कठोर या चित्त को दुःखी करनेवाले शब्द लिखूँ, तो अपने मन रूपी उपवन मे ठीक वसन्त के समय पतझड़ के दिन न आने देना और मन में किसी प्रकार का दुर्भाव न उत्पन्न होने देना। परगना जब्त करने के या बाकी राजस्व के विषय की और जो कुछ उसके बदले मे जौनपुर से लिया है, उन सब के विषय की बातों को व्यर्थ बहुत बढ़ाना नहीं चाहिए। यह ढंग और ही लोगों का है; और तुम और ही रास्ते के लोग हो। (अर्थात् तुम्हारा और बादशाह का सम्बन्ध कुछ और ही प्रकार का है।) ईश्वर को धन्यवाद है कि तुम्हारी लिखी हुई सब की सब बातें बादशाह के कानों तक नहीं पहुँचीं। फिर भी उनका अभिप्राय उपयुक्त अवसर पर और उचित रूप मे सुना दिया गया। जिस समय बिलकुल एकान्त मे रहो, उस समय ईश्वर के दरबार में दिन-रात अपनी अवस्था निवेदन करना और उससे दया की प्रार्थना करना आवश्यक समझो। बहुत अधिक प्रसन्नता को हराम समझो। जो लोग भग्न-हृदय और दुःखी हो, उनके साथ सहानुभूति दिखलाओ और उन्हें सान्त्वना देते रहो। देखो कि कैसा समय और कैसा अवसर है; आदि आदि। शायद खानखानाँ ने अपने किसी पत्र में एक स्थान पर लिखा है कि अमुक-अमुक पुस्तक जलसे मे पढ़ी जाती है। तुम्हारी इस सम्बन्ध मे क्या सम्मति है? इसके उत्तर मे शेख लिखते हैं कि शाहनामा और तैमूरनामा आदि पुस्तकें तो इसलिये लिखी गई थीं कि

लोग इस ढंग पर बात-चीत किया करे। यदि हृदय को शुद्ध करने का अभिप्राय हो तो इसके लिये इखलाके नासिरी, जलाली हदीक, महलकात व मंजियात, कीमियाए सआदत आदि आदि पुस्तके है।

उक्त पत्र मे यह भी लिखते है कि ईश्वर को धन्यवाद है कि पूज्य भाई साहब, हकीम हम्माम के आदमी के हाथ जो पत्र भेजा था, वह मिल गया। पहले तो उसके पहुँचने मे, फिर देखने से और फिर समझने से हृदय फूल के समान खिल गया। विशेषत यह जान कर चित्त और भी प्रसन्न हुआ कि तुर्कमान लोग कन्धार से स्वागत करने के लिये आए हुए है। तुम्हारा ईरान की ओर जाने का जो दृढ़ निश्चय है, उससे भी मुझे बहुत अधिक प्रसन्नता हुई, आदि आदि। मेरे प्यारे, इस चढाई मे, जो इस समय तुम्हारे सामने उपस्थित है, प्रतिष्ठा और सु-नाम धन देकर मोल लिया जाता है। धन तो प्रसिद्धि का पिछ-लग्गू है और प्रताप की तरह बिना कहे-सुने आपसे आप दरवाजे की कुंडी हो जाता है। यह भी ठीक उसी प्रकार आपसे आप होता है, जिस प्रकार किसान के खेत मे घास-पात आदि आपसे आप उत्पन्न होते हैं।

एक और पत्र की भी भूमिका उठाई है कि यात्रा का विचार तथा बादशाह से बिदा होना कन्धार और ठट्ठा की विजय की भाँति शुभ हो।

एक और पत्र मे लिखते है कि बादशाह ने तुम्हारे सम्बन्ध मे जो आज्ञाएँ दी थीं, वे सब एक आज्ञापत्र मे लिखकर तुम्हारे नाम भेज दी गई है। तुमने लिखा था कि ईरान और तूरान मे

हुज़ूर की ओर से खरीते भेजे जायँ। मै नि.संकोच होकर कहता हूँ कि इनके विषय ठीक वही है, जो मैंने सोचे थे। केवल शब्दो और लेख-शैली का ही अन्तर होगा।

एक और पत्र में लिखा है कि मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि जब तक मैं तुमसे यह न सुन लूँगा कि तुमने कन्धार पर विजय प्राप्त कर ली है, जो ईरान की विजय की भूमिका है, तब तक न तो मैं अपने हृदय की उस उत्कंठा का कोई वर्णन करूँगा जो तुमसे मिलने के लिये मेरे मन मे हो रही है और न तुम्हारे वियोग की कोई शिकायत ही लिखूँगा। अब मैं सारा साहस वही काम पूरा करने मे लगाता हूँ जो संसार के सर्वश्रेष्ठ और शुभचिन्तक (अकबर) को अभीष्ट है; और सब मित्रो की भी यही अभिलाषा है। केवल कुछ शब्द लिखता हूँ। आशा है कि बुद्धिमत्ता यह बात तुम्हारे कानो और हृदय तक पहुँचा देगी। तुम धन के इच्छुक, व्यापारी या समय बितानेवाले पुराने सिपाही नहीं हो जो मैं यह समझ लूँ कि तुम ठट्ठा के युद्ध को कन्धार के युद्ध से अच्छा समझोगे। इसलिये मैं इस सम्बन्ध मे कुछ अधिक नहीं कहना चाहता। मुझे डर तो तुम्हारे उन अदूर-दर्शी साथियो का है जो अपनी प्रतिष्ठा बेचकर रुपए खरीदना चाहते हैं। ऐसा न हो कि वे लोग मेरे परम प्रिय के (तुम्हारे) आवेशपूर्ण हृदय को उस ओर प्रवृत्त कर दें। विश्वसनीय समाचारो से तुम्हें कन्धार और कन्धारियो का नया हाल मालूम हुआ होगा। मै क्या लिखूँ। कहने का अभिप्राय यही है कि कन्धार कोई ऐसा देश नहीं है जिसे जब चाहें, तब सहज में ले सकते हों। यह बात ठट्ठा के ही सम्बन्ध मे है। कन्धार की दशा इसके

विलकुल विपरीत है। बीच मे जो जमींदार वलोच और अफगान पड़ते हैं, उनको दिलासे की जवान और दान के हाथ से अपना करके वादशाह के विजयी लश्कर मे मिला लो और इस अवकाश के समय को बहुत उपयुक्त समझो। ईश्वर पर दृढ़ विश्वास और भरोसा रख कर फुरती और चालाकी मे कन्धार की ओर प्रस्थान करो। सहायता के लिये आनेवाली सेना या लोगो की प्रतीक्षा मत करो। पर हॉ, फिर भी बहुत से लोग आ ही मिलेंगे। परन्तु उसका मार्ग यही है कि लोगो को धन दान करने मे कमी न करो, क्योकि सम्मान और प्रतिष्ठा इसी मे है। बुद्धिमत्ता और सहनशीलता को अपने दाहिने और वाऍ का मुसाहब रखो। मजलिस मे सदा जफरनामा, शाहनामा, चंगेजनामा आदि ग्रन्थो की ही चर्चा होनी चाहिए। इखलाक नासिरी, मकतूबात शेख शर्फ मुनीरी और हदीक आदि पुस्तको की सही नहीं। यह सब तो त्यागियो के देश की वात-चीत है, आदि आदि। फिर लिखते हैं कि इसमे सन्देह नहीं कि ठट्ठा के हाकिम मिरजा जानी ने हुमायूँ की दुर्दशा के समय मे उनके साथ बहुत ही अ-निष्ठा का और अनुचित व्यवहार किया था और अकबर के मन मे यह बात बहुत खटकती थी। पर फिर भी अकबर की और उसके साथ ही अब्बुलफजल तथा दरबार के दूसरे अमीरो की भी सम्मति यही थी कि इस समय ईरान और तूरान के शाह लोग अपने-अपने काम मे लगे हुए है। कन्धार के लिये फिर ऐसा उपयुक्त अवसर नहीं मिलेगा। ठट्ठा को तो जब चाहे, तब ले सकते है।

इन्होंने फिर कहा कि कन्धार का केवल नाम ही मीठा है।

वह भूखा देश है। वहाँ लाभ कुछ भी नहीं; पर हाँ, खर्च बहुत हैं। इतने खर्च हैं कि जिनका कोई हिसाब ही नहीं। और इस समय मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं भूखा हूँ। मेरे सिपाही भूखे हैं। यदि मैं वहाँ खाली जेब लेकर जाऊँगा, तो करूँगा क्या? हाँ, जब मुलतान से भक्खर और ठट्ठा तक सारे सिन्ध देश मे अकबर के नाम का नगाड़ा बजेगा और समुद्र का किनारा अकबर के अधिकार मे आ जायगा, तब कन्धार भी आपसे आप हाथ में आ जायगा।

खैर; जैसे-तैसे इन्होंने कन्धार की ओर प्रस्थान किया। परन्तु गजनी और बंगशवाला पास का मार्ग छोड़ कर मुलतान और भक्खर के मार्ग से चले। मुलतान उनकी तहसील या जागीर थी। वहाँ पहुँच कर कुछ रुपया तहसील किया। कुछ सेना भी एकत्र की। कुछ आगे की और व्यवस्थाएँ करने मे विलम्ब लगा। अन्त मे यही निश्चय हुआ कि पहले ठट्ठा का ही निर्णय कर लो। ठट्ठा के हाकिम मिरजा जानी का इतना अपराध अवश्य था कि जिस समय हुमायूँ दुरवस्था मे था, उस समय उसने उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया था। पर हाँ, अकबर के दरबार मे वह बराबर भेट और उपहार आदि भेजा करता था। परन्तु वह स्वयं कभी दरबार मे उपस्थित नहीं हुआ था, इसलिये उस पर विश्वास नहीं था। इसलिये लश्कर का झंडा उसी ओर की हवा मे लहराया। फैजी ने इसकी तारीख कही थी—"कस्दे तता" अर्थात् ठट्ठा की ओर चलने का विचार। मुलतान से निकलते ही बलोचों के सरदारों ने सेवा मे उपस्थित होकर पुराने वचन और प्रण आदि फिर से नए किए।

मिरजा जानी के दूत भी सेवा मे उपस्थित हुए। उन्होंने कहा कि हुजूर का लश्कर कन्धार पर जा रहा है, इसलिये उचित है कि मै भी इस चढाई मे हुजूर के साथ चलूं। परन्तु देश मे उपद्रवियो ने सिर उठाया हुआ है। आपकी सेवा के लिये सेना भेजता हूँ। उन्होंने राजदूत को अलग उतारा और सेना की गति और भी बढाई। इतने मे समाचार मिला कि सीवान के किले मे आग लग गई है, और बहुत दिनो मे वहाँ जो अनाज आदि एकत्र कर के रखा हुआ था, वह सब जल कर राख हो गया है। इसे शुभ शकुन समझ कर और भी जल्दी जल्दी पैर आगे बढाए। सेना ने नदी के मार्ग से सीवान के किले के नीचे से निकल कर लक्की नामक स्थान पर अपना अधिकार कर लिया। किसी की नकसीर तक न फूटी और सिन्ध की कुजी मिल गई। सिन्ध देश के लिये लक्की नामक स्थान भी वैसा ही है, जैसा बगाल के लिये गढी नामक स्थान और काश्मीर के लिये बारामूला। सेनापति ने सीवान के किले को चारो ओर से घेर लिया। उस समय वहाँ का हाकिम किले के अन्दर ही बैठा हुआ था। बनानेवालो ने वह किला एक पहाडी के ऊपर बनाया था। उसके चारो ओर चालिस गज की खाई थी और सात गज का बहुत दृढ परकोटा था। यह सब मिला कर मानो लोहे की दीवार थी। आठ कोस लम्बा और छ कोस चौडा स्थान था। नदी की तीन शाखाएँ वहा आकर मिलती है। प्रजा कुछ तो टापू मे और कुछ नावो मे रहती थी। एक सरदार कुछ नावें लेकर अचानक उन पर जा पडा। बहुत बडी लूट हाथ आई। प्रजा ने अधीनता स्वीकृत कर ली।

यह समाचार सुनते ही मिरजा जानी सेना लेकर आया। नसीरपुर के घाट पर उसने डेरे डाल दिए। उसके एक ओर बहुत बडी नदी थी। बाकी सब ओर नहरें और नाले आदि थे और उनमे की दलदले आदि मानो उनके लिये प्राकृतिक रूप से रक्षा का काम करती थी। वह किला बना कर बीच मे उतरा। वह रेतीला स्थान है। वहाँ किला बना लेना कुछ भी कठिन नहीं है। तोपखाने और लड़ाई की नावो से उसने वह किला और भी मजबूत कर लिया। खानखानाँ भी उठ खड़ा हुआ। अकबर ने जैसलमेर और अमरकोट के मार्ग से जो और सेना भेजी थी, वह भी आ पहुँची। सेनापति ने एक सरदार को अपने स्थान पर छोड़ा कि जिसमे वह किले-वालो को रोके रहे और रसद के आने-जाने का मार्ग खुला रहे। शत्रु ने छ. कोस पर जाकर छावनी डाली और वहाँ वह अपने चारों ओर दीवार और खाइयाँ बना कर बहुत निश्चिन्त होकर बैठ गया।

शत्रु की ओर से खुसरो चरकस नाम का उसका दास सेनापति था। वह लड़ाई की नावे तैयार करके चला। उसकी कुल नावे दो सौ थीं, जिनमे से सौ नावें बहुत बड़ी और लडाई की थीं। खबर उड़ी कि फिरंगियो ने हुरमुज नामक बन्दरगाह मे उसकी सहायता के लिये सेना भेजी है। ये लोग भी इधर से बढ़े। शत्रु अपनी नावें चढ़ाव पर ला रहा था; परन्तु बहाव की अपेक्षा भी तेज आ रहा था। सन्ध्या होने को थी, इसलिये युद्ध दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दिया गया। फिर खबर उडी कि मिरजा जानी भी स्थल के मार्ग से आ रहा है।

उसी समय कई सरदार सेना लेकर सवार हुए और अँधेरी रात मे हवा की तरह नदी पार करके दूसरे किनारे पर जा पहुँचे। सवेरा होते ही यहाँ तोपे चलने लगी। परन्तु यह युद्ध भी बहुत ही अद्भुत तथा विलक्षण था। शत्रु ने ऊपर चढ आना चाहा। परन्तु एक तो पानी था और दूसरे सामने से पानी का तोड़ भी था, इसलिये वह आगे न बढ़ सका। जो वीर सैनिक रात के समय नदी पार उतरे थे, वे तोपो के शब्द सुनते ही बाढ की तरह नदी की ओर दौड़ पडे। वे लोग किनारो पर आ गए और पानी पर आग बरसाने लगे। खानखानाँ के पास लडाई की कुल पचीस नावें थी। उन्ही को उसने नदी की ओर छोड दिया। बहाव पर जाना था। वे लहरो की तरह चली और बात की बात मे तीर के पल्ले पर जा पहुँची। आग की बरसात ने गोलियो का एक छीटा मारा। पल के पल मे बरछी और जमधर की नौबत आ गई। उस समय वीरो की यह दशा थी कि खौलते हुए पानी की तरह उबले पडते थे। कूद-कूद कर शत्रुओ की नावो मे जा पडे। नावे मुरगाबियो की तरह तैरती फिरती थी। एक अमीर अपनी नाव को दौडा कर खुसरो-खाँ पर जा पहुँचा और उसने वहाँ उसे घायल किया। उसने उसे प्राय पकड ही लिया था कि एक तोप फट गई और नाव डूब गई। शत्रु पक्ष का परवाना नामक एक प्रसिद्ध सरदार आग की जगह पानी मे मारा गया। शत्रु के पास सेना अधिक थी और सामग्री भी यथेष्ट थी। पर फिर भी वह हार गया। सैनिको और युद्ध की सामग्री से भरी हुई चार नावे पकडी गई और कैद हुई। उन्हींमे कैतूर हरमूज नामक सरदार भी था।

हुरमूज़ का हाकिम अपना एक विश्वसनीय आदमी ठट्टा में रखा करता था। वह अमीन कहलाता था और उधर के सब व्यापारियों के कार-बार देखता और उनकी रक्षा आदि की व्यवस्था करता था। जानी बेग उसे भी अपने साथ लेता आया था और उसने अपने बहुत से आदमियों को फिरंगी सेना की वर्दी भी पहना दी थी।

यदि ये लोग उसी समय घोड़ा उठाए हुए जानी बेग पर जा पडते तो उसी समय लड़ाई का अन्त हो जाता। परन्तु साहसहीन लोगों के परामर्श ने रोक लिया जिससे शत्रु डूबता-डूबता सँभल गया।

बादशाही सेना बहुत थी। अमीर लोग स्थल मे अपनी सेना लिए फिरते थे और स्थान-स्थान पर युद्ध करते थे। इस प्रकार बहुत से स्थान उनके हाथ में आ गए। प्रजा ने अधीनता स्वीकृत कर ली। अमरकोट का राजा भी अधीनता स्वीकृत करके सहायता करने के लिये उद्यत हो गया। इस कारण उधर का मार्ग भी साफ हो गया। एक स्थान की प्रजा ने कूओं मे विष डाल दिया था। वह देश रेगिस्तानी था और वहाँ पानी यों ही बहुत कम मिलता था। अब तो पानी की कठिनता और भी बढ़ गई। जो बादशाही सेना उस मार्ग से गई थी, वह एक विलक्षण विपत्ति मे फँस गई। सब की दृष्टि उसी ईश्वर की ओर थी। ऐसे समय मे फिर अकबर के प्रताप ने सहायता की। बिना ऋतु के ही बादल आया और पानी बरस गया। तालाब आदि भर गए। ईश्वर ने अपने सेवकों के प्राण बचा लिए।

मिरजा जानी घबरा गया। परन्तु उसके पास सेना भी बहुत

थी और युद्ध की सामग्री भी यथेष्ट थी, इसलिये फिर भी वह बहुत कुछ निश्चिन्त था। उसके सब स्थान भी सुदृढ और सुरक्षित थे, इसलिये उसका साहस बहुत कुछ बना हुआ था। उसे वर्षा का भी भरोसा था। उसने समझ रखा था कि नहरे और नाले आदि नदी से भी अधिक चढ जायँगे और बादशाही लश्कर आपही घबरा कर उठ जायगा। और यदि न उठेगा तो हम लोगों से घिर जायगा। इधर बादशाही सेना को अनाज की कमी ने भी बहुत तंग किया। सेनापति कभी छावनी के स्थान बदलता था, कभी लश्कर को इधर-उधर बाँटता था। साथ ही उसने दरबार मे भी एक निवेदन-पत्र भेजा। अकबर का विचार तो युद्धो की नदी की मछली के समान था। उसने तुरन्त अमरकोट के मार्ग से बहुत सी नावो पर अनाज, युद्ध-सामग्री, तोपे, बन्दूके, तलवारे और एक लाख रुपया नगद भेज दिया।

वहाँ बीच मे चूँ बेचूँ नाम का एक प्रदेश पडता है। खानखानाँ स्वय वहीं छावनी डाल कर बैठ गया और अमीरो को उसने भिन्न भिन्न स्थानो पर भेज दिया। साथ ही नदी के मार्ग से एक लश्कर सीवान के किले पर चढाई करने के लिये भी भेजा। मिरजा जानी समझता था कि बादशाही लश्कर जल-युद्ध मे दुर्बल है, इसलिये वह स्वय सेना लेकर उस पर चला। उसका विचार था कि मार्ग मे ही उस पर हाथ मारे। सेनापति भी निश्चिन्त नहीं बैठा था। दौलतखाँ, * ख्वाजा मुकीम और टोडर मल के

---

* यह दौलत खाँ लोधी खानखानाँ का सेनापति था। सन् १००८ हि० में अहमदनगर की विजय के उपरान्त उदर के शूल के कारण इसकी मृत्यु हो गई।

का शोक देखा। युद्ध-क्षेत्र मे विजय का प्रकाश हो गया था। इतने में अमीरों को समाचार मिला कि शत्रु की सेना वादशाही लश्कर के डेरों को लूट रही है। ये लोग पहले से इसलिये गए थे कि लड़ाई के समय पीछा मारेंगे। स्वयं पीछे पहुँचे। सुनते ही सरदारों ने घोड़े उड़ाए और वाज की तरह शिकार पर गए। भगोड़ों ने अपने प्राण लेकर भागना ही वहुत समझा। जो माल उन्होंने लिया था, वह सब फेंककर भाग गए। उनके तीन सौ आदमी और खानखानाँ के एक सौ आदमी मारे गए। मिरजा जानी कई जगह उलटकर ठहरा, परन्तु ईश्वरीय प्रताप के साथ भला कौन लड़ सकता है। इस युद्ध का तो किसी को ध्यान या अनुमान भी नहीं था। छावनी कहीं थी, युद्ध-क्षेत्र कहीं था, स्वयं सेनापति कहीं था। सवको ईश्वरीय कृपा और सहायता का विश्वास हो गया। पाँच हजार सैनिकों को वारह सौ सैनिकों ने भगा दिया।

यहाँ तो यह युद्ध हुआ, उधर जिस किले के सम्वन्ध मे मिरजा जानी ने यह समझ रखा था कि कठिन अवसर आने पर यहीं मुझे शरण मिलेगी, खानखानाँ उसी किले पर जा पहुँचा और वहुत ही वीरतापूर्वक उसपर आक्रमण करके उसे ढा दिया। मिरजा जानी युद्ध-क्षेत्र से भागकर वहीं गया था। वह सोचता था कि चलकर घर में वैठूँगा और वहीं कुछ उपाय सोचूँगा। पर मार्ग मे ही उसने सुना कि वह किला तो अव मैदान हो गया। वहाँ अव खानखानाँ के खेमे पड़े हुए हैं। वह वहुत ही चकित हुआ। वहुत कुछ सोच-विचार के उपरान्त उसने सिन्ध नदी के किनारे एक ऐसे स्थान पर जाकर साँस लिया जो हाला कंडी से

उसके साथी उसे मैदान से निकाल ले गए। हवा भी सहायता करने के लिए आ पहुँची। ऐसी धूल उड़ी और आँधी चली जो शत्रुओ को आँख भी नहीं खोलने देती थी। दाहिना पार्श्व कहीं जा पडा और बायाँ पार्श्व कहीं जा पडा।

दौलतखाँ ने बादशाही सेना के मध्य भागो से निकलकर खूब हाथ मारे। उसका साथी बहादुरखाँ चकित होकर खड़ा था और ईश्वर की महिमा देख रहा था। उस समय दोनो ओर की सेनाएँ अव्यवस्थित हो गई थीं। बहादुरखाँ सोचता था कि देखिए, क्या होता है। इसी रेल-धकेल मे दो तीन सरदार उसके पास भी आ पहुँचे। साथ ही समाचार मिला कि मिरजा जानी पाँच सौ सवारो को साथ लिए हुए अलग खड़ा है। इन लोगो ने ईश्वर पर भरोसा करके बागें उठाईं। अकबर का प्रताप देखो कि इस समय इन लोगो के साथ केवल एक सौ आदमी थे, पर इतने ही आदमियो के आक्रमण से मिरजा जानी के पैर उखड़ गए। वह एक मैदान भी न लडा। नोक दुम भाग गया। उस समय शत्रु पक्ष के एक हाथी ने अकबर की सेना की बहुत सहायता की। वह मस्ती मे आकर हथियाई करने लगा और स्वय अपनी ही सेना को उसने नष्ट कर डाला।

टोडरमल का लडका धारा राय इस युद्ध मे बहुत बढ बढकर लड़ा था। वह हरावल मे था। पर दु ख है कि उसके माथे पर भाले का घाव लगा और वह घोडे पर से नीचे गिर पडा। पर फिर भी उसके भाग्य बहुत अच्छे थे कि उसने कीर्त्तिपूर्वक इस ससार से प्रस्थान किया। परन्तु उसके अभागे पिता की दुरवस्था पर दु ख करना चाहिए जिसने वृद्धावस्था मे अपने नवयुवक पुत्र

का शोक देखा। युद्ध-क्षेत्र मे विजय का प्रकाश हो गया था। इतने मे अमीरो को समाचार मिला कि शत्रु की सेना बादशाही लश्कर के डेरो को लूट रही है। ये लोग पहले से इसलिये गए थे कि लडाई के समय पीछा मारेंगे। स्वयं पीछे पहुँचे। सुनते ही सरदारो ने घोड़े उड़ाए और बाज की तरह शिकार पर गए। भगोड़ो ने अपने प्राण लेकर भागना ही बहुत समझा। जो माल उन्होने लिया था, वह सब फेंककर भाग गए। उनके तीन सौ आदमी और खानखानाँ के एक सौ आदमी मारे गए। मिरजा जानी कई जगह उलटकर ठहरा, परन्तु ईश्वरीय प्रताप के साथ भला कौन लड़ सकता है! इस युद्ध का तो किसी को ध्यान या अनुमान भी नहीं था। छावनी कहीं थी, युद्ध-क्षेत्र कहीं था, स्वयं सेनापति कहीं था। सबको ईश्वरीय कृपा और सहायता का विश्वास हो गया। पाँच हजार सैनिको को बारह सौ सैनिकों ने भगा दिया।

यहाँ तो यह युद्ध हुआ, उधर जिस किले के सम्बन्ध मे मिरजा जानी ने यह समझ रखा था कि कठिन अवसर आने पर यहाँ मुझे शरण मिलेगी, खानखानाँ उसी किले पर जा पहुँचा और बहुत ही वीरतापूर्वक उसपर आक्रमण करके उसे ढा दिया। मिरजा जानी युद्ध-क्षेत्र से भागकर वहीं गया था। वह सोचता था कि चलकर घर मे बैठूँगा और वहीं कुछ उपाय सोचूँगा। पर मार्ग मे ही उसने सुना कि वह किला तो अब मैदान हो गया। वहाँ अब खानखानाँ के खेमे पड़े हुए हैं। वह बहुत ही चकित हुआ। बहुत कुछ सोच-विचार के उपरान्त उसने सिन्ध नदी के किनारे एक ऐसे स्थान पर जाकर साँस लिया जो हाला कंडी से

चार कोस और सीवान से चालिस कोस पर था। वहाँ वह एक किला बनाकर बैठ गया। वहाँ उसने बहुत गहरी खाई खोदी थी। खानखानाँ भी उसके पीछे पीछे वहाँ जा पहुँचा और जाकर उसे भी घेर लिया।

युद्ध दिन और रात हो रहा था। तोपे और बन्दूके उत्तर-प्रत्युत्तर करती थीं। देश मे मरी फैली हुई थी, और सयोग यह था कि जो मरता था, वह सिन्धी ही मरता था। एकान्त-वास करनेवाले साधुओ और त्यागियो ने स्वप्न देखे कि जब तक अकबर का सिक्का न चलेगा और खुतबा न पढ़ा जायगा, तब तक इस मरी का अन्त नहीं होगा। यह मरी कृतघ्नता का दड है। आगे से विद्रोह या उपद्रव न करने की दृढ प्रतिज्ञा करो, यह मरी दूर हो। ये स्वप्न बहुत जल्दी प्रसिद्ध हो गए। बादशाह के सैनिक और सेवक भी अधिक प्रबल होकर अपने काम मे तत्पर हो गए। वह रेगिस्तानी देश तो है ही। वे लोग मिट्टी के ढह बनाते थे और उन्हींकी ओट मे मोरचे बढाते जाते थे। धीरे-धीरे वे लोग किले के पास जा पहुँचे। घेरा इतना तंग हो गया कि किलेवाले तग होकर अपने मुँह से सन्धि की कहानियाँ सुनाने लगे। उधर बादशाही लश्कर भी रसद के बिना तग हो रहा था, इसलिये उसने भी सन्धि करना स्वीकृत कर लिया। यह निश्चय हुआ कि मिरजा जानी सीविस्तान का इलाका सीवान के किले के सहित और लडाई की बीस नावे भेट करे और मिरजा ऐरज अर्थात् सेनापति के लडके को अपनी कन्या दे, और वर्षा ऋतु मे बादशाह के दरबार मे उपस्थित हो। खानखानाँ ने सैनिक मोरचे उठा लिए और युद्ध-क्षेत्र मे ही विवाह के लिये शामियाने

तन गए। मिरजा ने बरसात भर लोगो के वहाँ रहने के लिये किला खाली कर दिया।

खानखानाँ के दरबार में जो कवि लोग कविताओं और चुटकुलो के उपवन खिलाया करते थे, उनमे से एक मुल्ला शकेबी नाम के कवि भी थे। उन्होने इस युद्ध के विवरण की एक मसनवी तैयार की थी, जो वास्तव मे कविता की दृष्टि से बहुत ही उच्च कोटि की थी। उसके इस शेर पर खानखानाँ ने बहुत अधिक प्रसन्न होकर उसी समय उसे एक हजार अशर्फी दी थी—

هماے کہ بر عرش کردے خرام - گرفتی و آزاد کردی زدام

अर्थात्—जो हुमा पक्षी आकाश मे प्रसन्नतापूर्वक विहार कर रहा था, उसे पकड़ा और फिर जाल मे से छोड़ दिया।

मजा यह है कि जिस समय खानखानाँ के दरबार मे यह मसनवी सुनाई गई थी, उस समय मिरजा जानी भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने भी प्रसन्न होकर उसे हजार ही अशर्फी दी और कहा कि ईश्वर की कृपा है कि इसने मुझे हुमा पक्षी बनाया। यदि यह मुझे गीदड़ भी कह डालता, तो भला मैं इसकी जबान पकड़ सकता था!

बादशाह ने इस युद्ध के लिये एक बार एक लाख रुपए, एक बार पचास हजार रुपए और फिर एक बार एक लाख रुपए और एक लाख मन अनाज और फिर सौ बड़ी तोपे और तोपची नदी के मार्ग से भेजे थे। और अमीर भी अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर पहुँचे थे। सन् १००१ हि० के नौरोजवाले जशन मे खानखानाँ अपने साथ मिरजा जानी को लेकर लाहौर मे बादशाह

को सेवा मे उपस्थित हुए। बादशाह की सेवा मे उनके उपस्थित होने के लिये एक अलग दरबार किया गया। बादशाह मसनद पर बैठे थे। मिरजा जानी ने नियमानुसार बहुत झुककर बादशाह को सलाम किया। उसे तीन हजारी मन्सब और ठट्ठा प्रदेश जागीर मे प्रदान किया गया। इसके सिवा उस पर और ऐसे अनेक अनुग्रह किए गए जिनकी उसे कभी आशा भी नहीं थी। हमारे इतिहास-लेखको को कभी इस बात का ध्यान नहीं हुआ कि मनुष्य के कार्यों को देखकर उसके भीतरी विचारो का पता लगाते। मैं पहले किसी स्थान पर लिख चुका हूँ और अब फिर लिखता हूँ कि अकबर को अपनी जल-शक्ति बढाने का बहुत ध्यान रहता था। इसी लिये इस अवसर पर उसका और सारा इलाका तो उसी को दे दिया गया, पर बन्दरगाहो पर बादशाह का ही अधिकार बना रहा। मेरे इस कथन के समर्थन मे अकबर का वह खरीता उपस्थित है जो अब्दुल्ला उजबक के नाम लिखा गया था और जो अब्बुलफजल के पहले खड मे दिया हुआ है।

सन १००३ हि० मे खानखानाँ को फिर दक्षिण देश की ओर यात्रा करनी पडी। पर इस यात्रा मे उसे कुछ दु ख भी उठाना पडा और उसके लिये यह कुछ अशुभ भी हुई। इस लडाई की जड यह थी कि अकबर को अभी तक दक्षिण देश और खान आजम की विफलता की बात भूली नहीं थी। उधर के हाकिमो के पास जो पत्र और दूत आदि भेजे गए थे, उनमे भी कोई सफलता नहीं हुई थी। फैजी भी बुरहान-उल्मुल्क के दरबार मे सफल होकर नहीं लौटा था, और फिर अहमदनगर के शासक बुरहानउलमुल्क का देहान्त भी हो

गया था। वह देश बहुत दिनों से अव्यवस्थित दशा में था और वहाँ प्राय उथल-पुथल मची रहती थी। अब पता चला कि तेरह चौदह वर्ष का लड़का सिंहासन पर बैठा है और उसके जीवन का तख्ता भी मृत्यु के तट पर लगना चाहता है।

अकबर ने मुराद को (रूम की चोट पर) सुल्तान मुराद बना कर बहुत बड़े लश्कर के साथ दक्खिन पर चढ़ाई करने के लिये भेजा और स्वयं आकर पंजाब में ठहरा, जिसमे उत्तरी सीमा का प्रबन्ध दृढ रहे। मुराद ने गुजरात मे पहुँच कर छावनी डाली और चढ़ाई का सब प्रबन्ध करना आरम्भ किया। उसी समय अकबर के प्रताप ने अपना प्रभुत्व दिखलाना आरम्भ किया। आदिल शाह के दरबार के अमीर लोग निजाम के देश का प्रबन्ध करने के लिये सेनाएँ लेकर आए। इब्राहीम लश्कर लेकर उसका मुकाबला करने के लिये गया। अहमदनगर से चालीस कोस की दूरी पर दोनो सेनाओ का सामना हुआ और इब्राहीम ने गले पर तीर खाकर युद्ध-क्षेत्र में प्राण दिए। ईश्वर भी धन्य है। अभी कल की बात है कि उसने भाई को अन्धा करके होश की आँखो में सुरमा दिया था, और आज स्वयं उसने इस संसार से आँखें बन्द कर ली। देश में अस्थायी रूप से अनेक छोटे बड़े राजा होने लगे। अराजकता फैल गई और एक विलक्षण हलचल मच गई। मियाँ मंझू ने मुराद के पास निवेदन-पत्र भेजा, जिसमे लिखा था कि अब देश का कोई स्वामी नहीं रह गया है। समस्त राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो रहा है। आप पधारें तो आपके ये सेवक सब प्रकार से आप की सेवा करने के लिये उपस्थित हैं।

जब अकबर ने यह समाचार सुना, तब उसने खानखाना के पास प्रस्थान करने के लिये आज्ञा भेजी। उधर शाहजादे को लिखा कि तुम सब प्रकार से तैयार तो रहो, पर अभी आक्रमण मत करो। जिस समय खानखानाँ पहुँचे, उसी समय घोड़े उठाओ और अहमदनगर पर जा पड़ो। जिस समय शाहजादे को पहले-पहल उपाधियाँ और अधिकार आदि मिले थे, उस समय की अवस्था देखकर लोग यही समझते थे कि यह शाहजादा बहुत होनहार, तेज और साहसी है। यह खूब अच्छी तरह से बादशाही करेगा। परन्तु वह तेजी अन्त में केवल अदूरदर्शिता, स्वेच्छाचारिता और तुच्छ-हृदयता के रूप में प्रकट हुई। सादिक मुहम्मदखाँ आदि उसके कुछ ऐसे सरदार थे जो उसे बहुत कुछ अपने मन के अनुसार चलाते थे। वे लोग समझते थे कि जिस समय खानखानाँ यहाँ आ जायगा, उस समय हम लोग तो दूर रहे, उसके प्रकाश के सामने स्वयं शाहजादे का दीपक भी मद्धिम हो जायगा। सम्भव है कि पहले तो उन्होंने भी शाहजादे को यह समझाया-बुझाया हो कि इसके आने से हुजूर के अधिकारों में अन्तर आ गया, और अब जो विजय होगी, वह इसी के नाम से होगी। खानखानाँ के जासूस भी भूतों और प्रेतों की तरह चारों ओर फैले रहते थे और जगह-जगह की खबरें पहुँचाया करते थे। मार्ग में ही उसे समाचार मिला कि बुरहान उल् मुल्क मर गया और आदिल शाह ने अहमदनगर पर चढ़ाई की है। साथ ही यह भी समाचार सुना कि अहमदनगर के अमीरों ने निवेदन-पत्र भेज कर शाहजादा मुराद को बुलाया है और वह अहमदाबाद से प्रस्थान

करना चाहता है। इसने बहुत प्रसन्नतापूर्वक प्रस्थान किया। परन्तु भाग्य उसकी यह प्रसन्नता नहीं देखना चाहता था। पहली बात तो यह है कि खानखानाँ का जाना किसी साधारण सिपाही या सरदार का जाना नहीं था। उसे सैनिक आदि तैयार करने मे अवश्य विलम्ब लगा होगा। दूसरे उसने मालवे के मार्ग से यात्रा की थी। तीसरे वहेला भी उसके मार्ग मे पड़ा जो उसकी जागीर मे था। इच्छा न रहने पर भी उसे कुछ समय तक वहाँ ठहरना पडा होगा। मार्ग मे राजाओ और शासकों आदि से मिलना-जुलना भी पड़ता ही होगा। और यह स्पष्ट ही है कि उनके साथ मिलने-जुलने में कुछ न कुछ लाभ ही होता होगा। सब से बड़ी बात यह हुई कि जब वह बुरहानपुर के पास पहुँचा, तब खान्देश के शासक राजी अली खाँ से भेंट हो गई। खानखानाँ ने अपनी नीतिमत्ता, सुन्दर वार्त्तालाप और प्रेमपूर्ण व्यवहार के जादू से उसे अपने साथ चलने के लिये उद्यत कर लिया। पर ऐसे जादुओं का प्रभाव उत्पन्न होने मे कुछ न कुछ समय की आवश्यकता होती है। इतने मे शाहजादे का आज्ञापत्र पहुँचा कि यहाँ लडाई का काम बिगड़ रहा है, इसलिये शीघ्र सेवा में उपस्थित हो। साथ ही हरकारों ने यह भी समाचार पहुँचाया कि शाहजादे ने लश्कर को आगे बढ़ाया है। इन्होंने लिखा कि राजी अलीखाँ भी मेरे साथ आने के लिये तैयार है। यदि यह सेवक जल्दी चला आया, तो इस नीति मे कुछ विघ्न पड़ जायगा। अर्थात सम्भव है कि मेरे चले आने के बाद वह पीछे से न आवे; या इसी प्रकार की और कोई बात हो। शाहजादे के मन में खानखानाँ की ओर से बुरे भाव तो उत्पन्न ही होते जाते थे।

अब वह दुर्भाव बहुत बढ गया। खानखानाँ को भी उसके दरबार के समाचार बराबर पहुँचा करते थे। उसके निवेदन-पत्र ने वहाँ जो रंग पैदा किया था, उसका हाल जब खानखानाँ को मालूम हुआ, तब उसने अपना लश्कर, फीलखाना, तोपखाना आदि आदि और बहुत से अमीरो को तो पीछे छोड दिया और आप राजीअलीखाँ को साथ लेकर जल्दी-जल्दी आगे बढा। यह सुन कर शाहजादे ने बीस हजार लश्कर रिकाब मे लिया और आगे बढ गया। फिर भी यह मारामार चल कर अहमदनगर से तीस कोस इधर ही उससे जा मिला। लगानेवालो ने ऐसी नहीं लगाई थी जो बुझ भी सके। पहले दिन तो इन्हे सलाम करने का भी सौभाग्य प्राप्त न हो सका। खानखानाँ बहुत ही चकित हुआ कि हजारो युक्तियाँ और उपाय कर के तो मै ऐसे व्यक्ति को अपने साथ लाया, जिसका केवल साथ ही विजय और प्रताप की सेना है। और ऐसी उत्तम सेवा का मुझे यह पुरस्कार मिल रहा है। फिर जब दूसरे दिन खानखानाँ को शाहजादे की सेवा मे उपस्थित होने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ, तो शाहजादा उस समय त्यौरी चढ़ाए हुए और मुँह बनाए हुए था। आखिर ये भी खानखानाँ थे। विदा होकर अपने खेमो मे आए, पर बहुत ही दु खी थे। और साथ ही चिन्ता इस बात की थी कि बुद्धिमत्ता और युक्ति का यह पुतला जो मेरे साथ आया है, वह मेरी यह दशा देख कर अपने मन मे क्या कहता होगा। और जो जो कुछ मैने इसे समझाया था, उसे यह क्या समझता होगा। जो लश्कर और अमीर आदि पीछे रह गए थे, वे भी आए। उस समय उचित तो यह था कि उनके आने की शान दिखलाते और उन्हे सेवाएँ

सौंपते। उनके उत्साह बढ़ाए जाते। पर यहाँ तो उत्साह बढ़ाने के बदले उनका उत्साह और भी भंग किया जा रहा था और मन दुःखी किया जाता था।

वह भी आखिर खानखानाँ था। उठकर अपने लश्कर में चला आया। उस समय सब लोगों की आँखें खुलीं। अमीरों को दौड़ाया। पत्र लिखे। अन्त में जिस प्रकार हुआ, सफाई हो गई। पर इस से यह नियम ज्ञात हो गया कि जो व्यक्ति योग्य और बुद्धिमान् हो, जिसके पास सब प्रकार के साधन और सामग्री आदि हो और जो सब कुछ कर सकता हो, वह भी दूसरे के अधीन हो कर कुछ नहीं कर सकता। बल्कि काम भी खराब हो जाता है और स्वयं वह आदमी भी खराब हो जाता है।

जिन लोगों ने खानखानाँ तक की यह दुर्दशा कराई थी, वे भला और अमीरों को क्या समझते थे। वे और लोगों की इसी प्रकार अप्रतिष्ठा कराया करते थे। इसी लिये लश्कर में साधारणतः सभी लोग अप्रसन्न हो रहे थे। राजीअलीखाँ को भी खानखानाँ का मेहमान और साथी समझ कर दरबार में एकाध चमका दे दिया। तात्पर्य यह कि इस प्रकार चढ़ाई और युद्ध का काम बिगड़ना आरम्भ हुआ।

अब जरा उधर की सुनो। बुरहान-उल् मुल्क की सगी बहन, हुसैननिजाम शाह की कन्या और अली आदिल शाह की पत्नी चाँद बीबी बहुत उच्च वंश की और परम सदाचारिणी तो थी ही, पर साथ ही वह अपनी बुद्धि, युक्ति, उदारता, वीरता और गुणग्राहकता आदि के रत्नों से जड़ी हुई जड़ाऊ पुतली थी। इसलिये वह "नादिरत उल् ज़मानी" (संसार में अपने समय की अनुपम)

कहलाती थी और वही देश की उत्तराधिकारिणी रह गई थी। जब उसने देखा कि देश हाथ से जाना चाहता है और वंश का नाम मिटना चाहता है, तब वह अपने चेहरे पर की नकाब के साथ साहस की कमर बाँधकर खड़ी हो गई। उसने अपने सब अमीरों को बुलाकर उन्हें बहुत कुछ धैर्य और दिलासा दिया और समझाया-बुझाया। अकबर के लश्कर को नदी की तरह लहराते देखकर उन अमीरों ने भी अपना और अपने देश का परिणाम सोचा। उन लोगों ने शाहजादे के पास और उसके खानखानाँ के पास जा निवेदन-पत्र आदि भेजे थे, उसके लिये वे अपने मन में बहुत पछताए। सबने मिलकर परामर्श किया। अन्त में यह निश्चय हुआ कि चाँद बीबी अहमदनगर के किले में राज्य की उत्तराधिकारिणी बनकर बैठे और हम लोग अपने नमक का हक अदा करें और जहाँ तक हो सके, सब लोग मिलकर अहमद-नगर को बचावें।

बादशाहों का सा मिजाज रखनेवाली चाँद बेगम ने युद्ध की सब सामग्री और अनाज के ढेर एकत्र करने आरम्भ किए। वह दरबार के अमीरों और आस-पास के जमींदारों को उत्साहित तथा प्रसन्न करने लगी। बहुत अच्छी मोरचेबन्दी करके उसने अहमदनगर को पूरी तरह से दृढ़ बना लिया। इब्राहीम शाह के लड़के बहादुर शाह को नाम मात्र के लिये देश का उत्तराधिकारी बनाकर सिंहासन पर बैठाया। एक सरदार को बीजापुर भेजकर इब्राहीम आदिल शाह के साथ सन्धि कर ली और अपने बहुत से साथियों तथा लश्कर को लेकर अपने स्थान पर स्थित हो गई। बहुत ही दृढ़ता और व्यवस्थापूर्वक उसने बादशाही सेना का

सामना किया। उसकी वीरता देखकर मर्दों के होश जाते रहे। छोटे बड़े सभी लोगों मे चाँद बीबी सुलताना की बहुत अधिक प्रसिद्धि हो गई।

यहाँ ये सब प्रबन्ध हो चुके थे। उधर से शाहज़ादा मुराद बहुत से बड़े-बड़े अमीरो आदि को साथ लिए हुए पहुँचा और बहुत भारी सेना लिए हुए अहमदनगर के उत्तर ओर से इस प्रकार गिरा, जिस प्रकार पर्वत पर से बड़ी भारी नदी का प्रवाह चलता है। यह सेना नमाजगाह के मैदान मे ठहरी और साहसी वीरो की एक टुकडी चबूतरे के मैदान की ओर बढ़ी। चाँद बीबी ने किले से दक्खिनी वीरो को निकाला। उन्होंने तीरों और बन्दूको के मुँह और जबान से अच्छे उत्तर-प्रत्युत्तर दिए और किले के मोरचो से गोले भी मारे, इसलिये बादशाही सेना आगे न बढ़ सकी। सन्ध्या भी होने को थी। वहाँ पर हश्त बिहिश्त (आठ स्वर्ग) नाम का एक बहुत सुन्दर बाग था, जिसे बुरहान निजाम शाह ने बनवा कर हरा-भरा किया था। शाहज़ादा मुराद और सब अमीर उसी बाग मे उतर पड़े। दूसरे दिन वे लोग नगर की रक्षा और नागरिकों को प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगे। गली-कूचो मे अभय-दान की मुनादी करा दी गई; और कुछ ऐसा काम किया कि घर-घर सब लोग प्रसन्न तथा सन्तुष्ट होकर अनुकूल हो गए। व्यापारियों और महाजनो आदि का भी पूरा-पूरा सन्तोष हो गया। दूसरे दिन शाहज़ादा मुराद, मिरजा शाहरुख, खानखानाँ, शाहबाजखाँ कम्बो. मुहम्मद सादिकखाँ, सैयद मुर्तजा सब्जवार, बुरहानपुर के हाकिम राजी अलीखाँ, मानसिंह के चाचा राजा जगन्नाथ

आदि सब अमीर एकत्र हुए। सब लोगों ने मन्त्रणा और परामर्श करके घेरा डालने का प्रबन्ध किया और सब लोगों को अलग-अलग मोरचे बाँट दिए गए।

किले पर अधिकार करने और नगर को अपने अधिकार में बनाए रखने का कार्य बहुत ही उत्तमतापूर्वक चल रहा था कि इसी बीच में शाहबाजखाँ को वीरता का आवेश आया। उसने शाहजादे और सेनापति को खबर भी नहीं की और बहुत से सैनिकों को साथ लेकर गश्त करने के बहाने से निकल पड़ा। उसने अपने लश्कर को संकेत कर दिया था कि धनवान या निर्धन जो कोई सामने आवे, उसे लूट लो। बात की बात में क्या घर और क्या बाजार, सारा अहमदनगर और बुरहानाबाद लुट कर सत्तानाश हो गया। शहबाजखाँ अपने धर्म और सम्प्रदाय का भी कट्टर अनुयायी था। वहाँ एक स्थान था जिसका नाम बारह इमाम का लंगर था। उसके आस-पास सब शीया लोग बसे हुए थे। उसने उन सबका माल-असबाब लूट लिया और उनकी हत्या करा दी। इस प्रकार उसने वहाँ करबला के जंगल का चित्र उपस्थित कर दिया। शाहजादा और खानखानाँ सुन कर चकित हो गए। उसे बुला कर बहुत कुछ बुरा-भला कहा। उसके जिन साथियों ने लूट-मार की थी, उन सबको अनेक प्रकार के कठोर दंड दिए गए, यहाँ तक कि बहुतों को प्राण-दंड भी दिया गया। परन्तु अब हो ही क्या सकता था! जो कुछ होना था, वह तो पहले ही हो चुका था। लुटे हुए लोगों के पास कपड़ा तक नहीं था। वे रात के परदे में देश छोड़ कर निकल गए।

इस अवसर पर एक ओर तो मियाँ मंझू अहमद शाह को बादशाह बनाए हुए आदिल शाह के सिर पर बैठे हुए थे। दूसरी ओर इखलास हब्शी अपने साथ मोती शाह गुमनाम (अप्रसिद्ध) को लिए हुए दौलताबाद के किले मे पड़े थे। और तीसरी ओर आहंगखाँ हब्शी सत्तर बरस के बुड्ढे प्रथम बुरहान शाह अली के सिर पर छतर छगाए हुए खड़े थे। सब से पहले इखलासखाँ ने साहस किया। वह दस हजार सैनिक एकत्र करके दौलताबाद की ओर से अहमदनगर की ओर चला। जब अकबर बादशाह के लश्कर में यह समाचार पहुँचा, तब सेनापति ने पाँच छः हजार साहसी वीर चुने और दौलतखाँ लोधी को, जिनके सैनिको का स्थान सरहिन्द था, उन सबका सेनापति बनाकर आगे भेजा। गंगा नदी के किनारे पर दोनों पक्षों का सामना हुआ। बहुत अधिक मार-काट और रक्त-पात आदि के उपरान्त इखलासखाँ भागे। बादशाही लश्कर ने लूट-पाट करके अपनी कामना पूरी की। वहाँ से पटन की ओर घोड़े उठाए। वह नगर बहुत अच्छी तरह बसा हुआ और रौनक पर था। पर फिर भी ऐसा लुटा कि किसी के पास पानी पीने के लिये कटोरा तक न बचा। इन सब बातो ने दक्खिन के लोगो को अकबर के लश्कर की ओर से बहुत दुःखी और असन्तुष्ट कर दिया। जो हवा अनुकूल हुई थी, वह बिगड़ गई।

यद्यपि मियाँ मंझू के पास धन-बल भी बहुत था और जन-बल भी, पर उनमे जो चालाकी थी, उसका तो वर्णन ही नहीं हो सकता। इसलिए चाँद सुलतान बेगम ने आहंगखाँ हब्शी को लिखा कि तुम जितने दक्खिनी साहसी वीरों की सेना एकत्र कर

सको, उतनी सेना एकत्र करके किले की रक्षा करने के लिये आकर हाजिर हो। वह सात हजार सवार लेकर अहमदनगर की ओर चला। उसने शाह अली और उसके लड़के मुर्त्तजा को भी अपने साथ ले लिया था। वह छ कोस पर आकर ठहरा और समाचार लाने तथा घेरे का रग-ढंग जानने के लिये उसने अपने गुप्त दूत भेजे। वह यह जानना चाहता था कि कौन सा अग या पार्श्व अधिक और कौन सा कम बलवान् है। दूतो ने देख-भालकर समाचार पहुँचाया कि किले के पूरब की ओर बिलकुल खाली है। अभी तक किसी का ध्यान उस ओर नहीं गया है। अब आहंगखाँ तैयार हो गया।

इधर की एक दैवी बात यह देखी कि उसी दिन शाहजादे ने गश्त करते समय वह स्थान खाली देखा था और खानखानाँ को आज्ञा दी थी कि इधर की व्यवस्था तुम स्वय करो। खान-खानाँ भी उसी समय हश्त बिहिश्त से उठ कर यहाँ आ उतरा और जो मकान आदि मिले, उन सब पर उसने अधिकार कर लिया। आहगखाँ ने तीन हजार चुने हुए सवार और एक हजार पैदल तोपची साथ लिए और अँधेरी रात मे काली चादर ओढकर किले की ओर चल पडा। दोनो मे से किसी को एक दूसरे के वहाँ होने की खबर नहीं थी। जब खबर हुई, तब उसी समय हुई, जब छुरी-कटारी के सिवा बाल भर का भी अन्तर न रह गया। खानखानाँ तुरन्त दो सौ वीरो को साथ लेकर इबादत-खाने (प्रार्थना-मन्दिर) के कोठे पर चढ गया और वहाँ से उसने तीर और गोलियाँ चलाना आरम्भ कर दिया। इनका प्रधान योद्धा दौलत खाँ लोधी सुनते ही चार सौ सवारो को

लेकर दौडा। वे सब उसी की जाति के और सदा उसके साथ रहनेवाले अफग़ान थे। वे लोग जान तोड़ कर अड़ गए। दौलत खाँ का लड़का पीर खाँ भी छ सौ वीरो को लेकर सहायता करने के लिये पहुँचा। अँधेरे मे ही मार-काट होने लगी। आहंग खाँ ने देखा कि ऐसी अवस्था मे यदि हम लडेंगे, तो मरने के सिवा और कोई लाभ नहीं होगा। उसे पता लग गया था कि खान-खानाँ की सारी सेना इस समय मेरा सामना कर रही है। खेमे और स्वप्नागार की ओर का सारा स्थान खाली है। उसने चार सौ दक्खिनी वीरों और शाह अली के लडके को साथ लेकर घोडे मारे और भागा-भाग किले मे घुस ही गया। शाह अली सत्तर बरस का बुड्ढा था। उसे साहस न पडा। उसने अपने प्राण बचाने को ही बहुत समझा। वह बाकी सेना लेकर जिस मार्ग से आया था, उसी मार्ग से भागा। पर दौलतखाँ ने उसका भी पीछा न छोड़ा। मारा-मार, दौड़ा-दौड़ उसके नौ सौ आदमियो को काटकर तब पीछे लौटा।

बादशाही लश्कर चारों ओर फैला हुआ था। मोरचे अमीरों मे बँट गए थे। सब लोग जोर मारते थे, पर कुछ कर नहीं कर सकते थे। शहाहज़ादे की सरकार में अदूरदर्शी और उपद्रव तथा उत्पात मचानेवाले लोग एकत्र हो गए थे। वे मैदान मे तो धावा नहीं मारते थे, हाँ दरबार में खडे हो कर आपस मे एक दूसरे पर खूब पेंच मारते थे। शाहज़ादे की युक्तियों मे इतना बल नहीं था जो इन लोगों के उपद्रवों को दबा सकता और स्वयं ऐसा काम करता जो उचित होता। यह बात शत्रु से लेकर उसकी प्रजा तक सभी लोग जान गए थे।

बनजारे लोग मार्ग मे लुट जाया करते थे। रसद की कमी पड गई थी। अन्दर से गोले बरसते थे जिनके कारण मोरचे खराब होते थे और दमदमे उजडते थे। रात के समय शत्रु-पक्ष के लोग छापे मारते थे, जिनमे बडे-बडे और प्रसिद्ध सरदार मारे जाते थे। किले की ईंट तक नही हिलती थी। मैदान मे भी लडाइयाँ होती थी। कई बार युद्ध मे शत्रु हार गया था। यदि उस समय उसका पीछा किया जाता, तो बहुत सफलता होती। पर सब लोग खडे-खडे तमाशा देखा करते थे। एक दिन की बात है कि रात के समय खानखानाँ के मोरचे पर छापा मारा गया। सेना पहले से सचेत थी। उसने बहुत अच्छी तरह शत्रुओ का सामना किया। अकबरी वीरो की वीरता ने बहुत अच्छा काम किया। सबेरा होते ही शत्रु पक्ष के लोग धूल उडाते हुए किले मे भाग गए। यदि उस समय और सब अमीर पीछा करते और शाहजादा अपने ताजे लश्कर को लेकर पहुँचता, तो सब लोग शत्रुओ के साथ ही साथ किले के अन्दर जा पहुँचते। पर ईर्ष्या और द्वेष का मुँह काला हो, जिनके वश होकर सब लोग एक दूसरे का मुँह देखते हुए जहाँ के तहाँ रह गए। हजारो प्रकार के प्रयत्न करते करते और लाखो प्रकार से जान लडाते लडाते और मोरचे बढाते बढाते तीन सुरगे किले के बुरजो के नीचे तक पहुँची। इनके लिये धन भी बहुत अधिक व्यय हुआ था। पर उस शेर बीबी चाँद ने अपने साहस और जासूसो की तलाश से पते लगाकर उनमे से दो सुरगो के सिरे निकाल दिए। धावे से एक दिन पहले जमीन खोदकर बारूद के थैले खींच लिए और इस पर भी विलक्षणता यह कि सब्को और मटको से

भर भरकर वहाँ इतना पानी डलवाया कि आग की जगह पानी उबलने लगा। किलेवाली तीसरी सुरंग की चिन्ता में ही थे कि उधर से शाहजादा और खानखानाँ सेनाएँ लेकर सवार हुए। बहादुर लोग धावा करने के लिये तैयार होकर खड़े थे। आज्ञा हुई कि फतीलों को आग लगाओ। वाह, वाह! सादिक मुहम्मदखाँ झगड़े और फसाद की दिया सलाई, और उन्हीं की सुरंग पानी पानी पाई।

दूसरी सुरंग मे आग लगाई गई, पर वहाँ भी वही फिस्स! अब तीसरी सुरंग उड़ाई गई जो उन दोनो से बड़ी थी। पचास गज दीवार गिरी। प्रलय का एक विलक्षण दृश्य उपस्थित हो गया। सारा स्थान धूआँधार हो गया। उस समय ईश्वर ही रक्षक था। पत्थर और आदमी कबूतरो की तरह हवा में उड़े जाते थे और कलाबाजियाँ खाते हुए आकर जमीन पर गिरते थे। लोग कहीं के कहाँ, कोसों की दूरी पर जा पड़े। अमीरों मे से किसी ने धावा नहीं किया। सभी लोग चकित होकर खड़े हुए यही सोचते थे कि बाकी दोनो सुरंगें भी क्यों नहीं उड़ीं। वे लोग इस डर से आगे नहीं बढ़ते थे कि कहीं ऐसा न हो कि चित्तौड़वाली विपत्ति यहाँ भी आ उपस्थित हो। और वास्तविक बात यही थी कि सभी अपनी अपनी जगह जी चुरा गए। एक दूसरे का मुँह देखता था। इन लोगों ने आपस की फूट के कारण बड़ा भारी वार खाली गँवाया। किलेवाले भी यही समझकर निश्चिन्त बैठे थे कि बादशाही लश्कर के अमीरों मे एका नहीं है। जब आहंगखाँ आदि बड़े-बड़े और प्रसिद्ध अमीरों ने यह दशा देखी, तो वे सब लोग पीछे हटे और आपस में परामर्श करके उन

लोगो ने यह निश्चित किया कि किला खाली करके यहाँ से निकल चलना चाहिए। पर धन्य था चाँद बीबी का पुरुषोचित साहस। शेरों का सा हृदय रखनेवाली उस स्त्री ने इतने ही अवकाश को बहुत समझा। उसने अपने सिर पर बुरका डाला, कमर में तलवार लगाई और दूसरी तलवार सौंतकर हाथ में लिए हुए बिजली की तरह बुर्ज पर आई। तख्ते, कड़ियाँ, बाँस, टोकरे आदि भरे हुए तैयार थे। बड़े-बड़े थैले और सारी आवश्यक सामग्री लिए हुए वह इसी अवसर की प्रतीक्षा में बैठी हुई थी। वह गिरी हुई दीवार पर स्वयं आकर खड़ी हो गई। मीठी जबान, धन का बल, कुछ लालच देकर और कुछ डरा धमका कर, तात्पर्य यह कि युक्ति से ऐसा काम किया कि स्त्रियाँ और पुरुष सभी मिलकर काम में लिपट गए और बात की बात में उन लोगो ने किले की वह दीवार फिर से खड़ी कर ली और उस पर छोटी-छोटी तोपें चढ़ा दीं। जब बादशाही लश्कर रेला देकर आगे बढ़ता था, तब उधर से ओलों की तरह गोले बरसते थे। अकबर की सेना लहर की तरह टकरा कर पीछे की ओर हट जाती थी। हजारों आदमी काम आए, पर फिर भी कुछ काम नहीं निकला। सन्ध्या समय सब लोग विफल-मनोरथ होकर अपने डेरों पर लौट आए।

जब रात ने अपनी काली चादर तानी, तब शाहजादा मुराद अपने लश्कर और मुसाहबों को लिए हुए अकृतकार्य होकर अपने डेरों में लौट आए। चाँद बीबी चमककर निकली। बहुत से राज, कारीगर और हजारों मजदूर तथा बेलदार आदि तैयार थे। वह स्वयं घोड़े पर सवार थी। मशालें जल रही थीं। चूने गच के

साथ चुनाई आरम्भ कर दी। मुट्ठियाँ भर भरकर रुपए और अशर्फियाँ देती जाती थी। राज-मजदूरो की भी यह दशा थी कि पत्थर और ईंटें तो दूर रहीं, वल्ला, लक्कड़, वल्कि मुरदों की लाशें तक, मतलव यह कि जो कुछ हाथ मे आया, सभी लेकर वरावर दीवार मे चुनते जाते थे। जव सवेरा होने पर वादशाही लश्कर उठा और उसने मोरचो पर दृष्टि दौड़ाई, तव देखा कि तीन गज चौडी और पचास गज ऊँची किले की दीवार रातों रात ज्यों की त्यो, वल्कि पहले से भी वढ़कर दृढ़ तैयार हो गई थी। इसके सिवा इस साहसवाली स्त्री ने और जो जो उपाय तथा युक्तियाँ की थीं, यदि मैं उनका विस्तृत विवरण लिखूँ, तो अकवरी दरवार में चाँदनी खिल जाय। कहते हैं कि अन्त मे जव अन्न समाप्त हो गया, रसद वन्द हो गई और कहीं से सहायता न पहुँची, तव इसने वादशाही लश्कर पर चाँदी और सोने के गोले ढाल ढालकर मारने आरम्भ किए।

इसी वीच में खानखानाँ को समाचार मिला कि आदिल शाह का नायव सुहेलखाँ हब्शी सत्तर हजार सैनिकों की विशाल सेना लेकर आ रहा है। साथ ही यह भी पता चला कि रसद और वनजारों का रास्ता भी वन्द हो गया है। आस-पास के मैदानो मे लकडी तो क्या वल्कि घास का तिनका तक न रहा। चारो ओर के जमींदार अकवरी सेना के विरुद्ध हो गए। लश्कर के जानवर भूखो मरने लगे। उधर से चाँद वीवी ने सन्धि का सँदेसा भेजा और कहलाया कि मैं वुरहान उल् मुल्क के पोते को श्रीमान् की सेवा में उपस्थित करती हूँ। अहमदनगर इसकी जागीर कर दी जाय। वरार देश की कुँजियाँ, अच्छे अच्छे

हाथी, बहुमूल्य रत्न और बादशाहो के योग्य अद्भुत पदार्थ सेवा मे उपहार स्वरूप भेजती हूँ। आप किले पर से घेरा उठा लें। इधर के जो कर्मचारी वास्तविक अवस्था जानते थे, उन्होने निवेदन किया कि अब किले मे रसद आदि नही रह गई है और शत्रु ने हिम्मत हार दी है। अब काम बहुत सहज हो गया है और सन्धि करने की कोई आवश्यकता नही है। परन्तु लालच का मुँह काला हो कि कुछ रिश्वतो ने पेच मारा और कुछ मूर्खों ने आँखो मे धूल डाली। ये लोग सन्धि करने के लिये उद्यत हो गए। बाहर से यह समाचार मिला था कि बीजापुर से आदिल शाही लश्कर इकट्ठा होकर चॉद बीबी की सहायता करने के लिये आ रहा है, इसलिये विवश होकर सब लोग सन्धि करके विदा हुए और किले पर से घेरा उठ गया।

जब शाहजादे ने आदिल शाह की सेना के आगमन का समाचार सुना, तब वह तुरन्त उसका सामना करने के लिये चला। परन्तु कुछ ही पडाव चलने पर उसने सुना कि आदिल-शाही सेना नही आ रही है। उसके आने का समाचार लोगो ने यो ही झूठ-मूठ उडा दिया था। उधर से शाहजादा बरार की ओर लौटा। परन्तु अयोग्य सरदारो ने ऐसे बुरे ढंग से किले पर से घेरा उठाया था कि शत्रु उनके पीछे-पीछे नगाडे बजाता चला आया, और जहाँ-जहाँ उसे अवसर मिलता, वहाँ-वहाँ वह बराबर इन्हे लूटता रहता। लश्कर की बहुत बुरी अवस्था थी। युद्ध की सामग्री और रसद आदि का अभाव सीमा से बहुत बढ गया था। अमीरो मे आपस मे फूट पडी हुई थी, इसलिए शत्रु के आक्रमणो को कोई रोक नही सका। सेनापति बहुत

अनुभवी और प्रबन्ध-कुशल था। यदि वह चाहता तो सभी बिगडी हुई बातें बहुत ही थोड़े समय में बिलकुल ठीक कर लेता। परन्तु दुष्टों ने शाहजादे के कान में यह भर दिया था कि खान-खानाँ चाहता है कि विजय मेरे ही नाम से हो। परन्तु हम सब सेवक हुजूर पर प्राण निछावर करनेवाले हैं और हम लोग यही चाहते हैं कि इसमें हुजूर का ही यश बढ़े। मूर्ख शाहजादे की समझ में यह बात नहीं आई कि इन अयोग्यों से कुछ भी न हो सकेगा। खानखानाँ बिलकुल चुप था। उसे जो कुछ आज्ञा मिलती थी, वही करता था। साथ ही वह इन लोगों की बुद्धि और युक्ति के तमाशे भी देखता रहता था। कभी हँसता था और कभी मन ही मन कुढ़ता था, पर फिर भी जहाँ तक हो सकता था, लड़ाई को सँभाले जाता था। वह चाहता था कि किसी प्रकार स्वामी का काम न बिगडे। दक्षिण देश की कुंजी (राजी अलीख) इसी की कमर में थी। वह विलक्षण जोड़-तोड़ की बातें निकालता था। उसने राजी अलीखाँ की कन्या का शाहजादा मुराद के साथ विवाह कराके अकबर को उसका समधी बना दिया। अब वह आप ही लश्कर में सम्मिलित हो गया था। कई हजार सेना उसके साथ थी। भला दामाद को छोड कर ससुर कहाँ जा सकता था!

इसी बीच में बरार पर अधिकार हो गया। बादशाही लश्कर वहाँ पहुँचकर ठहर गया। शाहजादे ने शाहपुर नामक एक नया नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया और वहाँ के इलाके अपने अमीरों में बाँट दिए। ऊँट और घोड़े चारों ओर भेज दिए। पर इसमें बडी कठिनता यह थी कि वह अपने सामने किसी को कुछ

समझता ही नहीं था। लाख समझाने पर भी अपनी बात के आगे किसी की बात नहीं सुनता था। जो लोग उसके पिता के साम्राज्य के स्तम्भ थे और जो उसके लिये जान निछावर करते थे, उन्हे वह व्यर्थ अप्रसन्न करता रहता था। इसी लिये शहबाजखाँ कम्बो इतना अधिक दुःखी और तंग हुआ कि बिना आज्ञा लिए ही उठकर अपने इलाके को चला गया। वह कहता था कि इस समय जो परिस्थिति है, उसे देखते हुए सन्धि करना किसी प्रकार उचित नहीं है। मैं धावा करने को तैयार हूँ। पर अहमदनगर की लूट मेरी सेना के लिये माफ कर दी जाय। परन्तु शाहजादे ने नहीं माना।

इन सब बातो के होते हुए भी शाहजादे ने आस-पास के देशो पर हाथ फैलाए। उसने पातरी आदि इलाके ले भी लिए। अहमदनगर के अमीरो के झगडो का निपटारा कराने के लिये आदिल शाह की ओर से सुहेलखाँ आया था। वह लौटा हुआ चला जा रहा था। जब उसने ये सब समाचार सुने, तो बहुत नाराज हुआ। इसके सिवा चाँद सुलताना ने भी आदिल शाह को, जो सम्बन्ध मे उसका छोटा देवर होता था, लिखा था। इसपर दक्षिण के प्राय सभी शासको ने एक मत होकर लश्कर इकट्ठे किए और सब लोग एक साथ मिलकर और साठ हजार सैनिको को अपने साथ लेकर बादशाही सेना पर चढाई करने के लिये आए।

खानखानाँ का प्रताप बहुत दिनो से पडा सुख की नींद सो रहा था। इस समय उसने अँगडाई लेकर करवट ली। शत्रु पक्ष की यह अवस्था देखकर उसने शाहजादे और सादिक मुहम्मद खाँ को शाहपुर मे छोडा और स्वय शाहरुख मिरजा तथा

राजी अली खाँ को साथ लेकर बीस हजार सैनिकों सहित आगे बढ़ा। इस युद्ध में खानखानाँ ने ऐसी श्रेष्ठ विजय पाई थी जो पूर्वी आकाश पर सूर्य की किरणों से लिखी जाने के योग्य है। उसने गंगा के किनारे सोनपत नामक स्थान के पास डेरा डाला, और कुछ दिनों तक वहीं ठहर कर उस देश की सब बातों का पता लगाया। वहाँ के लोगों के साथ उसने जान-पहचान भी पैदा कर ली। एक दिन उसने अपनी सेनाएँ सुसज्जित करके अश्ती नामक स्थान पर उन्हें विभक्त किया। नदी में पानी बहुत ही कम था; इसलिये वह बिना नावों आदि के यों ही पैदल चलकर पार उतर गया। बाथरी से बारह कोस की दूरी पर मादेर नामक स्थान पर युद्धक्षेत्र नियत हुआ।

यह घटना १७ जमादी उस्सानी सन् १००५ हि० (सन् १५९७ ई०) की है। आदिल शाह का सेनापति सुहेल खाँ अपनी समस्त सेनाओं को लेकर युद्ध-क्षेत्र में आया। उसके दाहिने पार्श्व में निजाम शाही अमीर थे और बाएँ पार्श्व में कुतुब शाही अमीर थे। वह बड़े अभिमान के साथ सेनाएँ लेकर झंडा उड़ाता हुआ आया। वह स्वयं सेना के मध्य भाग में स्थित हुआ था। लश्कर की संख्या हजारों से भी बढ़ी थी। वह सारा टिड्डी दल बड़े घमंड और धूमधाम के साथ साहस के पैर रखता हुआ आगे बढ़ा। चगताई सेनापति भी बहुत आन-बान के साथ आगे आया। चारों ओर परे जमाकर किला बाँधा। उस किले में राजी अली खाँ और राजा रामचन्द्र राजपूत दाहिनी ओर थे और वह स्वयं अपने साथ मिरजा शाह रुख और मिरजा अली बेग अकबरशाही को लिए हुए सेना के मध्य भाग में खड़ा था।

समझता ही नही था। ए
किसी की वात नही सुन
के स्तम्भ थे और जो उस
वह व्यर्थ अप्रसन्न करता
इतना अधिक दु खी और
उठकर अपने इलाके को च
जो परिस्थिति है, उसे देखते
नही है। मै धावा करने के
लूट मेरी सेना के लिये माफ
नही माना।

इन सब वातो के होते हु
देशो पर हाथ फैलाए। उसने
अहमदनगर के अमीरो के झग
आदिल शाह की ओर से सुहेलख
जा रहा था। जब उसने ये स
हुआ। इसके सिवा चाँद सुल
सम्बन्ध मे उसका छोटा देवर
दक्षिण के प्राय सभी शासको ने
और सब लोग एक साथ मिलक
अपने साथ लेकर वादशाही सेना प

खानखानाँ का प्रताप वहुत
रहा था। इस समय उसने आग
पक्ष की यह अवस्था देखकर उस
म्मद खाँ को शाहपुर मे छोडा

की आवाज मे लडाई का
को अपने तोपखाने पर
क वात भी यही है कि
देश मे ही आया था।
हुआ था। तोपखाने की
थी। उसका तोपखाना
साथ भी था। पहले ही
ई। राजीअलीखाँ और
करने का अवकाश ही
ई। फिर भी दोनो पक्षो
और त्रास्त होकर आगे
ने शत्रु के
...,

शत्रु के तोपखाने का बड़ा अफसर था। वह स्वयं ही उधर से अपना पार्श्व बचाकर निकला और घोड़ा मार कर खानखानाँ के पास आ खड़ा हुआ। उसने आते ही कहा कि आप लोग यह क्या कर रहे है। शत्रु ने अपना सारा तोपखाना ठीक आपके सामने ही चुना हुआ है, और वह अब तोपखाने को महताब दिखलाना ही चाहता है। आप शीघ्र दाहिनी ओर को हट जायँ। उसके रंग-ढंग से खानखानाँ ने समझ लिया कि यह आदमी झूठा नहीं है। उसने स्थान और ढंग के सम्बन्ध मे सब बातें उससे पूछीं और फिर बड़ी व्यवस्था के साथ सेना को एक पार्श्व मे खिसकाया। साथ ही दो सवार राजी अलीखाँ के पास भी भेजे और उससे कहलाया कि यहाँ की यह अवस्था है; अतः तुम भी अपना स्थान बदलो। पर ईश्वर की महिमा देखो कि उनकी समझ उलटी पड़ी। वह तुरन्त अपने स्थान से हटा और जहाँ से खानखानाँ हटा था, वहीं आ खड़ा हुआ। मृत्यु का गोला मानो ठीक इसी समय की प्रतीक्षा कर रहा था। उसका इधर आना था कि मृत्यु ने अपनी तोप में महताब दिखलाई। ससार अन्धकार-पूर्ण हो गया। बहुत देर तक तो कुछ दिखाई ही नहीं दिया। शत्रु ने यह समझ रखा था कि विपक्षी दल का सेनापति हमारे ठीक सामने ही है। इसलिये तोपखाने को आग देते ही उसने आक्रमण कर दिया, यहाँ राजी अलीखाँ अपनी सेना को साथ लिए हुए खड़ा था। खूब घमासान का रण पड़ा। दुःख है कि दक्षिण देश की वह कुंजी उसी युद्ध-क्षेत्र की धूल मे खोई गई। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि उसने और राजा रामचन्द्र ने बहुत ही वीरता तथा दृढ़तापूर्वक

युद्ध-क्षेत्र में डट कर अपने प्राण दिए थे। उसके साथ तीस हजार और वीर भी खेत रहे।

अब दिन दो घड़ी से अधिक बाकी नहीं था। सुहेलखाँ ने देखा कि सामने का मैदान खाली है। उसने सोचा कि मैंने खानखानाँ को उड़ा दिया और उसकी सेना को भगा दिया। वह आक्रमण करके आगे बढ़ा। सन्ध्या होने को ही थी। जहाँ सवेरे बादशाही लश्कर मैदान जमा कर खड़ा हुआ था, वहीं वह इस समय आ पड़ा।

उधर खानखानाँ को यह भी पता नहीं था कि राजी अलीखाँ की क्या दशा है। जब उसने देखा कि आग का बादल सामने से हटा, तब घोड़ों की बागें लीं और अपने सामने की सेना पर जा पड़ा। उसने अपने शत्रु को बिलकुल नष्ट कर दिया। सुहेल खाँ की सेना ने सजे हुए खेमे खाली पाए। पंक्ति की पंक्ति लदे हुए ऊँट, खच्चर, बैल और टट्टू आदि तैयार खड़े थे। उनमें खानखानाँ के निजी और कारखानों के सन्दूक थे, जो हरी और लाल बानातों से मढ़े हुए थे। दक्खिनी सेना के सैनिक इसी के आस-पास के प्रदेशों के रहनेवाले थे। उन लोगों ने जितना सामान बाँधा जा सका, उतना सब बाँध लिया। छावनी को वहीं छोड़ दिया और इन लदे हुए पशुओं को अपने सामने डालकर बहुत ही निश्चिन्त भाव से अपने-अपने घर की राह ली। स्वयं अपनी सेना के अनिष्ट सेवकों ने भी सुरक्षित के सिर पर धूल डाली। ये लोग घर के भेदी थे। खजानों और बहुमूल्य कारखानों पर गिर पड़े और सबने लालच के थैले खूब जी खोलकर भर लिए।

यद्यपि सुहेल खाँ की सेना मारी भी गई थी और भागी भी

थी, पर फिर भी उसका हृदय शेरो का सा था। वह समझता था कि मैंने सेनापति को तो उड़ा ही दिया है। जब सन्ध्या हुई तो उसने सोचा कि इस समय विखरे हुए लश्कर को समेटना कठिन है। पास ही एक गोली के टप्पे पर एक नाला वहता था। वहीं वह रुक गया। उसके साथ बहुत थोड़ी सी सेना थी। उसी को लेकर वहाँ उतर पड़ा। उसने सोचा था कि जिस प्रकार हो, यहीं रात वितानी चाहिए। खानखानाँ ने भी अपने सामने से शत्रु को भगा दिया था। वह वहाँ जा पहुँचा, जहाँ सुहेल खाँ का तोपखाना पड़ा हुआ था। अँधेरे मे वह भी वहीं ठहर गया। उसकी सेना भी भाग गई थी। और उसमे के कुछ सैनिक तो ऐसे भागे थे कि उन्होने शाहपुर तक कहीं रास्ते में दम ही नहीं लिया था। बहुत से लुटेरे वहीं जंगल मे नदी के किनारे खोहो और करारो मे छिपे हुए बैठे थे। वे सोचते थे कि हम लोग प्रात काल होने पर शत्रु की दृष्टि बचाकर निकल जायँगे। खानखानाँ ने उस समय वहाँ से हटना उचित नहीं समझा। तोपो के तख्ते और तोपखाने के छकड़े आगे रखकर मोरचे बना लिए और ईश्वर पर भरोसा करके वहीं ठहर गया। केवल वही स्वामिनिष्ठ सेवक, जो अपनी बात पर प्राणो को निछावर किया करते थे, उसके चारों ओर थे। कोई सवार था, कोई घोड़े की बाग पकड़े जमीन पर बैठा हुआ था। खानखानाँ की दृष्टि आकाश की ओर थी। वह सोचता था कि देखो, सवेरा होने पर मनोरथ सिद्ध होता है या नहीं, या मेरे प्राण ही जाते है। और तमाशा यह कि शत्रु भी पास मे ही पड़ा है। एक को दूसरे को खबर नहीं।

अब अकबर के प्रताप का विलक्षण और अद्भुत कार्य

देखो। सुहेल खाँ के शुभचिन्तक सेवकों में कोई तो दीपक जलाकर और कोई मशाल जलाकर उसके पास लाया। खानखानाँ और उसके साथियों को उनका प्रकाश दिखलाई दिया। उन्होंने वहाँ जाकर पता लगाने और हाल लाने के लिये आदमी भेजे। वहाँ देखते है तो सुहेल खाँ चमक रहे है। दक्खिनी तोपखाने की कई तोपे और जम्बूरक भरे हुए खड़े थे। झट इन लोगों ने उन्हे सीधा करके निशाना बाँधा और दाग दिया। गोले भी जाकर ठीक स्थान पर पड़े। पता लगा कि शत्रु के दल मे हलचल मच गई, क्योंकि वह घबराकर अपने स्थान से हटा था। सुहेल खाँ बहुत ही चकित हुआ कि ये दैवी गोले किधर से आए। उसने आदमी भेजकर अपने आस-पास के साथियों को बुलवाया। उधर खानखानाँ ने विजय के नगाड़े पर चोट देकर आज्ञा दी कि करनाई (प्रसन्नता-सूचक विजय के राग) बजाओ। रात का समय था। जंगल मे आवाज गूँजकर फैली। जो बादशाही सिपाही इधर उधर छितरे बिखरे पड़े थे, उन्होंने अपने लश्कर की करनाई का शब्द पहचाना और उसी विजय के शब्द पर सब लोग चले आए। जब वे लोग आ पहुँचे, तब फिर बधाइयों की करनाई फूँकी गई। जब कोई सरदार सेना लेकर पहुँचता था, तब लोग अल्ला अल्ला का तुमुल घोष करते थे। रात भर मे ग्यारह बार करना बजी। सुहेलखाँ भी अपने आदमी दौड़ा रहा था और सैनिकों को एकत्र कर रहा था। लेकिन उसके सैनिकों की यह दशा थी कि ज्यों ज्यों वे अकबरी करना का शब्द सुनते थे, त्यों त्यों उनके होश उड़े जाते थे। सुहेलखाँ के नकीब भी बोलते और बुलाते फिरते थे। पर सैनिकों के दिल हारे जाते थे। वे गड्ढों

और कोनो मे छिपते फिरते थे या वृक्षों पर चढ़े जाते थे। उन्हे यही चिन्ता हो रही थी कि कहाँ जायँ और किस प्रकार अपने प्राण बचावे। सवेरा होते ही खानखानाँ के सिपाही नदी पर पानी लाने के लिये गए थे। वे लोग समाचार लाए कि सुहेलखाँ बारह हजार सैनिकों को साथ लिए हुए जमा खड़ा है। उस समय इधर चार हजार से अधिक सैनिक नहीं थे। पर फिर भी अकबरी प्रताप के सेनापति ने कहा कि इस अँधेरे को ही अपने लिये सबसे अच्छा अवसर समझो। इसी के परदे मे बात बन जायगी। हमारे पास थोड़ी ही सेना है। यदि दिन ने यह भेद खोल दिया तो बहुत कठिनता होगी। धुँधला सा समय था। सवेरा होना ही चाहता था। इतने मे सुहेलखाँ चमका और उसने युद्ध की वायु में गति दी। तोपें सीधी कीं और हाथियों को सामने लाकर रेला। इधर से अकबरी सेनापति ने धावे की आज्ञा दी। सेना दिन भर और रात भर की भूखी-प्यासी थी। सरदारो की बुद्धि चकित हो रही थी। दौलतखाँ इनका हरावल था। वह घोड़ा मारकर आया और बोला कि ऐसी अवस्था मे इतनी अधिक संख्यावाले शत्रु पर चढ़ कर जाना प्राण ही गँवाना है। पर मैं इतने पर भी हाजिर हूँ। इस समय छः सौ सवार मेरे साथ हैं। मैं शत्रु की कमर में घुस जाऊँगा। खानखानाँ ने कहा कि तुम व्यर्थ दिल्ली का नाम बदनाम करते हो। उसने कहा—हाय दिल्ली! खानखानाँ को भी तो दिल्ली बहुत प्यारी थी। वह प्रायः कहा करता था कि यदि मैं मरूँगा तो दिल्ली में ही मरूँगा। पर यदि इस समय शत्रु को परास्त कर लिया तो सौ दिल्लियाँ हम आप खड़ी कर लेंगे। और यदि मर गए तो

ईश्वर के हाथ है। दौलतखॉं ने घोडा बढाना चाहा। सैयद कासिम बारहा भी अपने सैयद भाइयो को लिए हुए वही खडे थे। उन्होंने कहा कि भाई, हम तुम तो हिन्दुस्तानी है। मरने के सिवा दूसरी बात नही जानते। हॉ यह पता लगा लो कि नवाब का क्या विचार है। दौलतखॉ फिर लौट पडे और खानखानॉ से बोले कि सामने शत्रु का यह समूह है और दैवी विजय है। पर फिर भी यह तो बतला दीजिए कि यदि हार गए, तो आपको कहॉ ढूँढकर मिलेगे। खानखाकॉं ने उत्तर दिया—सब लाशो के नीचे। यह सुनते ही लोदी पठान ने सब बारहा सैयदो के साथ बागे ली। मैदान से कटकर पहले घूँघट खाया और एक बार चक्कर देकर शत्रु की कमर पर गिरा। शत्रुओ मे हलचल मच गई। यह ठीक वही समय था, जब कि खानखानॉ सामने से आक्रमण करके पहुँचा था और बहुत गुथकर लडाई हो रही थी। सुहेलखॉ का लश्कर भी आठ पहर का थका हुआ और भूख-प्यास का मारा हुआ था। ऐसा भागा जिसकी कभी आशा ही नही थी। फिर भी बहुत मार-काट और रक्त-पात हुआ। सुहेलखॉ को कई घाव लगे और वह गिर पडा। उसके पुराने और निष्ट सेवक पतिगो की तरह उसपर आ गिरे। उन लोगो ने उसे उठा कर घोडे पर बैठाया और दोनो ओर से उसकी दोनो बॉहे पकड कर उसे युद्ध-क्षेत्र से बाहर निकाल ले गए। थोडी ही देर मे मैदान साफ हो गया। खानखानॉ के लश्कर मे बे-ताल विजय के नगाडे बजने लगे। वीरो ने युद्ध-क्षेत्र को देखा तो वह बिलकुल साफ पडा हुआ था। उसमे कही शत्रु के एक आदमी का भी पता नही था।

लोगो ने प्रसिद्ध कर दिया कि राजी अलीखाँ युद्ध-क्षेत्र से भाग कर अलग हो गया। कुछ लोगों ने तो यह भी हवाई उड़ाई थी कि वह शत्रु-पक्ष मे जाकर मिल गया। पर जब ढूँढ़ा गया, तब पता चला कि वह बुड्ढा शेर कीर्त्ति के क्षेत्र में कीर्त्ति-शाली होकर सोया हुआ है। उसके आस-पास उसके पैंतिस प्रसिद्ध सरदार और पॉच सौ निष्ठ दास कटे हुए पड़े हैं। उसकी लाश बहुत धूम-धाम से उठा कर लाए। उलटी सीधी बातें कहने-वाळो के मुँह काले हो गए। खानखानाँ को इस विजय से बहुत अधिक आनन्द हुआ; पर इस दुर्घटना ने सारा मजा किरकिरा कर दिया। उस समय उसके पास नगद और सामान आदि सब मिलाकर ७५ लाख रुपये का माल था। इस विजय के धन्यवाद के रूप में उसने वह सब नगद और माल अपने सिपाहियो मे बाँट दिया। केवल आवश्यक सामग्री के दो ऊँट अपने पास रख लिए, क्योंकि उस सामग्री के बिना उसका काम ही नहीं चल सकता था।

यह युद्ध खानखानाँ के प्रताप का ऐसा कीर्त्तिपत्र था, जिसके दमामे से सारा भारतवर्ष गूँज उठा। बादशाह के पास निवेदन-पत्र पहुँचा। वे अभी अब्दुल्ला उजबक के मरने का समाचार सुन कर पंजाब से लौटे थे। वे भी यह सुसमाचार सुन कर बहुत अधिक प्रसन्न हुए। वहाँ से खानखानाँ के लिए एक बहुमूल्य खिलअत और बहुत अधिक प्रशसा से भरा हुआ आज्ञापत्र भेजा। जहाँ-जहाँ शत्रु लोग थे, वे सब सुन कर सन्नाटे में आ गए और उनके मुँह बन्द हो गए। ये विजय-पताका फहराते हुए और आनन्द के बाजे बजाते हुए शाहपुर मे आकर शाहजादे को

सेवा मे उपस्थित हुए और उसे मुजरा किया, और तलवार खोल कर अपने खेमे मे बैठ गए। शाहजादे के सादिक मुहम्मद आदि मुसाहब और मुख्तार लोग अब भी विरोध और द्वेष की दीया सलाई सुलगाते जाते थे। इधर खानखानाँ बादशाह के पास निवेदनपत्र भेज रहा था और उधर शाहजादा भेज रहा था। शाहजादे ने अपने पिता को यहाँ तक लिखा कि आप अब्बुल-फजल और सैयद यूसुफखाँ मशहदी को यहाँ भेज दे और खानखानाँ को अपने पास बुला लें। खानखानाँ भी उसी के लाडले थे। उन्होने भी लिखा कि हुजूर शाहजादे को बुला ले। यह सेवक अकेला ही विजय का सारा भार अपने ऊपर लेता है। यह बात बादशाह को भली नही लगी। शेख ने अकबरनामे मे इसके अभिप्राय का बहुत अच्छा इत्र निकाला है। वह लिखते है कि हुजूर को मालूम हुआ कि शाहजादा उखडे या टूटे हुए दिल को जोडना सहज काम समझता है। लोगो को जिस प्रकार रखना चाहिए, उस प्रकार वह नही रखता। और जब खानखानाँ ने देखा कि मेरी बात नही चलती, तब वह अपनी जागीर की ओर चला गया। राजा शालिवाहन को आज्ञा हुई कि तुम जाकर शाहजादे को ले आओ। हम उसे उचित उपदेश और शिक्षा देकर और काम करने का ठीक मार्ग बतला कर यहाँ से फिर भेजे और रूपसीह खवास को खानखानाँ के पास भेजा और उससे कहा कि तुम जिस स्थान पर खानखानाँ से मिलो, वहीं से उसे वापस लौटने के लिये कहो। साथ ही यह भी कह दो कि जब तक शाहजादा दरबार मे विदा होकर वहाँ न पहुँचे, तब तक तुम वहाँ चल कर सेना और देश की व्यवस्था करो।

यद्यपि शाहज़ादा अधिक मद्य-पान करने और उसके परिणाम-स्वरूप होनेवाली दुरवस्थाओं के कारण दरबार मे आने के योग्य नही था, तथापि उसने बादशाह के दरबार में जाने का विचार किया। उसका मिजाज पहचाननेवाले लोगों ने अपनी शुभ-चिन्तना दिखलाते हुए कहा कि इस समय हुजूर का इस देश से हटना ठीक नहीं है। शाहज़ादे की समझ मे भी यह बात आ गई और वह रुक गया। उधर खानखानाँ ने कहा कि जब तक शाहज़ादा वहाँ उपस्थित है, तब तक मे वहाँ नहीं जाऊँगा। बादशाह को ये बातें अच्छी नही लगीं और उसे मन में दुःख हुआ। इस प्रकार सन् १००६ हि० (सन् १५९८ ई०) मे खानखानाँ अपने इलाके पर चले गए और वहाँ से दरबार मे आए। कई दिनों तक बादशाह उनसे अप्रसन्न रहा और अपने दरबार मे आने नहीं दिया। वे भी दो पीढ़ियों से बादशाह का मिजाज पहचानते थे और उन्हे बातें करना भी खूब आता था। जब उन्हें बादशाह की सेवा मे अपने सम्बन्ध की बातें निवेदन करने का अवसर मिला, तब उन्होंने विस्तार-पूर्वक बतलाया कि शाहज़ादा कैसे बुरे लोगो की संगति मे रहता है, कितना मद्यपान करता है, सब कामों की ओर से कितना लापरवाह रहता है, और लोगो के साथ उसके मुसाहब कैसा अनुचित और दुष्टतापूर्ण व्यवहार करते हैं, आदि आदि। इस प्रकार बादशाह के मन मे जमी हुई मैल उन्होंने धो डाली और थोड़े ही दिनों मे जैसे पहले थे, वैसे ही फिर हो गए। शेख अब्दुलफ़ज़ल और सैयद यूसुफ मशहदी दोनों दक्खिन की ओर भेज दिए गए। शाहज़ादे का मद्यपान सीमा से बहुत बढ़ चुका

था। वह शेख के पहुँचने तक भी न ठहर सका। ये लोग अभी रास्ते मे ही थे कि वह परलोक सिधारा। दुख है उस दीवानी जवानी पर, जिसके कारण उसने मद्यपान के फेर में पड़ कर अपने प्राण गँवाए। तीस वर्ष की अवस्था मे सन् १००७ हि० (सन् १५९९ ई०) मे शाहजादा मुराद बिना अपनी कोई मुराद पूरी किए हुए इस ससार से चला गया।

सन् १००६ हि० मे शाह अब्बास ने यह दशा देख कर खुरासान पर चढाई की और विजय पाई। उन्ही दिनो मे उसने बहुत से बहुमूल्य उपहारो के साथ अपना राजदूत अकबर के दरबार मे भेजा।

इसी वर्ष खानखानाँ के नव-युवक पुत्र हैदर कुली का देहान्त हो गया। खानखानाँ उसे बहुत चाहता था और प्यार से हैदरी कहा करता था। उसे भी शराब की आग ने ही कबाब बनाया था। नशे मे मस्त पडा था। इतने मे आग लग गई। वह मस्ती का मारा उठ भी न सका और वही जलकर मर गया।

इसी वर्ष बादशाह लाहौर से आगरे जा रहे थे। सब अमीर साथ थे। खान आजम की बहन और खानखानाँ की बेगम माह बानो बहुत दिनो से बीमार थी। अम्बाले मे उसकी तबीयत इतनी अधिक खराब हो गई कि उसे वही छोडना उचित जान पडा। बादशाह ने उधर प्रस्थान किया और बेगम ने इस ससार से प्रस्थान किया। वह अकबर बादशाह की कोकी और मिरजा अजीज कोका की बहन थी और खानखानाँ की बेगम थी। उसकी सोगवारी की रसम अदा करने के लिये दरबार से दो अमीर आए थे।

केवल अकबर ही नहीं, बल्कि चगताई वंश के सभी बादशाह अपने पैतृक देश समरकन्द और बुखारा पर प्राण देते थे। सन् १००५ हि० मे अब्दुल्ला उजबक के मरने से सारे तुर्किस्तान मे हलचल मच रही थी। नित्य नए बादशाह बनते थे और नित्य मारे जाते थे। दक्खिन मे जो लड़ाइयाँ फैली हुई थीं, उन्हे शेख और सैयद की युक्ति और तलवार समेट नही सकती थी। अकबर ने अपने अमीरो को एकत्र करके परामर्श किया कि पहले दक्षिण का निर्णय कर लेना चाहिए; अथवा वहाँ का युद्ध स्थगित कर देना चाहिए और तब तुर्किस्तान की ओर चलना चाहिए। अकबर को इस बात का भी बहुत दुःख था कि दक्खिन मे मेरे नवयुवक पुत्र के प्राण गए, पर फिर भी उस देश पर विजय प्राप्त नहीं हुई। यह निश्चय हुआ कि पहले घर की ओर से निश्चिन्त हो लेना चाहिए। इसी लिये सन् १००७ हि० मे शाहजादा दानियाल को बहुत बड़ा लश्कर और प्रचुर युद्ध-सामग्री देकर उधर भेजा और खानखानाँ को उसके साथ कर दिया। मुराद की दुरवस्था आदि का स्मरण दिलाकर उसे बहुत उपदेश भी दिया था। इस बार का प्रस्थान बहुत ही व्यवस्था-पूर्वक हुआ था। खानखानाँ की जाना बेगम नामक कन्या के साथ शाहजादा दानियाल का विवाह कर दिया गया था। नित्य अमीर लोग एकत्र होते थे और एकान्त में बात-चीत हुआ करती थी। सेनापति को सभी ऊँच-नीच की बातें समझा दी गई थीं। जब उसने प्रस्थान किया, तब पहले पड़ाव पर बादशाह स्वयं उसकी छावनी मे गए। उसने भी ऐसे-ऐसे पदार्थ उपहार स्वरूप सेवा में उपस्थित किए जो अजायब-खानों में ही रखने के योग्य थे। यों

तो बहुतेरे घोड़े थे, पर उनमे से एक घोड़ा ऐसा था जो शेर के साथ कुश्ती लड़ता था। वह सामने से हाथी का मुकाबला करता था और हटकर पिछले पैरो से वार करता था। पिछले दोनो पैरों पर खड़ा होकर अगले दोनो पैर हाथी के मस्तक पर रख देता था। लोग तमाशे देखते थे और चकित होते थे।

अब खानखानाँ ने शाहजादे को साथ लेकर दक्षिण देश में प्रवेश किया। हम तो समझते थे कि बहुत दिनो के बिछड़े हुए मित्र विदेश मे आपस मे मिलकर बहुत प्रसन्न होंगे, पर यहाँ बिलकुल उलटी ही बात देखने मे आई। हृदय के दर्पण काले हो गए और प्रेम के लहू सफेद हो गए। वे लोग पूरे शतरंजबाज थे। छल और कपट की चालें चलते थे। पर खानखानाँ शाहजादे की आड़ मे चलता था, इसलिये उसकी बात खूब चलती थी। अभी युद्ध-क्षेत्र तक पहुँचने भी नहीं पाए थे कि एक निशाना मारा। शेख अकबरनामे मे लिखते है और ऐसा जान पड़ता है कि कलम से विवशता का दर्द स्पष्ट प्रकट हो रहा है। लिखा है—'मैंने अहमदनगर मे सब कामो का पूरा-पूरा प्रबन्ध कर लिया था। पर इतने मे शाहजादे का आज्ञापत्र पहुँचा कि जब तक हम न आ जायँ, तब तक पैर आगे मत बढ़ाओ। इस आज्ञा का पालन करने के सिवा और क्या हो सकता है।''

खानखानाँ की व्यक्तिगत योग्यता निर्विवाद है। उस पर कोई कुछ भी आपत्ति नहीं कर सकता। इन्होंने अपने काम और नाम के लिये अलग प्रबन्ध किए। उधर तो शेख को रोक दिया कि जब तक हम न आवे, तब तक अहमदनगर पर आक्रमण न करना। हम आते है, तब आक्रमण

होगा। उधर मार्ग में आसीर पर ही आप अटक रहे, और यह सोचा कि पहले रास्ता साफ करके तब अहमद-नगर को लेंगे। यह भी शेख पर चोट थी, क्योंकि आसीर मे शेख का समधियाना था। शेख ने भी एक बहुत ही विलक्षण मन्सूबा मारा। ऊपर-ऊपर अकबर को लिखा कि शाहजादा लड़कपन कर रहा है। आसीर का मामला तो बिलकुल साफ ही है। उसे जिस समय हुजूर चाहेंगे, उसी समय ले लेंगे, और जिस प्रकार हुजूर चाहेंगे, उसी प्रकार वहाँ का निपटारा हो जायगा। पर अहमदनगर का काम बिगड़ा जा रहा है। अकबर बादशाह युक्ति का बादशाह था। उसने शाहजादे को लिखा कि शीघ्र ही अहमदनगर की ओर प्रस्थान करो। वहाँ का अवसर हाथ से निकला जाता है, और स्वयं पहुँच कर उस पर घेरा डाल दिया और अब्बुल फजल को वहाँ से अपने पास बुला लिया।

खानखानाँ ने अहमदनगर पर घेरा डाला। नित्य मोरचे बढ़ाते थे, दमदमे बनाते और सुरंग खुदवाते थे। उधर दक्खिनी वीर किले के अन्दर बैठे हुए उसकी रक्षा कर रहे थे और साथ ही बाहर भी चारों ओर फैले हुए थे। बनजारो पर गिरते थे और बहीर तथा लश्कर पर झपट्टे मारते थे। चाँद बीबी युद्ध की सामग्री एकत्र करने, लश्कर के अमीरों को प्रसन्न करने और बुरजो तथा परकोटो की दृढ़ता रखने मे बाल भर भी कमी नहीं करती थी। फिर भी कहाँ अकबर का प्रताप और बादशाही साज-सामान और कहाँ अहमदनगर का छोटा सा सूबा! इसके सिवा किले मे रहनेवाले कुछ सरदारों की नीयत भी खराब थी और उनमें आपस मे राग-द्वेष भी था। बेगम ने अपने मन्त्री से ये

सब बाते कही, और कहा कि अब किला बचता हुआ दिखलाई नहीं देता। इसलिये उचित यही है कि हम लोग अपनी कीर्त्ति की रक्षा करे और किला शत्रु के हवाले कर दें। मन्त्री चीता खॉ ने बेगम का यह विचार दूसरे सरदारो को बतलाया, और उन्हे यह कहकर बहकाया कि बेगम अन्दर ही अन्दर अकबर के अमीरो मे मिली हुई है। दक्खिनी लोग यह बात सुनते ही बिगड खडे हुए और उस पवित्र तथा सदाचारिणी बेगम को शहीद किया। अकबरी अमीरो ने सुरगे उड़ाकर धावा किया। तीस गज दीवार उड़ गई। उन लोगो ने बाबुली बुर्ज से किले मे प्रवेश किया। चीता खाँ और हजारों दक्खिनी वीर मार डाले गए। चीता खॉ के साथ उसके सब सिपाहियो की भी हत्या की गई। जिस लडके को लोगो ने निजाम उलमुल्क बहादुर शाह बनाकर सिहासन पर बैठाया था, वह पकड लिया गया। खान-खानॉ उसे लेकर हाजिर हुए और बुरहानपुर मे उसे दरबार मे उपस्थित किया। राज्यारोहण के पैतालिसवे वर्ष मे चार महीने और बीस दिन के घेरे के उपरान्त अहमदनगर का किला जीता गया। इस विजय का वर्णन करते हुए सभी लोगो ने लिखा कि जो कुछ किया, वह सब खानखानाँ ने किया। और वास्तव मे उन्होंने जो कुछ लिखा था, वह बिलकुल ठीक लिखा था।

बादशाह ने आसीर जीत लिया और तब आगरे की ओर प्रस्थान किया।

उस देश का नाम शाहजादा दानियाल के नाम पर रखा गया। दानियाल शब्द के विचार से खान्देश का नाम दानदेश रखा गया।

खानखानाँ ने फिर पेच मारा। उन्होंने शेख की योग्यता और कार्य-कुशलता की बहुत अधिक प्रशंसाएँ लिखवाईं और उन्हें बादशाह से माँग लिया। अब वहाँ की हालत बहुत ही नाजुक हो गई। शाहजादा साहब तो देश के मालिक ही थे और खानखानाँ उनके श्वसुर तथा प्रधान सेनापति थे। अब शेख साहब को उनके अधीन होकर रहना पड़ा। खानखानाँ को अधिकार था कि वह शेख को जहाँ चाहे, वहाँ भेज दें, और जब वे बुला भेजें, तब शेख चले आवें। यदि खानखानाँ चाहें तो शेख की जगह किसी और को भी भेज दें। शेख साहब लश्कर में बैठे मुड़ मुड़कर मुँह देखा करें और जला करें। जब किसी विकट समस्या पर विचार होने लगता था और लोगों से परामर्श लिया जाता था, तब कभी तो शेख की सम्मति ठीक समझी जाती थी और कभी रद्द हो जाती थी। शेख मन ही मन बहुत दु:खी होते थे। पहले वे जिस कलम से खानखानाँ पर अपने प्राण निछावर करते थे, अब उसी कलम से वे उनके सम्बन्ध में बादशाह को ऐसी-ऐसी बातें लिखते थे जो हम शैतान के सम्बन्ध मे भी नहीं लिख सकते। परन्तु धन्य है शेख की प्रकृति की शोखी कि उसमें भी उसने ऐसे-ऐसे काँटे चुभाए हैं जिन पर हजारो फूल निछावर हो जायँ।

यह संसार भी बडे-बड़े अद्भुत कार्य कर दिखलाता है। जो मित्र आपस मे सदा प्रेमी और प्रिय बने रहते थे, उन्हें आपस मे कैसा लडा दिया! अब यह अवस्था हो गई थी कि एक दूसरे पर कपट के प्रहार करता था और उसके लिये अपने मन मे अभिमान करता था। पर यह भी ध्यानपूर्वक देखना चाहिए

कि ये लोग किस प्रकार चलते थे। इसमे सन्देह नहीं कि शेख भी बुद्धिमत्ता के पर्वत और युक्ति के सागर थे और खानखानाँ उनके आगे पाठशाला मे पढनेवाले लडके थे, पर फिर भी आफत के टुकडे थे। इनकी युवावस्था की वारीक वाते और छोटी-छोटी चाले भी ऐसी होती थीं कि शेख की कुशाग्र-बुद्धि सोचती ही रह जाती थी।

पाठक भी अपने मन मे यह बात अवश्य सोचते होगे कि क्या कारण था कि पहले तो इन दोनो आदमियो मे इतना अधिक प्रेम था और अब आपस मे इस प्रकार कैसे शत्रुता हो गई। कहाँ तो प्रेम का वह आवेश था, और कहाँ यह विरसता आ गई।

मेरे मित्रो, बात यह है कि पहले दोनो की उन्नति के दो अलग-अलग मार्ग थे। एक तो अमीरी और सेनापतित्व के दरजे मे ऊपर चढना चाहता था। बादशाह की मुसाहिबी और उसकी सेवा मे उपस्थिति उसकी आरम्भिक सीढियाँ थीं। दूसरा विद्या, पाडित्य, ग्रन्थ-रचना, गद्य, पद्य, परामर्श और मुसाहिबी के पदो को ही अपनी प्रतिष्ठा और सेवा समझनेवाला था। अमीरी अधिकारी को इन सब बातो का एक आवश्यक अग समझो। प्रत्येक दशा मे एक दूसरे के काम के सहायक थे, क्योंकि एक की उन्नति दूसरे की उन्नति मे बाधक नहीं होती थी। अब दोनो एक ही उद्देश्य के साधक और इच्छुक हो गए। इसलिये पहले इन दोनों मे जो मित्रता थी, वह अब प्रतिद्वन्द्विता के रूप मे परिणत हो गई थी।

ये तो तीन सौ बरस की पुरानी बाते है, जिनके लिये हम

अँधेरे मे अनुमान के तीर फेंकते हैं। कलेजा तो उस समय खून होता है, जब मैं अपने ही समय मे देखता हूँ कि दो आदमी वरसों के साथी और बाल्यावस्था के मित्र थे। दोनों ने एक ही विद्यालय मे साथ-साथ शिक्षा पाई थी। दोनो अलग-अलग क्षेत्रों मे चल रहे थे। उस समय दोनो एक दूसरे का बाहु-बल थे। एक दूसरे का हाथ पकड़कर उसे उन्नति के मार्ग पर ले चलते थे। संयोग से दोनो के घोड़े एक ही घुड़दौड़ के मैदान में आ पड़े। अब पहला तुरन्त दूसरे को गिराने के लिये उद्यत हो गया।

अकबर के लिये यह अवसर बहुत कठिन था। दोनों ही उस पर प्राण निछावर करनेवाले थे, दोनो ही उसके नेत्र थे, और दोनो को अपने-अपने स्थान पर दावा था। धन्य है वह बादशाह जो दोनो को दोनों हाथों मे खेलाता रहा और उनसे अपना काम लेता रहा। उसने एक के हाथ से दूसरे को गिरने नहीं दिया।

शेख ने अपने पत्र में हृदय के जो धूएँ निकाले हैं, वे वाक्य नहीं हैं। उसने जले हुए कबाबो को चटनी मे डुबाकर भेज दिया है। उनमे यह भी पता चलता है कि उसमे हास्य-प्रियता और विनोद की मात्रा कितनी थी। और यह भी पता चलता है कि ये लोग परिहास का कितना नमक-मिर्च और विनोद का कितना गरम मसाला छिड़कते थे। वही अकबर को अच्छा लगता था और उसी के चटखारो मे इन लोगो का काम निकल जाता था। मैंने शेख के कुछ निवेदन-पत्र उसके वर्णन के अन्त मे दे दिए हैं। खानखानाँ ने भी खूब-खूब गुल और फूल कतरे होंगे। परन्तु दुःख है कि वे मेरे हाथ नहीं आए।

ये रगड़े-झगड़े इसी प्रकार चले जा रहे थे। सन १००९

हि० मे खानखानाँ की युक्ति और चातुरी ने तिलंगाना देश मे अपनी विजयो का झंडा जा गाड़ा। सन् १०११ हि० मे शेख जी बुलवाए गए, पर दुःख है कि वे मार्ग मे से ही परलोक सिधारे। खानखानाँ ने इधर कई बरसो के बीच मे दक्खिन का बहुत कुछ अंश जीत लिया था। जब वे वहाँ की व्यवस्था करके निश्चिन्त हुए, तब वे भी सन १०१२ हि० मे दरबार मे बुलवाए गए। इस पर बुरहानपुर, अहमदनगर और बरार का देश शाहजादे के नाम हुआ और खानखानाँ को उनके शिक्षक का पद मिला।

सन् १०१३ हि० मे इन पर बड़ी भारी विपत्ति आई। शाहजादे को बहुत दिनो से मद्य-पान की बुरी लत लगी हुई थी। भाई की मृत्यु ने भी उसे तनिक सचेत नहीं किया। पिता की ओर से उसको भी और खानखानाँ को भी बराबर ताकीदे होती रहती थीं। पर किसी का कुछ भी फल नहीं होता था।

शाहजादे की दुर्बलता सीमा से बहुत बढ़ गई थी। यहाँ तक कि उसकी जान पर नौबत आ पहुँची। खानखानाँ और अब्दुल-हसन को बादशाह ने इसलिये भेजा कि ये लोग जाकर उसका मद्य-पान रोकें और उसकी इससे रक्षा करे। पर शाहजादे की यह दशा थी कि जरा तबीयत ठीक हुई और फिर पी गया। जब बहुत अधिक बन्दिश हुई और यह प्रबन्ध हुआ कि शराब किसी प्रकार उसके पास पहुँचने ही न पावे, तब उसने एक और ढंग निकाला। वह शिकार का बहाना करके निकल जाता था और वहाँ शराब पीता था। यदि वहाँ भी शीशा नहीं पहुँच सकता था, तो करावल धन के लोभ मे कभी बन्दूक की नली मे, कभी हिरन और कभी बकरी की अँतड़ी मे भरते और पगड़ियो

के पेंच में लपेटकर ले जाते थे। वन्दूक की नली मे भरी हुई शराव मे वारूद का धूआँ और लोहे की मैल भी कटकर मिल जाती थी, इसलिये वह विप का काम कर गई। संक्षेप यह कि तेतिस वरस छः महीने की अवस्था में ही वह काल-कवलित हो गया। भला इस शोक का वर्णन कलम कहाँ तक कर सकती है। हाँ, खानखानाँ के हृदय से पूछना चाहिए। दुःख जाना वेगम का है। इसके विपय की कुछ वातें खानखानाँ की सन्तान के वर्णन मे दी गई हैं। वह वहुत ही सच्चरित्रा, वहुत वड़ी वुद्धिमती और सुयोग्य स्त्री थी। दुःख है कि ठीक युवावस्था में रँड़ापे की सफेद चादर उसके सिर पर डाली गई। इस दुर्घटना ने उसे ऐसा दुःखी किया, जैसा दुःखी और कोई दुर्घटना वहुत ही कम करती है।

जव जहाँगीर का शासन काल आरम्भ हुआ, तव खानखानाँ दक्खिन में थे। सन् १०१६ हि० में जहाँगीर स्वयं अपनी तुजुक में लिखता है कि खानखानाँ वडी कामना से लिख रहा था और सेवा मे उपस्थित होने की इच्छा प्रकट करता था। मैंने आज्ञा दे दी। वाल्यावस्था मे वह मेरा शिक्षक रह चुका था। वुरहानपुर से चलकर आया। जव सामने उपस्थित हुआ, तव उस पर इतनी अधिक उत्सुकता और प्रसन्नता छाई हुई थी कि उसे इतनी भी खवर नहीं थी कि वह सिर से चलकर आया है या पैर से चलकर आया है। वह वहुत ही विकल होकर मेरे पैरों पर गिर पड़ा। मैंने भी अनुग्रह और प्रेमपूर्वक हाथ से उसका सिर उठाकर उसे गले से लगाया और उसका मुँह चूमा। उसने मोतियों की दो सुमरनियाँ और कुछ लाल तथा पन्ने भेंट किए। रत्न मिलाकर तीन लाख रुपए के थे। इसके सिवा उसने और

भी बहुत से पदार्थ उपहार स्वरूप सेवा में उपस्थित किए। आगे चलकर एक और स्थान पर जहाँगीर लिखता है कि ईरान के बादशाह शाह अब्बास ने जो घोड़े भेजे थे, उनमें से एक समन्द घोड़ा मैंने उसे दिया। वह इतना प्रसन्न हुआ कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। वास्तव में इतना लम्बा और ऊँचा घोड़ा, और वह भी इतने अधिक गुणों और विशेषताओं से युक्त, आज तक कभी भारतवर्ष में नहीं आया था। मैंने उसे फुतूह नामक हाथी भी दिया था, जो लड़ाई में अपना जोड़ नहीं रखता। साथ ही बीस और हाथी भी उसे प्रदान किए थे। कुछ दिनों के बाद खिलअत, कमर में लगाने की जड़ाऊ तलवार और खासे का हाथी भी प्रदान किया गया। अब ये दक्खिन जाने के लिये बिदा हुए और यह करार कर गए कि दो बरस के अन्दर में वह सारा देश जीत दूँगा। पर हाँ, मेरे पास पहले से जो सेना है, उसके अतिरिक्त बारह हजार सवार और दस लाख रुपयों का खजाना मुझे और प्रदान किया जाए। इसी अवसर पर खाफीखाँ लिखते हैं कि खानखाना पहले दीवान थे। पर अब उन्हें वजीर-उल्मुल्क की उपाधि प्रदान की गई, और पंज-हजारी पंज हजार का मन्सब प्रदान करके दक्खिन का काम पूरा करने के लिये भेजे गए। तीस हजार सवार और कई प्रसिद्ध अमीर उनके साथ कर दिए गए। और जो कुछ पुरस्कार आदि मिले, उनका विवरण कहाँ तक दिया जाए।

खानखाना के प्रताप का सितारा उसकी उमर के साथ प्रतिष्ठा-पूर्वक ढलता जाता था। वह दक्खिन की लड़ाइयों में लगा हुआ था। सन १०१७ हि० में जहाँगीर ने शाहजादा परवेज

को दो लाख रुपयों का खजाना, बहुत से बहुमूल्य रत्न, दस हाथी और खासे के तीन सौ घोड़े प्रदान किए और सैयद सैफखाँ बारहा को उसका शिक्षक नियुक्त करके लश्कर साथ कर दिया, और आज्ञा दी कि खानखानाँ की सहायता करने के लिये जाओ। वहाँ फिर वही दशा हुई जो मुराद के समय हुई थी। बुड्ढे सेनापति की बुद्धि भी बुड्ढी थी। इधर नवयुवकों के दिमाग में नई रोशनी थी। दोनों की प्रकृति अनुकूल नहीं पड़ी। काम बिगडने लगे। ठीक वर्षा ऋतु मे चढ़ाई कर दी गई। और वर्षा भी इतनी अधिक हुई, जो बिलकुल प्रलय का ही दृश्य दिखलाती थी। उस वर्षा के साथ ही साथ विपत्तियाँ, हानियाँ, खराबियाँ और लज्जा आदि भी खूब बरसीं। परिणाम यह हुआ कि जिस खानखानाँ ने आज तक कभी पराजय का नाम भी नहीं जाना था, वही तिरसठ वर्ष की अवस्था मे पराजित हुआ। वह दुर्दशाग्रस्त, वृद्धावस्था का भार और अप्रतिष्ठा की सामग्री लादकर उसे घसीटता हुआ बुरहानपुर में पहुँचा। वही अहमदनगर, जिसे उसने गोले मारकर जीता था, इस बार उसके हाथ से निकल गया, और तमाशा यह कि शाहज़ादा परवेज ने अपने पिता को लिखा कि जो कुछ हुआ, वह सब खानखानाँ की स्वेच्छाचारिता और पारस्परिक राग-द्वेष से हुआ। या तो हुजूर मुझे बुला लें और या उन्हें बुला लें। इधर खानखानाँ ने यह इकरार लिख भेजा कि यह सेवक इस युद्ध का सारा उत्तरदायित्व अपने सिर लेता है। मुझे तीन हजार सवार और मिलें। इस समय बादशाह का जो देश शत्रु के अधिकार मे चला गया है, वह यदि मैं दो वर्ष के अन्दर न ले लूँ, तो फिर कभी हुजूर के सामने

मुँह न दिखलाऊँगा। अन्त मे सन् १०१८ हि० मे खानखानाँ बुला लिए गए।

सन् १०२० हि० मे कन्नौज और काल्पी आदि का प्रान्त खानखानाँ और उसकी सन्तान को जागीर के रूप मे प्रदान किया गया।

जब सन् १०२१ हि० मे यह पता चला कि दक्खिन मे शाहजादे का लश्कर और उसके सब अमीर इधर उधर मारे-मारे फिरते है और सब काम बिलकुल बिगड़ चुका है, तब जहाँगीर को फिर अपना पुराना सेनापति याद आया। दरबार के अमीरों ने भी कहा कि दक्खिन के झगडो को जैसा खानखानाँ समझता है, वैसा और कोई नही समझता। उसी को वहाँ भेजना चाहिए। ये फिर दरबार मे उपस्थित हुए। छ हजारी मन्सब, बहुत बढ़िया खिलअत, जडाऊ तलवार, खासे का हाथी और ईरानी घोडा उन्हे प्रदान हुआ। शाहनवाजखाँ को तीन हजारी जात और सवार का मन्सब, खिलअत और घोडे आदि दिए गए। दाराब को पाँच सौ का जाती या व्यक्तिगत मन्सब और तीन सौ सवार बढाए गए। अर्थात् कुल दो हजारी जात का मन्सब और पन्द्रह सौ सवार और खिलअत आदि दी गई। इस प्रकार उसके सभी बडे-बडे साथियो को खिलअते और घोडे प्रदान किए गए और वे ख्वाजा अब्बुलहसन के साथ विदा हुए।

सन १०२४ हि० मे उसके लडके भी बहुत योग्य हो गए। अब पिता को दरबार से देश मिलता था। वह बैठा हुआ वहाँ की व्यवस्था करता था, और उसके लडके देशो पर विजय प्राप्त करते फिरते थे। शाहनवाजखाँ बालापुर मे था। अम्बर की ओर

। कई सरदार आकर उसके साथ मिल गए। उसने बधाइयों के
ाजे बजवाए। बहुत मुरव्वत और हौसले से उनका आदर-
त्कार किया। प्रत्येक सरदार की योग्यता और पद आदि के
अनुसार उन्हें नगद धन, सामग्री, घोड़े और हाथी आदि दिए।
ोपखाने का लश्कर रकाब में तैयार था। उन्हीं लोगो के परामर्श
से वह सेना लेकर अम्बर की ओर चला। अम्बर के सरदार
सिपाही गाँवों में माल की तहसील करने के लिये फैले हुए थे।
वे लोग सुनकर गाँव-गाँव से दौड़ पड़े और टिड्डियों की तरह
उमड़ आए। अभी यह वहाँ तक पहुँचा भी नहीं था कि शत्रु के
महलदारखाँ, याकूतखाँ, दानिशखाँ, दिलावरखाँ आदि कई अमीर
और सरदार सेना लेकर आ पहुँचे। मार्ग मे ही दोनो पक्षों का
सामना हो गया। वे लोग भागे और बहुत ही बुरी अवस्था मे
अम्बर के पास पहुँचे।

अम्बर सुनकर जल गया। वह आदिलखानी और कुतुब-
उलमुल्की सेनाएँ लेकर बड़े जोरों के साथ आया। ये भी आगे
बढ़े। जब दोनों लश्कर लड़ाई के पल्ले पर पहुँचे, तब वहाँ बीच
में एक नाला पड़ता था। वहीं उन लोगो ने डेरे डाल दिए।
दूसरे दिन परे बाँधकर युद्ध की तैयारी होने लगी। शत्रु के पक्ष
में याकूतखाँ हब्शी था जो वहाँ के जंगलों का शेर था। सबसे
पहले वही आगे बढ़ा और युद्ध-क्षेत्र उसने ऐसे स्थान पर रखा
जहा नाले की चौडाई कम थी। लेकिन किनारों पर दूर-दूर तक
दलदल थी। इसी लिये उसने तीरन्दाजों और बानदारों को घाटों
पर बैठाकर मार्ग रोक लिया था। पहर भर दिन बाकी था।
युद्ध आरम्भ हुआ। पहले तोपे और बान ऐसे जोरो के साथ

चले कि जमीन और आसमान दोनो मे अँधेरा छा गया। अम्बर के विश्वसनीय दास हरावल मे थे। वे घोड़े उठाकर आए। नाले के इस पार से अकबरी तुर्क भी तीर चला रहे थे। शत्रु पक्ष के जो लोग साहस करके आगे आते थे, उनके घोडो को ही ये लोग उलटाकर गिरा देते थे। उनमे से बहुत से लोग दलदल मे भी फॅस जाते थे। जब अम्बर ने अपने सैनिको की यह दशा देखी, तब उसकी प्रसिद्ध वीरता ने उसे कोयले की तरह लाल कर दिया। वह चमक कर बादशाही लश्कर पर आया। दाराब अपने हरावल को लेकर हवा की तरह पानी पर से निकल गया। इधर उधर से और सेनाएँ भी आगे बढी। यह ऐसी कड़क-दमक से गया कि शत्रु की सेना को उलटता-पुलटता उसके मध्य भाग मे जा पहुँचा, जहाँ स्वय अम्बर खडा हुआ था। अब गुथकर लडाई होने लगी। बहुत देर तक मार-काट होती रही। परिणाम यह हुआ कि अम्बर तलवार की आँच खाकर अम्बर की तरह ही उड गया। अकबरी वीर तीन कोस तक मारा-मार चले गए। जब अँधेरा हो गया, तब उन लोगो ने भगोडो का पीछा छोड दिया। उस दिन ऐसा भारी रण पडा था कि देखनेवाले चकित थे।

सन १०२५ हि० मे जहाँगीर ने शाहजादा खुर्रम को शाहजहान बनाकर विदा किया। साथ ही उसे शाह की भी उपाधि प्रदान की गई थी। तैमूर के शासन काल से आज तक किसी शाहजादे को यह उपाधि प्रदत्त नहीं हुई थी। सन १०२६ हि० मे जहाँगीर ने स्वय भी मालवे मे जाकर छावनी डाली। शाहजहाँ ने बुरहानपुर मे जाकर डेरा डाला। वहाँ से चतुर और बुद्धिमान लोगो को आस-पास के अमीरो के यहाँ भेजकर उन्हे अपने अनुकूल किया।

जब सन् १०२६ हि० में शाहज़ादा शाहजहान की सुव्यवस्था के कारण दक्खिन का सब प्रकार से सन्तोपजनक प्रबन्ध हो गया, तब जहाँगीर को फिर अपने पूर्वजों के देश का ध्यान आया। ईरान के शाह ने कन्धार ले लिया था। जहाँगीर ने सोचा कि पहले ईरान पर ही अधिकार करना चाहिए। खान्देश, बरार और अहमदनगर का इलाका शाहजहान को प्रदत्त हुआ। जहाँ-गीर का यह लड़का बहुत ही आज्ञाकारी, सुयोग्य और सुशील था, इसलिए वह उससे बहुत अधिक प्रेम रखता था। उसने राजपूताने और दक्खिन में बहुत अच्छी-अच्छी लड़ाइयाँ जीती थीं। विशेपतः राणावाली लड़ाई उसने बहुत ही सफलता-पूर्वक जीती थी। इससे जहाँगीर उस पर बहुत अधिक प्रसन्न हुआ था। वह यह भी जानता था कि शाहजहान बहुत प्रतापी है और जहाँ जाता है, वहाँ विजय प्राप्त करता है। इसी लिये शाहजहान दरबार मे बुलाया गया। लोगों से परामर्श करने पर यह निश्चय हुआ कि शाहजहान को दरबार में बैठने के लिये स्थान दिया जाय। सन्दली (कुर्सी) का स्थान बादशाह की दाहिनी ओर निश्चित हुआ। बादशाह ने झरोखे मे बैठ कर लश्कर का निरीक्षण किया। जब वह सेवा में उपस्थित हुआ, तब बादशाह प्रेम के वश होकर आप ही झरोखे से नीचे उतर आए और लडके को गले से लगाया। जवाहिरात निछावर होते हुए आए। खानखानाँ के लड़कों ने दक्खिन मे ऐसे-ऐसे बड़े काम कर दिखलाए जिनके कारण वंश की कीर्ति फिर से हरी-भरी और उज्वल हो गई। उन्हीं दिनों बादशाह ने खानखानाँ की पोती और शाहनवाज की लड़की का विवाह शाहजहान से कर दिया।

जरवफ्त की बहुत बढ़िया चार-कुब्बवाली (जिसमे मोतियो की झालर लगी थी) खिलअत, जडाऊ कमरबन्द और तलवार और जडाऊ कटार आदि परतले सहित प्रदान की गई।

सन् १०२७ हि० मे जहाँगीर अपनी तुजुक मे लिखते हैं कि जान निछावर करनेवाले मेरे शिक्षक और सेनापति खानखानाँ ने अपने लड़के अमरउल्ला की अधीनता मे एक बहुत बड़ी सेना गोडवाने की ओर भेजी थी। इसमे उसका उद्देश्य यह था कि वहाँ हीरे की जो खान है, उस पर अधिकार कर लिया जाय। अब उसका निवेदन-पत्र आया कि वहाँ के जमींदार ने वह खान हुजूर को भेट कर दी है। उस खान का हीरा असली और बहुत उत्तम होता है और जौहरियो मे बहुत विश्वसनीय होता है, और सभी हीरे देखने मे बहुत सुन्दर और आबदार होते हैं।

इसी सन् मे जहाँगीर ने यह भी लिखा है कि जान निछावर करनेवाले मेरे शिक्षक ने मेरी सेवा मे उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त किया। वह बहुत दिनों से हुजूर से दूर था। जिस समय विजयी लश्कर खान्देश और बुरहानपुर से होकर जा रहा था, उस समय उसने सेवा मे उपस्थित होने के लिये प्रार्थना की थी। आज्ञा हुई थी कि यदि सब ओर से तुम निश्चिन्त हो तो बिना लश्कर को लिए अकेले ही चले आओ। जहाँ तक शीघ्र हो सकता था, वह आकर सेवा मे उपस्थित हुआ। अनेक प्रकार के राजोचित अनुग्रहो तथा कृपाओ से वह सम्मानित हुआ। हजार मोहर और हजार रुपया नजर करवाया। कई दिन के न [illegible] लिखता है कि मैने एक समन्द घोडे का नाम सुमेर [illegible] मेरे खासे के घोडो मे प्रथम श्रेणी का घोडा था।

वह मैंने खानखानाँ को प्रदान किया। भारतवासी सुमेर सोने के पहाड़ को कहते हैं। मैंने उसके रंग और आकार की विशालता के कारण उसका यह नाम रखा था। फिर लिखते हैं कि मैं पोस्तीन पहने हुए था। वही मैंने खानखानाँ को प्रदान कर दिया। फिर कई दिन बाद लिखते हैं कि आज खानखानाँ को खासे की खिलअत, कमरबन्द सहित जड़ाऊ तलवार, सुनहली झूल और सुनहले सामान के साथ खासे का हाथी और हथिनी प्रदान करके फिर खान्देश के सूबे और दक्खिन की सनद प्रदान की। सात हजारी जात और सात हजार सवार, असल और वृद्धि के सहित, मन्सब प्रदान किया। अमीरों मे से किसी को अभी तक यह मन्सब नहीं मिला था। लश्करखाँ दीवान से उसका साथ ठीक नहीं बैठता था। उसकी प्रार्थना के अनुसार हामिदखाँ को उसके साथ कर दिया। उसे भी हजारी जात का मन्सब, चार सौ सवार और हाथी तथा खिलअत प्रदान की गई।

आजाद कहता है कि इस संसार के लोग धनवान् होने की कामना में मरे जाते हैं। वे यह नहीं समझते कि धन क्या चीज है। सब से बड़ा धन तो स्वास्थ्य है। सन्तान भी एक धन है। विद्या और गुण भी एक धन है। अधिकार और अमीरी भी एक धन है। इसी प्रकार और भी बहुत से धन हैं। उन्हीं मे से एक धन नगद और सम्पत्ति भी है। इन सबके साथ सब प्रकार की निश्चिन्तता और हृदय की शान्ति भी एक धन है। इस संसार में ऐसे लोग बहुत ही कम होंगे, जिन्हें यह बेदर्द जमाना सारे धन एक साथ ही दे। और फिर उनमें से कोई

जरवफ्त की वहुत वढ़िया चार-कुबवाली (जिसमे मोतियो की झालर लगी थी) खिलअत, जडाऊ कमरवन्द और तलवार और जड़ाऊ कटार आदि परतले सहित प्रदान की गई ।

सन् १०२७ हि० मे जहाँगीर अपनी तुजुक मे लिखते हैं कि जान निछावर करनेवाले मेरे शिक्षक और सेनापति खानखानाँ ने अपने लड़के अमरउल्ला की अधीनता मे एक वहुत वड़ी सेना गोडवाने की ओर भेजी थी। इसमे उसका उद्देश्य यह था कि वहाँ हीरे की जो खान है, उस पर अधिकार कर लिया जाय। अव उसका निवेदन-पत्र आया कि वहाँ के जमींदार ने वह खान हुजूर को भेंट कर दी है। उस खान का हीरा असली और वहुत उत्तम होता है और जौहरियो में वहुत विश्वसनीय होता है, और सभी हीरे देखने मे वहुत सुन्दर और आवदार होते हैं।

इसी सन् मे जहाँगीर ने यह भी लिखा है कि जान निछावर करनेवाले मेरे शिक्षक ने मेरी सेवा मे उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त किया। वह वहुत दिनों से हुजूर से दूर था। जिस समय विजयी लश्कर खान्देश और वुरहानपुर से होकर जा रहा था, उस समय उसने सेवा मे उपस्थित होने के लिये प्रार्थना की थी। आज्ञा हुई थी कि यदि सव ओर से तुम निश्चिन्त हो तो विना लश्कर को लिए अकेले ही चले आओ। जहाँ तक शीघ्र हो सकता था, वह आकर सेवा मे उपस्थित हुआ। अनेक प्रकार के राजोचित अनुग्रहो तथा कृपाओ मे वह सन्मानित हुआ। हजार मोहर और हजार रुपया नजर करवाया। कई दिन के वाद फिर लिखता है कि मैने एक समन्द घोडे का नाम सुमेर रखा था। वह मेरे खास के घोडो मे प्रथम श्रेणी का घोडा था।

वह मैंने खानखानाँ को प्रदान किया। भारतवासी सुमेर सोने के पहाड़ को कहते हैं। मैंने उसके रंग और आकार की विशालता के कारण उसका यह नाम रखा था। फिर लिखते हैं कि मैं पोस्तीन पहने हुए था। वही मैंने खानखानाँ को प्रदान कर दिया। फिर कई दिन वाद लिखते हैं कि आज खानखानाँ को खासे की खिलअत, कमरवन्द सहित जड़ाऊ तलवार, सुनहली झूल और सुनहले सामान के साथ खासे का हाथी और हथिनी प्रदान करके फिर खान्देश के सूवे और दक्खिन की सनद प्रदान की। सात हजारी जात और सात हजार सवार, असल और वृद्धि के सहित, मन्सव प्रदान किया। अमीरो मे से किसी को अभी तक यह मन्सव नहीं मिला था। लश्करखाँ दीवान से उसका साथ ठीक नहीं वैठता था। उसकी प्रार्थना के अनुसार हामिदखाँ को उसके साथ कर दिया। उसे भी हजारी जात का मन्सव, चार सौ सवार और हाथी तथा खिलअत प्रदान की गई।

आजाद कहता है कि इस संसार के लोग धनवान् होने की कामना में मरे जाते हैं। वे यह नहीं समझते कि धन क्या चीज है। सव से वडा धन तो स्वास्थ्य है। सन्तान भी एक धन है। विद्या और गुण भी एक धन है। अधिकार और अमीरी भी एक धन है। इसी प्रकार और भी वहुत से धन हैं। उन्हीं मे से एक धन नगद और सम्पत्ति भी है। इन सवके साथ सव प्रकार की निश्चिन्तता और हृदय की शान्ति भी एक धन है। इस ससार में ऐसे लोग वहुत ही कम होंगे, जिन्हे यह वेदर्द जमाना सारे धन एक साथ ही दे। और फिर उनमे से कोई

धन किसी समय दगा न दे जाय। यह दुष्ट एक ही ऐसा दाग या दुःख देता है जिससे सभी धन मिट्टी हो जाते है। इस दुष्ट ने खानखानाँ के साथ भी ऐसा ही किया। सन् १०२८ हिजरी मे उसने खानखानाँ को पुत्र-शोक दिया। पुत्र भी नवयुवक ही था। देखनेवालो के कलेजे काँप गए। जरा उसके हृदय को कोई देखे कि उसकी क्या दशा हुई होगी। वही मिरजा ऐरज, जिसकी योग्यता ने अकवर से वहादुर की उपाधि ली थी, जिसके प्रयत्नो और कठोर परिश्रमो ने जहाँगीर से शाहनवाजखाँ की उपाधि प्राप्त की थी और जिसे सब लोग कहते थे कि यह दूसरा खानखानाँ है, वही ठीक युवावस्था मे शराव के पीछे अपने प्राण गँवा वैठा।

दूसरे ही वर्ष खानखानाँ को इसी प्रकार का दूसरा शोक हुआ। यह पुत्र यद्यपि ज्वर के प्रकोप से मरा था, तथापि सेवा करने के आवेश मे वह उचित सीमा का उल्लघन कर गया था। तो भी उसे जो कुछ सेवा करनी चाहिए थी, वह सब कर गया। (देखो खानखानाँ की सन्तान का वर्णन)

एक वार किसी कवि के पास कोई आदमी आया था। उसने आँखो मे आँसू भर कर कहा कि मेरा लडका मर गया है। आप उसके मरने की तारीख कह दीजिए। उस प्रकाशमान् मस्तिष्कवाले कवि ने उसी समय सोच कर कहा—"दागे जिगर"। इससे सन १०२८ हि० निकलता है। दूसरे वर्ष वही जले हुए हृदयवाला फिर आया और वोला कि हजरत, तारीख लिख दीजिए। कवि ने कहा कि अभी थोडे ही दिन हुए, तुम तारीख लिखाकर ले गए थे। उसने कहा कि हजरत एक और लडका

था, वह भी मर गया। कवि ने कहा अच्छा—"दागे दिगर" (अर्थात् दूसरा दाग या शोक)। इससे सन् १०२९ हि० निकलता है। जहाँगीर ने ये दोनो घटनाएँ अपनी तुजुक में लिखी हैं। इसके एक एक अक्षर से शोक दमकता है। (देखो परिशिष्ट)

खानखानाँ का भाग्य-नक्षत्र अस्त होता है

दुःख है कि जिस खानखानाँ ने अपना सारा जीवन आनन्द की वसन्त ऋतु के फूल के रूप मे विताया था, उसी के लिये वृद्धावस्था मे ऐसा समय आया कि संसार की दुर्घटनाएँ उस पर वगूले वाँध-वाँध कर आक्रमण करने लगीं। सन् १०२८ हि० में ऐरज मरा था। दूसरे वर्ष रहमानदाद मर गया। तीसरे वर्ष तो विपत्तियों ने ऐसा नहूसत का छापा मारा कि उसका प्रताप मैदान छोड़ कर भाग गया। और इस वार ऐसा भागा कि फिर उसने पीछे की ओर मुड़ कर भी न देखा। मेरे मित्रो, यह संसार बहुत ही बुरा स्थान है। वेमुरव्वत संसार यहाँ मनुष्य को कभी किसी ऐसे अवसर पर ला डालता है कि उसे केवल दो ही पक्ष दिखाई पड़ते हैं और दोनो में भय रहता है। और परिणाम तो केवल ईश्वर ही जानता है। बुद्धि कुछ काम नहीं करती कि क्या करना चाहिए। पाँसा भाग्य के हाथ में होता है। वही उसे जिस ओर चाहे, पलट दे। यदि सीधा पड़ गया तो आदमी बड़ा बुद्धिमान् है। और यदि उलटा पड़ा तो छोटे-छोटे वालक तक मूर्ख ठहराते हैं। और जो हानि, लज्जा, विपत्ति और दुःख उसे उठाना पड़ता है, वह तो उसका हृदय ही जानता है। पहले यह बात सुन लो कि जहाँगीर का लड़का शाहजहान इतना अधिक

धन किसी समय दगा न दे जाय। यह दुष्ट एक ही ऐसा दाग या दुःख देता है जिससे सभी धन मिट्टी हो जाते हैं। इस दुष्ट ने खानखानाँ के साथ भी ऐसा ही किया। सन् १०२८ हिजरी मे उसने खानखानाँ को पुत्र-शोक दिया। पुत्र भी नवयुवक ही था। देखनेवालो के कलेजे काँप गए। जरा उसके हृदय को कोई देखे कि उसकी क्या दशा हुई होगी। वही मिरजा एरज, जिसकी योग्यता ने अकबर से बहादुर की उपाधि ली थी, जिसके प्रयत्नो और कठोर परिश्रमो ने जहाँगीर से शाहनवाजखाँ की उपाधि प्राप्त की थी और जिसे सब लोग कहते थे कि यह दूसरा खानखानाँ है, वही ठीक युवावस्था मे शराब के पीछे अपने प्राण गँवा बैठा।

दूसरे ही वर्ष खानखानाँ को इसी प्रकार का दूसरा शोक हुआ। यह पुत्र यद्यपि ज्वर के प्रकोप से मरा था, तथापि सेवा करने के आवेश मे वह उचित सीमा का उल्लंघन कर गया था। तो भी उसे जो कुछ सेवा करनी चाहिए थी, वह सब कर गया। (देखो खानखानाँ की सन्तान का वर्णन)

एक बार किसी कवि के पास कोई आदमी आया था। उसने आँखो मे आँसू भर कर कहा कि मेरा लडका मर गया है। आप उसके मरने की तारीख कह दीजिए। उस प्रकाशमान् मस्तिष्कवाले कवि ने उसी समय सोच कर कहा—"दागे जिगर"। इससे सन १०२८ हि० निकलता है। दूसरे वर्ष वही जले हुए हृदयवाला फिर आया और बोला कि हजरत, तारीख लिख दीजिए। कवि ने कहा कि अभी थोडे ही दिन हुए, तुम तारीख लिखाकर ले गए थे। उसने कहा कि हजरत एक और लडका

था, वह भी मर गया। कवि ने कहा अच्छा—"दागे दिगर" (अर्थात् दूसरा दाग या शोक)। इससे सन् १०२९ हि० निकलता है। जहाँगीर ने ये दोनो घटनाएँ अपनी तुज़ुक में लिखी हैं। इसके एक एक अक्षर से शोक दमकता है। (देखो परिशिष्ट)

खानखानाँ का भाग्य-नक्षत्र अस्त होता है

दुःख है कि जिस खानखानाँ ने अपना सारा जीवन आनन्द की वसन्त ऋतु के फूल के रूप में विताया था, उसी के लिये वृद्धावस्था मे ऐसा समय आया कि संसार की दुर्घटनाएँ उस पर वगूले वाँध-वाँध कर आक्रमण करने लगीं। सन् १०२८ हि० मे ऐरज मरा था। दूसरे वर्ष रहमानदाद मर गया। तीसरे वर्ष तो विपत्तियो ने ऐसा नहूसत का छापा मारा कि उसका प्रताप मैदान छोड़ कर भाग गया। और इस वार ऐसा भागा कि फिर उसने पीछे की ओर मुड कर भी न देखा। मेरे मित्रो, यह संसार वहुत ही वुरा स्थान है। वेमुरव्वत संसार यहाँ मनुष्य को कभी किसी ऐसे अवसर पर ला डालता है कि उसे केवल दो ही पक्ष दिखाई पड़ते हैं और दोनों मे भय रहता है। और परिणाम तो केवल ईश्वर ही जानता है। वुद्धि कुछ काम नहीं करती कि क्या करना चाहिए। पाँसा भाग्य के हाथ मे होता है। वही उसे जिस ओर चाहे, पलट दे। यदि सीधा पड़ गया तो आदमी वड़ा वुद्धिमान् है। और यदि उलटा पड़ा तो छोटे-छोटे वालक तक मूर्ख ठहराते हैं। और जो हानि, लज्जा, विपत्ति और दुःख उसे उठाना पड़ता है, वह तो उसका हृदय ही जानता है। पहले यह वात सुन लो कि जहाँगीर का लड़का शाहजहान इतना अधिक

धन किसी समय दगा न दे जाय। यह दुष्ट एक ही ऐसा दाग या दुःख देता है जिससे सभी धन मिट्टी हो जाते हैं। इस दुष्ट ने खानखानाँ के साथ भी ऐसा ही किया। सन् १०२८ हिजरी मे उसने खानखानाँ को पुत्र-शोक दिया। पुत्र भी नवयुवक ही था। देखनेवालो के कलेजे काँप गए। जरा उसके हृदय को कोई देखे कि उसकी क्या दशा हुई होगी। वही मिरजा ऐरज, जिसकी योग्यता ने अकबर से बहादुर की उपाधि ली थी, जिसके प्रयत्नो और कठोर परिश्रमो ने जहाँगीर से शाहनवाजखाँ की उपाधि प्राप्त की थी और जिसे सब लोग कहते थे कि यह दूसरा खानखानाँ है, वही ठीक युवावस्था मे शराब के पीछे अपने प्राण गँवा बैठा।

दूसरे ही वर्ष खानखानाँ को इसी प्रकार का दूसरा शोक हुआ। यह पुत्र यद्यपि ज्वर के प्रकोप से मरा था, तथापि सेवा करने के आवेश मे वह उचित सीमा का उल्लघन कर गया था। तो भी उसे जो कुछ सेवा करनी चाहिए थी, वह सब कर गया। (देखो खानखानाँ की सन्तान का वर्णन)

एक बार किसी कवि के पास कोई आदमी आया था। उसने आँखो मे आँसू भर कर कहा कि मेरा लडका मर गया है। आप उसके मरने की तारीख कह दीजिए। उस प्रकाशमान् मस्तिष्कवाले कवि ने उसी समय सोच कर कहा—"दागे जिगर"। इससे सन १०२८ हि० निकलता है। दूसरे वर्ष वही जले हुए हृदयवाला फिर आया और बोला कि हजरत, तारीख लिख दीजिए। कवि ने कहा कि अभी थोडे ही दिन हुए, तुम तारीख लिखवाकर ले गए थे। उसने कहा कि हजरत एक और लडका

उसने उस कन्या का विवाह शाहजादा शहरयार के साथ कर दिया। इस प्रकार वह उसके साम्राज्य की नींव डालने लगी। इसमे मुख्य उद्देश्य यह था कि शाहजहान की जड़ उखाड़ दे। परन्तु शहरयार जहाँगीर के सब लड़कों में छोटा था। वह स्वभाव से बहुत रसिक और ऐयाश था, इसलिये उसके विचार आदि निम्न कोटि के होते थे। जो कुछ उसमें रही सही बात थी, वह भी उसकी सास की बादशाही ने गँवा दी थी।

सन् १०३१ हि० मे शाहजहान इसलिए दरबार में बुलाए गए कि कन्धार की चढ़ाई पर जायँ और अपने पूर्वजों के देश को अपने अधिकार में करें। वह खानखानाँ और दाराब को अपने साथ लेकर दरबार मे उपस्थित हुए। बहुत कुछ परामर्श और मन्त्रणा आदि होने पर यही निश्चय हुआ कि यह लड़ाई और चढ़ाई उन्हीं के नाम पर रखी जाय।

परन्तु विधि ने कुछ और ही शतरंज बिछाई। बाजी यहाँ से आरम्भ हुई कि शाहजहान ने अपने पिता से धौलपुर का इलाका माँग लिया। बेगम ने पहले से वही इलाका शहरयार के लिये माँग रखा था; और शहरयार की ओर से शरीफउल्मुल्क वहाँ का हाकिम था। शाहजहान के सेवक वहाँ अपना अधिकार करने के लिये गए। संक्षेप यह कि वहाँ दोनों पक्षों के अमीरों में तलवारें चल गई। उसी लड़ाई में शरीफ उल्मुल्क की आँख मे एक ऐसा तीर लगा कि वह काना हो गया। यह दशा देख कर शहरयार का सारा लश्कर मारे क्रोध के आपे से बाहर हो गया और वहाँ बड़ी भारी लड़ाई हो गई।

शाहजहान ने अपने दीवान अफजलखाँ को वहाँ भेजा और

सुयोग्य और आज्ञाकारी तथा सुशील था कि अपनी तलवार और कलम की बदौलत सभी से अपनी योग्यता और गुणों की प्रशंसा कराता था। इन सब बातों के अतिरिक्त वह भाग्यवान् और प्रतापी भी था। जहाँगीर भी उसके किए हुए अच्छे-अच्छे काम देख कर मारे प्रसन्नता के फूला नहीं समाता था। और इसी लिये वह उसी को अपना उत्तराधिकारी बनाने के योग्य समझता था। उसे उसने शाहजहान की उपाधि दी थी और बादशाहों के योग्य पद दिए थे। उसके नौकरों को भी उसने बहुत ऊँचे ऊँचे मन्सब या पद दिए थे। अकबर भी जब तक जीता रहा, तब तक उसे सदा अपने पास रखता था। और उसके सम्बन्ध मे ऐसी ऐसी बाते कहता था, जिनसे बहुत बड़ी बड़ी आशाएँ होती थी। अपने व्यक्तिगत गुण और सेवाएँ आदि जो उसके पास थीं, वह तो थीं ही। इसके सिवा खानखानाँ जैसा अमीर उसका ददिया ससुर था, और आसफखाँ वजीर-कुल उसका ससुर था।

नूरजहाँ बेगम का हाल भी सब लोग जानते ही है कि वह सारे साम्राज्य की स्वामिनी थी। केवल खुतबे मे बेगम का नाम नहीं था। पर सिक्कों पर छाप और आज्ञा-पत्रों पर मोहर भी बेगम की ही होती थी। वह भी बहुत अधिक दूरदर्शी और बुद्धिमती थी और अच्छी-अच्छी युक्तियाँ सोचती थी। जब उसने देखा कि जहाँगीर की मस्ती और मद सरीखे रोग उस पर हाथ डालने लगे हैं, तो वह ऐसी युक्तियाँ सोचने लगी कि जहाँ-गीर के शासन मे भी अन्तर न आने पावे। उसके पहले पति शेर अफगनखाँ से उसकी एक कन्या थी। सन १०३० हि० मे

भाई था। पर उसका भी विश्वास केवल इस कारण जाता रहा कि उसकी लड़की शाहजहान की प्रिय बेगम थी। तात्पर्य यह कि बेगम ने यहाँ तक आग लगाई कि अन्त में शाहजहान सरीखा सुशील, आज्ञाकारी और प्रतापी पुत्र भी अपने पिता का विद्रोही हो गया। पर इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि वह बिलकुल विवश होकर विद्रोही हुआ था।

बेगम भी जोड़ तोड़ की बादशाह थी। वह जानती थी कि आसफखाँ से महाबतखाँ की लाग-डाँट है। उसने बादशाह से कहा कि जब तक महाबतखाँ सेनापति न होगा, तब तक इस चढ़ाई का ठीक-ठीक प्रबन्ध न होगा। उधर उसने काबुल से लिखा कि यदि शाहजहान से लड़ना है तो पहले आसफखाँ को निकालिए। जब तक वह दरबार में हैं, तब तक यह सेवक कुछ भी न कर सकेगा। इस पर आसफखाँ तुरन्त बंगाल भेज दिए गए, और महाबतखाँ सेनापति का झंडा फहराते हुए चल पड़े। पीछे-पीछे जहाँगीर भी लाहौर से आगरे की ओर चले। अमीरों की आपस में शत्रुता तो थी ही। अब उन्हें अच्छा अवसर हाथ आया। जिसका जिस पर वार चल गया, उसने उसी को दरबार से निकलवाया, कैद कराया और यहाँ तक कि मरवा भी डाला। षड्यन्त्र के अपराध के लिये प्रमाण की कोई आवश्यकता ही नहीं थी।

देखो वह पुराना बुड्ढा, जिसकी दो पीढ़ियाँ अनुभवों से भरी हुई थीं, निरा लोभी ही नहीं था, जो जरा-सा लाभ देख कर फिसल पड़ता। उसने दरबारों के हजारों ऊँच-नीच देखे थे। उसने अपनी बुद्धि लड़ाने में कुछ भी कमी नहीं की होगी। उसे

बहुत ही नम्रतापूर्वक जबानी सँदेसे भेजे और निवेदन-पत्र लिख कर अपना अपराध क्षमा कराने के लिये प्रार्थनी की। वह चाहता था कि किसी प्रकार यह आग बुझ जाय। परन्तु उधर बेगम तो आग और कोयला हो रही थी। यहाँ आते ही अफजलखाँ कैद हो गया। साथ ही बेगम ने बहुत कुछ लगा-बुझाकर बादशाह से कहा कि शाहजहान का दिमाग बहुत चढ गया है। उसे कुछ ऐसा दड देना चाहिए जिससे उसे वास्तव मे शिक्षा मिले। उस मस्त बादशाह ने अपनी मस्ती की दशा मे ईश्वर जाने कुछ हूँ हाँ कर दी होगी। तुरन्त सेना के पास तैयार होने के लिये आज्ञा पहुँची और अमीरो को आज्ञा मिल गई कि शाहजहान को जाकर पकड लाओ।

इधर थोड़े ही दिन हुए थे कि ईरान के शाह ने कन्धार पर अधिकार कर लिया था। वह चढाई और लडाई भी शाहजहान के ही नाम रखी गई थी। इसमे कोई सन्देह नहीं कि यदि वह वीर और योग्य शाहजादा अपनी सारी सेना और सामग्री के साथ जाता, तो कन्धार के सिवा समरकन्द और बुखारा तक अपनी तलवार की चमक पहुँचाता। वह चढाई भी बेगम ने शहरयार के नाम करा ली। बारह हजारी जात और आठ हजारी सवार का मन्सब दिलाया। वह जहाँगीर को भी लाहौर मे ले आई। यहाँ आकर शहरयार अपना लश्कर तैयार करने लगा। शाहजहान के दिल पर चोटें पड रही थीं, पर वह बिलकुल चुप था। बडे-बडे विश्वसनीय और अमीर सरदार इस अभियोग मे कैद कर लिए गए कि ये शाहजहान के साथ मिले हुए है। बहुत से लोग जान से भी मारे गए। आसफखाँ बेगम का सगा

विचार किया होगा। वेगम के यहाँ तक भी उसकी पहुँच थी और वह भी उसी सम्प्रदाय का था, जिस सम्प्रदाय की वेगम थी। उसने यह भी समझा होगा कि पिता और पुत्र में तो कोई लड़ाई है ही नहीं। जो कुछ खटक है, वह सौतेली माता की है। पर यह कौन सी बड़ी बात है! मैं दोनो में सफाई और मेल करा दूँगा। और इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह ऐसा कर सकता था। परन्तु ज्यों-ज्यो वह आगे बढ़ता गया, त्यों-त्यों रंग वेढंग देखता गया। उसने यह भी देख लिया था कि जिस खान आजम का अकबर भी लिहाज करता था, उसे भी ग्वालियर के किले मे कैद रहना पड़ा था। ऐसे विकट अवसर पर उसे स्वयं अपने लिए भला क्या भरोसा हो सकता था!

खानखानाँ के बहुत पुराने और विश्वसनीय सेवक मुहम्मद मासूम ने जहाँगीर के पास गुप्त रूप से यह समाचार पहुँचाया कि खानाखानाँ अन्दर ही अन्दर दक्खिन के अमीरो के साथ मिला हुआ है। (मलिक अम्बर ने खानखानाँ के नाम जो पत्र भेजे थे, वे लखनऊवाले शेख अब्दुलसलाम के पास हैं।) जहाँगीर ने महाबतखाँ को आज्ञा दी। उसने शेख को गिरिफ्तार कर लिया। जब उससे पूछा गया, तब उसने साफ इन्कार कर दिया। उस वेचारे पर बहुत अधिक मार पड़ी, पर उसने कुछ भी न बतलाया। ईश्वर जाने कि उसके पास कुछ था भी या नहीं था। या उसने जान बूझकर खानखानाँ का भेद छिपाया। जो हो, दोनो ही दशाओं मे उसका कार्य बहुत प्रशंसनीय रहा।

खानखानाँ और दारा दक्खिन से शाहजहान के साथ आए। जहाँगीर को देखो कि कितना दुखी होकर लिखता है कि जब

इस बात का अवश्य ध्यान हुआ होगा कि बादशाह की बुद्धि कुछ तो शराब ने खोई और जो रही सही थी, वह बेगम के प्रेम मे चली गई। मैं इस साम्राज्य का पुराना सेवक और नमक खानेवाला हूँ, इसलिए इस समय मेरा क्या कर्त्तव्य है। उसके हृदय ने अवश्य पूछा होगा कि साम्राज्य का उत्तराधिकारी कौन है ? शाहजहान ! मतवाला पिता अपने साम्राज्य को बेगम के प्रेम पर निछावर करके अपने लडके को नष्ट करना चाहता है। ऐसे अवसर पर साम्राज्य का नमक खानेवालो को यही उचित है कि साम्राज्य का पक्ष लें और उसके कल्याण के उपाय करें। उसके विवेक ने इस बात का निर्णय कर लिया होगा कि ऐसे समय शाहजहान से बिगड़ना, जहाँगीर का पक्ष लेना नहीं है, बल्कि बेगम का पक्ष लेना है। और ऐसा करने मे पुरुषानुक्रम से चले आए हुए साम्राज्य को नष्ट करना है।

प्रश्न हो सकता है कि क्या खानखानाँ के लिये यह सम्भव नहीं था। जहाँगीर ने शाहजहान का विवाह शाहनवाजखाँ की कन्या के साथ किया था। और नूरजहाँ के भाई आसफखाँ की कन्या भी जहाँगीर को ही ब्याही हुई थी। इन सब सम्बन्धो का मुख्य उद्देश्य यही था कि यदि साम्राज्य के ऐसे स्तम्भ उसके साथ इस प्रकार का सम्बन्ध रखते होंगे, तो घर के झगडे उसे उचित अधिकार मे वंचित न रख सकेंगे। परन्तु भाग्य की बात है कि जिस बात के सम्बन्ध मे जहाँगीर ने सोचा था कि यह मेरे मरने के बाद होगी, वह जीते जी ही उसके सामने आ गई।

जब शाहजहान ने अपने साथ के लिये कोई अमीर माँगा होगा, तो खानखानाँ ने अपने और जहाँगीरी सम्बन्धो का अवश्य

विचार किया होगा। बेगम के यहाँ तक भी उसकी पहुँच थी और वह भी उसी सम्प्रदाय का था, जिस सम्प्रदाय की बेगम थी। उसने यह भी समझा होगा कि पिता और पुत्र में तो कोई लड़ाई है ही नहीं। जो कुछ खटक है, वह सौतेली माता की है। पर यह कौन सी बडी बात है। मैं दोनो मे सफाई और मेल करा दूँगा। और इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह ऐसा कर सकता था। परन्तु ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता गया, त्यों-त्यों रंग बेढंग देखता गया। उसने यह भी देख लिया था कि जिस खान आजम का अकबर भी लिहाज करता था, उसे भी ग्वालियर के किले मे कैद रहना पड़ा था। ऐसे विकट अवसर पर उसे स्वयं अपने लिए भला क्या भरोसा हो सकता था।

खानखानाँ के बहुत पुराने और विश्वसनीय सेवक मुहम्मद मासूम ने जहाँगीर के पास गुप्त रूप से यह समाचार पहुँचाया कि खानाखानाँ अन्दर ही अन्दर दक्खिन के अमीरों के साथ मिला हुआ है। (मलिक अम्बर ने खानखानाँ के नाम जो पत्र भेजे थे, वे लखनऊवाले शेख अब्दुलसलाम के पास हैं।) जहाँगीर ने महाबतखाँ को आज्ञा दी। उसने शेख को गिरिफ्तार कर लिया। जब उससे पूछा गया, तब उसने साफ इन्कार कर दिया। उस बेचारे पर बहुत अधिक मार पडी, पर उसने कुछ भी न बतलाया। ईश्वर जाने कि उसके पास कुछ था भी या नहीं था। या उसने जान बूझकर खानखानाँ का भेद छिपाया। जो हो, दोनों ही दशाओं मे उसका कार्य बहुत प्रशंसनीय रहा।

खानखानाँ और दारा दक्खिन से शाहजहान के साथ आए। जहाँगीर को देखो कि कितना दुःखी होकर लिखता है कि जब

खानखानाँ जैसे अमीर ने, जो मेरे शिक्षक के श्रेष्ठ पद पर रहकर विशिष्टता प्राप्त कर चुका था, सत्तर वर्ष की अवस्था में विद्रोह और धर्मभ्रष्टता से अपना मुँह काला किया, तब यदि और लोग भी ऐसा ही करें, तो मुझे उनके सम्बन्ध में क्या शिकायत हो सकती है। इसी प्रकार के विद्रोह और पापपूर्ण आचरण में उसके पिता ने जीवन के अन्तिम काल में मेरे पूज्य पिताजी के साथ अप्रिय और अनुचित व्यवहार किया था। उसने अपने पिता का अनुकरण करके इस अवस्था में अपने आपको सृष्टि के आदि से अन्त तक अभिशप्त और नष्ट किया।

बेगम ने शाहज़ादा मुराद को बहुत बड़ी सेना देकर अपने भाई के मुकाबले पर भेजा। महाबतखाँ को सेनापति नियत किया। वाह रे बेगम, तेरी बुद्धि और दूरदर्शिता। दोनो भाइयों में से चाहे जो मारा जाय, शहरयार के मार्ग का एक काँटा दूर हो जाय।

जब दोनो बड़े-बड़े लश्कर पास पहुँचे, तब एक-एक भाग दोनो पहाड़ों में से अलग होकर टकराया। बहुत अधिक मार-काट और रक्तपात हुआ। बड़े-बड़े अमीर मारे गए। बहुत से लज्जाशील अपने नाम और प्रतिष्ठा पर अपने प्राण निछावर करके बिना इस संसार का कुछ सुख भोगे ही परलोक सिधारे। शाहजहान की सेना पराजित हुई। वह अपने लश्कर को साथ लेकर किनारे हटा। वह दक्खिन की ओर जाना चाहता था। अब इस अवसर पर बुरे विचार और सन्देह या अच्छी नीयत का मुकाबला होता है। खानखानाँ या तो अपनी अच्छी नीयत के कारण दोनों पक्षों में मेल कराने की युक्ति कर रहा था और

या हद से ज्यादा चालाकी कर रहा था कि वह जहाँगीर के सामने भी वहुत अच्छा और निष्ठ वना रहना चाहता था, और सेनापति महावतखाँ के पास भी उसने सलाम और सँदेसे भेजे थे। यह वहुत ही विकट स्थान है। जरा देखो तो पिता और पुत्र का तो विगाड़ है और वह भी सौतेली माता की स्वार्थपरता और मतवाले पिता की मत्तता के कारण। लश्कर के सरदार भी दिन रात एक ही जगह रहने-सहनेवाले ठहरे। एक ही थाल में भोजन करनेवाले और एक ही कटोरे मे पानी पीनेवाले ठहरे। भला उनमे आपस के सँदेसे कैसे वन्द हो सकते थे। कठिनता यह उपस्थित हुई कि इस विषय में चतुर सेनापति की प्रतिभा-रूपी नदी ने लेखन-कौशल की लहर मारी। उसने अपने हाथ से एक पत्र लिखा और वादशाह की शुभचिन्तना की वातें लिखकर उसमें एक शेर यह भी लिखा—

صدکس به نظر نگه میدارندم - ورنه برسیدمی زبے آرامی -

अर्थात्—मै इस समय सौ आदमियों के पहरे में हूँ। नहीं तो यहाँ के कष्टो के कारण मैं यहाँ से चला जाता।

यह पत्र किसी ने पकड़कर शाहजहान को दे दिया। उसने इन्हे एकान्त मे बुलाकर वह पत्र दिखलाया। भला इनके पास उसका क्या उत्तर हो सकता था। लज्जित होकर चुप रह गए। अन्त में अपने पुत्रों समेत दौलतखाने के पास नजरवन्द हुए, और संयोग यह कि सौ ही मन्सबदारों को इनकी रक्षा का भार दिया गया। आसीर पहुँचकर सैयद मुजफ्फर वारहा को सौंप दिया गया और कहा गया कि ले जाकर किले मे कैद कर दो।

लेकिन दाराव का कोई अपराध नहीं था, इसलिये सोच-समझकर दोनों को छोड़ दिया ।

बादशाह ने शाहजादा परवेज को भी अमीरों के साथ सेनाएँ देकर भेजा था। वह नर्मदा नदी पर जाकर रुक गया, क्योंकि वहाँ पर शाहजहान के सरदारों ने घाटों का बहुत अच्छा प्रबन्ध कर रखा था। ये भी साथ थे। ये कोई अपराधी कैदी तो थे ही नहीं, अब्दुलरहीम खानखानाँ थे। कहने को नजरबन्द थे, परन्तु सभाओं और सम्मतियों आदि में भी सम्मिलित होते थे। बराबर ऐसी बातें बतलाते थे जिनसे लाभ और मंगल होता था। साराश यह कि इनकी सब बातों का मुख्य उद्देश्य यही होता था कि ऐसा काम हो जिससे लड़ाई-झगड़े और वैमनस्य का मार्ग बन्द हो और सफलतापूर्वक मेल के मार्ग निकल आवें।

उधर से जब महाबतखाँ और शाहजादा परवेज नदी के किनारे पहुँचे, तब उन्हें सामने शाहजहान का लश्कर दिखाई दिया। उन्होंने देखा कि घाटों का प्रबन्ध बहुत पक्का है। और नदी का चढाव उसे और भी जोरों के साथ सहायता दे रहा है। सब नावें पार के किनारे पर खींच ले गए और तोपों तथा बन्दूकों आदि में मोरचे दृढ किए। लश्कर के डेरे डलवा दिए और दूसरी आवश्यक बातों का प्रबन्ध करने लगे। महाबतखाँ ने जालसाजी का एक ऐसा पत्र खानखानाँ के नाम लिखा, जिसमें बहुत मित्रता का भाव प्रकट होता था। और वह पत्र ऐसे ढंग से भेजा कि शाहजहान के पास जा पहुँचा। महाबतखाँ के पत्र का साराश यह था कि यह बात ससार जानता है कि हमारे शाहजादे साहब को बादशाह की आज्ञा का पालन करने के सिवा और

कोई बात अभीष्ट नहीं है। जिन लोगों ने यह उपद्रव खड़ा किया है और लड़ाई लगाई है, उन्हे शीघ्र ही उचित दंड मिलेगा। मैं विवश हूँ कि आ नहीं सकता। परन्तु देश की दशा देखकर बहुत दुःख होता है। मैं उसका सुधार और प्रजा के सुख और शान्ति के उपाय करने के लिये जी-जान से तैयार हूँ, और इस काम को अपना तथा समस्त मुसलमानों का परम कर्त्तव्य समझता हूँ। यदि तुम परम प्रतापी शाहज़ादे को ये सब बातें भली भाँति समझाकर दो-एक ऐसे विश्वसनीय आदमियो को भेज दो जो इन विषयों को बहुत अच्छी तरह समझते हों तो यह बात बहुत ही उपयुक्त होगी कि आपस में बात-चीत करके ऐसी युक्ति निकाली जाय जिसमें यह आग बुझ जाय और रक्तपात बन्द हो। पिता और पुत्र फिर एक हो जायँ। शाहज़ादे की जागीर कुछ बढ़ा दी जाय और नूर महल लज्जित होकर हमारी इस युक्ति से सहमत हो जाय। आदि आदि। बस यही और इसी प्रकार की कुछ और बातें लिखी थीं; और उनके साथ वचन की दृढ़ता तथा शपथें आदि भी थीं। इस विषय मे क़ुरान को बीच मे रखकर उसकी भी शपथ दी गई थी। इस प्रकार की बातो से भरा हुआ वह पत्र एक लिफाफे में बन्द करके उधर की हवा मे इस प्रकार उड़ाया कि वह शाहजहान के पल्ले मे जा पड़ा। वह तो स्वयं सुख और शान्ति का परम प्रेमी और इच्छुक था। उसने अपने मुसाहबों को बुलाकर उनके साथ परामर्श किया। खानखानाँ से भी बात-चीत हुई। ये तो पहले से ही इन विषयो के कवि थे। शाहज़ादे को इस काम के लिये इनसे बढ़कर योग्य और समझदार कोई दूसरा आदमी नहीं दिखाई दिया। उसने

लेकिन दाराव का कोई अपराध नहीं था, इसलिये सोच-समझकर दोनो को छोड दिया ।

बादशाह ने शाहजादा परवेज को भी अमीरों के साथ सेनाएँ देकर भेजा था । वह नर्मदा नदी पर जाकर रुक गया, क्योंकि वहाँ पर शाहजहान के सरदारो ने घाटो का बहुत अच्छा प्रवन्ध कर रखा था । ये भी साथ थे । ये कोई अपराधी कैदी तो थे ही नहीं, अब्दुलरहीम खानखानाँ थे । कहने को नजरवन्द थे, परन्तु सभाओ और सम्मतियो आदि मे भी सम्मिलित होते थे । वरावर ऐसी वातें वतलाते थे जिनसे लाभ और मंगल होता था । सारांश यह कि इनकी सब वातो का मुख्य उद्देश्य यही होता था कि ऐसा काम हो जिससे लडाई-झगडे और वैमनस्य का मार्ग वन्द हो और सफलतापूर्वक मेल के मार्ग निकल आवें ।

इधर से जव महावतखाँ और शाहजादा परवेज नदी के किनारे पहुँचे, तब उन्हे सामने शाहजहान का लश्कर दिखाई दिया । उन्होने देखा कि घाटो का प्रवन्ध बहुत पक्का है । और नदी का चढ़ाव उसे और भी जोरो के साथ सहायता दे रहा है । सब नावे पार के किनारे पर खींच ले गए और तोपो तथा बन्दूकों आदि से मोरचे दृढ किए । लश्कर के डेरे डलवा दिए और दूसरी आवश्यक वातो का प्रवन्ध करने लगे । महावतखाँ ने जालसाजी का एक ऐसा पत्र खानखानाँ के नाम लिखा, जिसमें बहुत मित्रता का भाव प्रकट होता था । और वह पत्र ऐसे ढग से भेजा कि शाहजहान के पास जा पहुँचा । महावतखाँ के पत्र का सारांश यह था कि यह वात ससार जानता है कि हमारे शाहजादे साहव को बादशाह की आज्ञा का पालन करने के सिवा और

कोई बात अभीष्ट नहीं है। जिन लोगों ने यह उपद्रव खड़ा किया है और लड़ाई लगाई है, उन्हें शीघ्र ही उचित दंड मिलेगा। मैं विवश हूँ कि आ नहीं सकता। परन्तु देश की दशा देखकर बहुत दुःख होता है। मैं उसका सुधार और प्रजा के सुख और शान्ति के उपाय करने के लिये जी-जान से तैयार हूँ; और इस काम को अपना तथा समस्त मुसलमानों का परम कर्त्तव्य समझता हूँ। यदि तुम परम प्रतापी शाहजादे को ये सब बातें भली भाँति समझाकर दो-एक ऐसे विश्वसनीय आदमियों को भेज दो जो इन विषयों को बहुत अच्छी तरह समझते हों तो यह बात बहुत ही उपयुक्त होगी कि आपस में बात-चीत करके ऐसी युक्ति निकाली जाय जिसमें यह आग बुझ जाय और रक्तपात बन्द हो। पिता और पुत्र फिर एक हो जायँ। शाहजादे की जागीर कुछ बढ़ा दी जाय और नूर महल लज्जित होकर हमारी इस युक्ति से सहमत हो जाय। आदि आदि। बस यही और इसी प्रकार की कुछ और बातें लिखी थीं; और उनके साथ वचन की दृढ़ता तथा शपथें आदि भी थीं। इस विषय में कुरान को बीच में रखकर उसकी भी शपथ दी गई थी। इस प्रकार की बातों से भरा हुआ वह पत्र एक लिफाफे में बन्द करके उधर की हवा में इस प्रकार उड़ाया कि वह शाहजहान के पल्ले में जा पड़ा। वह तो स्वयं सुख और शान्ति का परम प्रेमी और इच्छुक था। उसने अपने मुसाहबों को बुलाकर उनके साथ परामर्श किया। खानखानाँ से भी बात-चीत हुई। ये तो पहले से ही इन विषयों के कवि थे। शाहजादे को इस काम के लिये इनसे बढ़कर योग्य और समझदार कोई दूसरा आदमी नहीं दिखाई दिया। उसने

कुरान सामने रखकर इनसे शपथ ली। दाराब और इसके सब बाल-बच्चों आदि को अपने पास रखा और इन्हें उधर विदा कर दिया कि जाकर नदी का बहाव और हवा का रुख फेरो। नदी के उस पार पहुँचो और ऐसे ढंग से मेल कराओ जिसमें दोनों पक्षों का मंगल और कल्याण हो।

खानखानाँ संसार रूपी शतरंज के पक्के चालबाज थे। पर वे स्वयं बुड्ढे हो गए थे और उनकी बुद्धि भी बुड्ढी हो गई थी। महाबतखाँ जवान थे और उनकी बुद्धि भी जवान थी। जब खानखानाँ बादशाही लश्कर में पहुँचे, तब उनका आवश्यकता से कहीं बढ़कर आदर-सम्मान हुआ। एकान्त में उनके साथ बहुत ही सहानुभूति-पूर्ण और उन्हें प्रसन्न करनेवाली बातें की गईं। इस पर खानखानाँ ने बहुत ही प्रसन्न होकर शाहजहान के पास ऐसे पत्र भेजने आरम्भ किए जिनसे सूचित होता था कि इन्हें अपने कार्य में अच्छी सफलता हो रही है और ये परिणाम के सम्बन्ध में बहुत ही सन्तुष्ट तथा निश्चिन्त हैं। जब शाहजहान के अमीरों को यह समाचार मिला, तब वे लोग भी बहुत प्रसन्न हुए। और उन्होंने भूल यह की कि घाटों की व्यवस्था और किनारों का प्रबन्ध ढीला कर दिया।

महाबतखाँ बहुत ही चलता-पुरजा निकला। उसने चुपके-चुपके रात के समय अपनी सेना नदी के उस पार उतार दी। अब ईश्वर जाने कि उसने सहानुभूति और अपनी अच्छी नीयत का हरा बाग दिखलाकर इन्हें भ्रम में डालनेवाली बेहोशी की शराब पिलाई या लालच का दस्तरख्वान बिछाकर ऐसी चिकनी-चुपड़ी बातें कीं कि ये कुरान को निगलकर उसमें मिल गए।

जो हो, हर प्रकार से शाहजहान का काम बिगड़ गया। वह बहुत ही हतोत्साह होकर परम विकलता की दशा में पीछे हटा और ऐसी घबराहट में ताप्ती नदी के उस पार उतरा कि उसकी सेना और युद्ध-सामग्री की बहुत अधिक हानि हुई। उस समय प्राय: अमीर भी उसका साथ छोड़कर चले गए।

खानखानाँ के बाल-बच्चे, जिनमे दाराब भी था, शाहजहान के साथ थे और खानखानाँ उधर बादशाही लश्कर में पड़े हुए थे। अब इनके पास सिवा इसके और कोई उपाय नहीं रह गया था कि महाबतखाँ से मेल-जोल रखें। वे उसके साथ बुरहानपुर पहुँचे। पर फिर भी सब लोग खानखानाँ की ओर से होशियार और सचेत ही रहते थे। परामर्श यह हुआ कि इन्हे नजरबन्द रखा जाय और इनका खेमा परवेज के खेमे के साथ बिलकुल सटा रहे। इसमें मुख्य उद्देश्य यह था कि ये जो कुछ काम करें, उसका पता लगता रहे। बुरहानपुर पहुँच कर भी महाबतखाँ नहीं ठहरा और उसने ताप्ती नदी पार करके भी कुछ दूर तक शाहजहान का पीछा किया। इस पर शाहजहान दक्खिन से बंगाल की ओर चल पडा।

जाना बेगम भी अपने पिता खानखानाँ के साथ ही थी। उसने इनसे साहस और युक्ति के जो पाठ पढ़े थे, वे सब अक्षरशः स्मरण कर रखे थे। उसने कहा कि मैं अपने पिता को नहीं छोड़ूँगी। जो दशा इनकी होगी, वही मेरी भी होगी। वह भी शाहज़ादा दानियाल की स्त्री थी। उसके बाल-बच्चे भी उसके साथ थे। भला उसको कौन रोक सकता था! तात्पर्य यह कि वह भी अपने पिता के साथ उनके ही खेमे में रही। खानखानाँ

कुरान सामने रखकर इनसे शपथें लीं। दाराव और इसके सब बाल-बच्चों आदि को अपने पास रखा और इन्हें उधर बिदा कर दिया कि जाकर नदी का बहाव और हवा का रुख फेरो। नदी के उस पार पहुँचो और ऐसे ढंग से मेल कराओ जिसमें दोनों पक्षों का मंगल और कल्याण हो।

खानखानाँ संसार रूपी शतरंज के पक्के चालबाज थे। पर वे स्वयं बुड्ढे हो गए थे और उनकी बुद्धि भी बुड्ढी हो गई थी। महाबतखाँ जवान थे और उनकी बुद्धि भी जवान थी। जब खानखानाँ बादशाही लश्कर में पहुँचे, तब उनका आवश्यकता से कहीं बढ़ कर आदर-सम्मान हुआ। एकान्त में उनके साथ बहुत ही सहानुभूति-पूर्ण और उन्हें प्रसन्न करनेवाली बातें की गईं। इस पर खानखानाँ ने बहुत ही प्रसन्न होकर शाहजहान के पास ऐसे पत्र भेजने आरम्भ किए जिनसे सूचित होता था कि इन्हें अपने कार्य में अच्छी सफलता हो रही है और ये परिणाम के सम्बन्ध में बहुत ही सन्तुष्ट तथा निश्चिन्त हैं। जब शाहजहान के अमीरों को यह समाचार मिला, तब वे लोग भी बहुत प्रसन्न हुए। और उन्होंने भूल यह की कि घाटों की व्यवस्था और किनारों का प्रबन्ध ढीला कर दिया।

महाबतखाँ बहुत ही चलता-पुरजा निकला। उसने चुपके-चुपके रात के समय अपनी सेना नदी के उस पार उतार दी। अब ईश्वर जाने कि उसने सहानुभूति और अपनी अच्छी नीयत का हरा बाग दिखलाकर इन्हें भ्रम में डालनेवाली बेहोशी की शराब पिलाई या लालच का दस्तरख्वान बिछाकर ऐसी चिकनी-चुपड़ी बातें कीं कि ये कुरान को निगलकर उससे मिल गए।

जो हो, हर प्रकार से शाहजहान का काम विगड़ गया। वह वहुत ही हतोत्साह होकर परम विकलता की दशा में पीछे हटा और ऐसी घवराहट में ताप्ती नदी के उस पार उतरा कि उसकी सेना और युद्ध-सामग्री की वहुत अधिक हानि हुई। उस समय प्रायः अमीर भी उसका साथ छोड़कर चले गए।

खानखानाँ के वाल-वच्चे, जिनमे दाराव भी था, शाहजहान के साथ थे और खानखानाँ उधर वादशाही लश्कर में पड़े हुए थे। अव इनके पास सिवा इसके और कोई उपाय नहीं रह गया था कि महावतखाँ से मेल-जोल रखें। वे उसके साथ वुरहानपुर पहुँचे। पर फिर भी सव लोग खानखानाँ की ओर से होशियार और सचेत ही रहते थे। परामर्श यह हुआ कि इन्हें नजरवन्द रखा जाय और इनका खेमा परवेज के खेमे के साथ विलकुल सटा रहे। इसमे मुख्य उद्देश्य यह था कि ये जो कुछ काम करें, उसका पता लगता रहे। वुरहानपुर पहुँच कर भी महावतखाँ नहीं ठहरा और उसने ताप्ती नदी पार करके भी कुछ दूर तक शाहजहान का पीछा किया। इस पर शाहजहान दक्खिन से वंगाल की ओर चल पडा।

जाना वेगम भी अपने पिता खानखानाँ के साथ ही थी। उसने इनसे साहस और युक्ति के जो पाठ पढ़े थे, वे सव अक्षरशः स्मरण कर रखे थे। उसने कहा कि मैं अपने पिता को नहीं छोड़ूँगी। जो दशा इनकी होगी, वही मेरी भी होगी। वह भी शाहज़ादा दानियाल की स्त्री थी। उसके वाल-वच्चे भी उसके साथ थे। भला उनको कौन रोक सकता था! तात्पर्य यह कि वह भी अपने पिता के साथ उनके ही खेमे मे रही। खानखानाँ

के पास फहीम नाम का एक खास गुलाम था। वह वास्तव में यथा नाम तथा गुण था (अर्थात् बहुत बडा समझदार और अनुपम कार्य-कुशल था)। उसे स्वयं वीरता ने दूध पिलाया था और वह शूरता के नमक से पला था। वह इस झगडे मे जिस प्रकार मारा गया, उसका दु ख खानखानॉ के ही हृदय से पूछना चाहिए। जब शाहजहान के पास ये समाचार पहुँचे, तब उसने इनके बाल-बच्चो को कैद कर लिया, और उनकी रक्षा का भार राजा भीम पर डाला गया, जो राणा का लड़का था। उधर खानखानॉ को यह समाचार सुन कर बहुत दु ख हुआ। उन्होंने राजा के पास सँदेसा भेजा कि मेरे बाल-बच्चो को छोड दो। मै कोई न कोई युक्ति करके बादशाही लश्कर को इधर से फेर देता हूँ। पर यदि यही दशा रहेगी, तो समझ लो कि काम बहुत कठिन हो जायगा। मै स्वयं आकर उन लोगो को छुडा ले जाऊँगा। राजा ने कहा कि अभी तक पाँच छ हजार जान निछावर करनेवाले सैनिक शाहजादे की रकाब मे और उनके साथ हैं। यदि तुम चढ़ कर हम लोगो पर आए, तो पहले तुम्हारे बाल-बच्चो की हत्या की जायगी और तब हम लोग तुम पर आ पडेंगे। या तुम नहीं और या हम नहीं।

बादशाही लश्कर के साथ भी शाहजहान की कई लडाइयाँ हुई जिनमे बहुत मार-काट और रक्तपात हुआ। दु ख है कि अपनी सेनाऍ आपस मे ही कट मरीं और वीर सरदार तथा साहसी अमीर व्यर्थ मारे गए। शाहजहान लडते-लडते कभी किनारे की ओर हटते थे, कभी पीछे की ओर हटते थे और कभी ऊपर ही ऊपर बंगाल मे जा निकलते थे। वहाँ दाराव से शपथ

और वचन लेकर बंगाल का शासन-भार उसे सौंप दिया। उसकी स्त्री, लड़के, लड़की और शाहनवाजखाँ के एक लड़के को ओल मे ले लिया और आप विहार की ओर चल पड़ा। कुछ दिनो के बाद दाराव को भी वहाँ बुला भेजा। उसने लिखा कि यहाँ के जमींदारो ने मुझे घेर रक्खा है, इसलिये मैं आपकी सेवा में उपस्थित नहीं हो सकता। शाहजहान की सेना नष्ट हो चुकी थी। वह भग्न-हृदय जिस मार्ग से आया था, उसी मार्ग से दक्खिन की ओर चला। फिर उसके ध्यान मे यह बात आई कि खानखानाँ भी बादशाह की ओर मिल गए हैं, इसलिये उसने उनके नवयुवक पुत्र और भतीजे को मार डाला। वहाँ दाराव के पास कोई शक्ति नहीं रह गई थी। बादशाही लश्कर ने वहाँ पहुँच कर देश पर अधिकार कर लिया। दाराव चल कर सुलतान परवेज के लश्कर मे उपस्थित हुआ। जहाँगीर की आज्ञा पहुँची कि दाराव का सिर काट कर भेज दो। दुःख है कि उसका सिर एक पात्र मे खाद्य पदार्थ की तरह कसवा कर उसके अभागे पिता के पास भेज दिया गया। जिस खानखानाँ के सामने किसी की इतनी भी सामर्थ्य नहीं होती थी कि रहमान दादा के मरने की चर्चा भी कर सके, वही इस समय चुपचाप बैठा था और आकाश की ओर देख रहा था। महावतखाँ के सेवकों ने उसकी आज्ञा के अनुसार खानखानाँ से जाकर कहा कि हुजूर ने यह तरबूज भेजा है। परम दुःखित हृदय से पिता ने आँखो में आँसू भर कर कहा—ठीक है, शहीदी है। कहनेवालों ने उसके मरने की तारीख कही थी—

شہید پاک شد داراب مسکیں –

के पास फहीम नाम का एक खास गुलाम था। वह वास्तव में यथा नाम तथा गुण था (अर्थात् बहुत बडा समझदार और अनुपम कार्य-कुशल था)। उसे स्वयं वीरता ने दूध पिलाया था और वह शूरता के नमक से पला था। वह इस झगडे मे जिस प्रकार मारा गया, उसका दु ख खानखानाँ के ही हृदय से पूछना चाहिए। जब शाहजहान के पास ये समाचार पहुँचे, तब उसने इनके बाल-बच्चो को कैद कर लिया, और उनकी रक्षा का भार राजा भीम पर डाला गया, जो राणा का लडका था। उधर खानखानाँ को यह समाचार सुन कर बहुत दु ख हुआ। उन्होंने राजा के पास सँदेसा भेजा कि मेरे बाल-बच्चो को छोड दो। मै कोई न कोई युक्ति करके बादशाही लश्कर को इधर मे फेर देता हूँ। पर यदि यही दशा रहेगी, तो समझ लो कि काम बहुत कठिन हो जायगा। मै स्वयं आकर उन लोगो को छुडा ले जाऊँगा। राजा ने कहा कि अभी तक पाँच छ हजार जान निछावर करनेवाले सैनिक शाहजादे की रकाब मे और उनके साथ है। यदि तुम चढ कर हम लोगो पर आए, तो पहले तुम्हारे बाल-बच्चो की हत्या की जायगी और तब हम लोग तुम पर आ पडेगे। या तुम नहीं और या हम नहीं।

बादशाही लश्कर के साथ भी शाहजहान की कई लडाइयाँ हुई जिनमे बहुत मार-काट और रक्तपात हुआ। दु ख है कि अपनी सेनाएँ आपस मे ही कट मरी और वीर सरदार तथा साहसी अमीर व्यर्थ मारे गए। शाहजहान लडते-लडते कभी किनारे की ओर हटते थे, कभी पीछे की ओर हटते थे और कभी ऊपर ही ऊपर बंगाल मे जा निकलते थे। वहाँ दारान मे शपथ

आदि देने में बहुत अधिक उदारता दिखलाई। उसने इन्हे ऐसी ही सामग्री दी थी जो सब प्रकार से इनकी मर्यादा को देखते हुए उपयुक्त थी। उसका अभिप्राय यही था कि आगे के लिये सफाई हो जाय; और इनके मन मे मेरी ओर से किसी प्रकार का दु ख या मैल न रह जाय। जिस समय ये दरबार में पहुँचे, उस समय की अवस्था स्वयं जहाँगीर अपनी तुज़ुक में इस प्रकार लिखता है कि अपने लज्जित मुख को बहुत देर तक पृथ्वी पर रखे रहा। सिर ऊपर नहीं उठाया। मैंने कहा कि जो-जो बातें घटित हुई हैं, वे सब भाग्य की बातें हैं। न तुम्हारे अधिकार की हैं और न हमारे अधिकार की। इस कारण अब तुम अपने मन मे व्यर्थ लज्जित और दुःखी मत हो। हम अपने आपको तुम से अधिक लज्जित पाते हैं। जो कुछ हुआ, वह सब भाग्य से ही हुआ। हमारे अधिकार की बात नहीं है।

साम्राज्य के स्तम्भ बड़े-बड़े अमीरों को आज्ञा हुई कि इन्हें ले जाकर उपयुक्त स्थान पर ठहराओ। कई दिन के बाद एक लाख रुपया पुरस्कार दिया और कहा कि इससे अपनी अवस्था ठीक करो। थोड़े दिनो के बाद कन्नौज का सूबा भी प्रदान किया गया। खानखानाँ की जो उपाधि उनसे छीन कर महाबतखाँ को दी गई थी, वह फिर इन्हे मिल गई। इन्होंने धन्यवाद मे यह शेर कह कर मोहर पर खुदवाया—

مرا لطف جہانگیری ز تائیدات یزدانی –
دوبارہ زندگی دادہ دوبارہ خانخانانی –

अर्थात्—जहाँगीर की कृपा और ईश्वरीय समर्थन ने मुझे पुनः जीवन प्रदान किया और पुनः मुझे खानखानाँ की पदवी मिली।

अर्थात्—बेचारा दाराब पवित्र शहीद हुआ।

दुःख के योग्य तो यह बात है कि वे शूर-वीर, जिनके समस्त जीवन और कई-कई पीढ़ियाँ इस साम्राज्य मे अपनी जान निछावर करने और निष्ठा-पूर्ण व्यवहार करने का अभ्यास कर रही थीं, उनके प्राण व्यर्थ गए। यदि शाहजहान के साथ कन्धार पर जाते तो बड़े-बड़े काम कर दिखलाते। यदि उजबक पर जाते तो अपने पूर्वजो का देश छुड़ा लाते और भारत का नाम गगन मे प्रकाशमान कर लाते। दुःख है कि अपने हाथ स्वयं अपने ही हाथो से नष्ट हुए और अपने सिर अपने ही हाथो मे कटे। अपनी छुरी से अपने ही पेट फाडे गए। और ये सब बाते क्यो हुई? केवल बेगम साहब की स्वार्थपरता और स्वेच्छाचारिता के कारण। इसमे सन्देह नहीं कि बेगम भी एक अनुपम रत्न थी। उसे साम्राज्य का ताज कहना भी उपयुक्त है। बुद्धिमत्ता, युक्ति, साहस, उदारता, गुण-ग्राहकता और परोपकार मे वह अपना जोड नहीं रखती थी। पर फिर भी क्या किया जाय। जो बात होती है, वह कहनी ही पडती है। थोडे ही दिनो के बाद बादशाह और शाहजादा दोनो पिता पुत्र जैसे पहले थे, वैसे ही फिर हो गए। बेचारे अमीर लज्जित और चकित थे कि कहाँ जायँ और क्या मुँह लेकर जायँ। परन्तु इस घर के सिवा उनके लिये और घर ही कौन सा था!

सन १०३६ हि० मे खानखानाँ बादशाह की सेवा मे उपस्थित होने के लिये बुलाए गए। जब महाबतखाँ ने उन्हे बिदा किया, तब जो-जो बाते बीच मे हुई थीं, उनके लिये बहुत अधिक दुःख प्रकट किया और उनकी यात्रा के लिये आवश्यक सामग्री

आदि देने में बहुत अधिक उदारता दिखलाई। उसने इन्हे ऐसी ही सामग्री दी थी जो सब प्रकार से इनकी मर्यादा को देखते हुए उपयुक्त थी। उसका अभिप्राय यही था कि आगे के लिये सफाई हो जाय, और इनके मन मे मेरी ओर से किसी प्रकार का दुःख या मैल न रह जाय। जिस समय ये दरबार मे पहुँचे, उस समय की अवस्था स्वयं जहाँगीर अपनी तुजुक में इस प्रकार लिखता है कि अपने लज्जित मुख को बहुत देर तक पृथ्वी पर रखे रहा। सिर ऊपर नहीं उठाया। मैंने कहा कि जो-जो बातें घटित हुई हैं, वे सब भाग्य की बातें हैं। न तुम्हारे अधिकार की हैं और न हमारे अधिकार की। इस कारण अब तुम अपने मन मे व्यर्थ लज्जित और दुःखी मत हो। हम अपने आपको तुम से अधिक लज्जित पाते हैं। जो कुछ हुआ, वह सब भाग्य से ही हुआ। हमारे अधिकार की बात नहीं है।

साम्राज्य के स्तम्भ बड़े-बड़े अमीरों को आज्ञा हुई कि इन्हे ले जाकर उपयुक्त स्थान पर ठहराओ। कई दिन के बाद एक लाख रुपया पुरस्कार दिया और कहा कि इससे अपनी अवस्था ठीक करो। थोड़े दिनों के बाद कन्नौज का सूबा भी प्रदान किया गया। खानखानाँ की जो उपाधि उनसे छीन कर महाबतखाँ को दी गई थी, वह फिर इन्हे मिल गई। इन्होंने धन्यवाद में यह शेर कह कर मोहर पर खुदवाया—

مرا لطف جہانگیری ز تائیدات یزدانی -
دوبارہ زندگی دادو دوبارہ خانخانانی -

अर्थात्—जहाँगीर की कृपा और ईश्वरीय समर्थन ने मुझे पुनः जीवन प्रदान किया और पुनः मुझे खानखानाँ की पदवी मिली।

दूसरे ही बरस पह्ला उलट गया। बेगम की महाबतखाँ से बिगड गई। आज्ञापत्र गया कि सेवा मे उपस्थित हो और अपनी जागीर तथा सेना आदि का हिसाब-किताब समझा दो। बादशाह लाहौर से काश्मीर की सैर करने के लिये चले जा रहे थे। वह हिन्दुस्तान की ओर से आया। उसके साथ छ हजार तलवार-मार राजपूत थे। लाहौर होता हुआ हुजूर की सेवा मे चला। पर उसके तेवर बिगडे हुए थे और वह क्रोध मे भरा हुआ था। खान-खानाँ वहाँ उपस्थित थे। वे ससार की नाडी खूब पहचानते थे। वे समझ गए कि आँधी आई है। अब खूब धूल उडेगी। साथ ही वे यह भी जानते थे कि छ हजार सैनिकों की बिसात ही क्या है, जिसपर यह मूर्ख अफगान कूदता है। ये जान निछावर करने-वाले उसके निजी सेवक थे। यह अवश्य बिगड बैठेगा, पर अन्त मे स्वयं ही बिगड जायगा, क्योकि इसकी कोई जड नही है। अन्त मे बाजी बेगम के ही हाथ रहेगी। सक्षेप यह कि खानखानाँ उस समय महाबतखाँ से भेंट करने के लिये नही गए। बल्कि कुशल-प्रश्न के लिये अपना प्रतिनिधि तक नही भेजा। उसका ध्यान भी सब ओर था। समझ गया कि ये खानखानाँ है और इन्होने यह भी प्रकट कर दिया कि इनके मन मे मेरी ओर से अभी तक मैल बनी है। हृदय शुद्ध नही हुआ है। ईश्वर जाने वहाँ क्या परिस्थिति उपस्थित हो और ऊँट किस करवट बैठे। यदि ये पीछे से आ गिरे तो बहुत कठिनता होगी। इसलिये जब झेलम के किनारे पहुँचकर बादशाह को कैद किया, तब उसी समय आदमी भेजे कि खानखानाँ को रक्षा-पूर्वक दिल्ली पहुँचा दो। आज्ञा का पालन करने के सिवा और हो ही क्या

सकता था। ये चुपचाप दिल्ली चले गए। वहाँ से विचार किया कि अपनी जागीर को चले जायँ। उसके मन में फिर कुछ सन्देह हुआ और उसने मार्ग में से ही इन्हे बुलवा लिया और कहला दिया कि लाहौर मे बैठो। इसे महाबतखाँ की चाहे नमकहरामी कहो और चाहे यह कहो कि वह एक मस्त और बेहोश आदमी के घर का प्रबन्ध करना चाहता था, पर फिर भी इसमे सन्देह नहीं कि वहाँ पहुँच कर उसने जो कुछ किया, वह शायद ही किसी नमक खानेवाले अमीर ने किया हो। यहाँ तक कि उसने बादशाह और बेगम दोनों को अलग-अलग कैद कर लिया। बेगम की बुद्धिमत्ता और युक्ति से धीरे-धीरे उसकी आँधी धीमी पड़ी। अन्त में वह भागा। खानखानाँ का हृदय उसके घावों से छलनी हो रहा था। उसने बहुत ही नम्रता तथा हार्दिक कामना-पूर्वक हुजूर को सेवा मे निवेदनपत्र भेजा कि इस नमकहराम को दंड देने की सेवा मुझे प्रदान की जाय। बेगम ने उसकी जागीर खानखानाँ के वेतन मे प्रदान कर दी। सात हज़ारी सवार का मन्सब, दो और तीन घोड़ोंवाली खिलअत, जड़ाऊ तलवार, जड़ाऊ जीन सहित घोड़ा, खासे का हाथी, नगद बारह लाख रुपए, घोड़े, ऊँट और बहुत सी सामग्री प्रदान की। साथ ही अजमेर का सूबा भी प्रदान किया। साथ मे सेनाओं सहित अमीर भी कर दिए। बहत्तर बरस का बुड्ढा; और उसपर भी इतनी-इतनी विपत्तियाँ पड़ चुकी थीं, इतने-इतने सोग देख चुका था, इसलिये शक्ति ने साथ नहीं दिया। खानखानाँ लाहौर में ही बीमार हो गए। दिल्ली पहुँचने पर दुर्बलता बहुत बढ़ गई और सन् १०३६ हि० मे इन्होंने इस लोक से प्रस्थान किया। हुमायूँ

के मकबरे के पास गाडे गए। तारीख कही गई—"खान-सिपह-सालार को"। सभी इतिहास-लेखको ने जिस प्रकार उत्तमता-पूर्वक इनके पिता की बातो का उल्लेख किया है, उसी प्रकार इनकी बातो का भी उल्लेख किया है। और उसपर विशेषता यह है कि ये सबके प्रिय और प्रशंसा-भाजन रहे।

जहाँगीर ने अपनी तुजुक मे इस दुर्घटना का उल्लेख करते हुए भिन्न-भिन्न संकेतो के रूप मे इनकी सेवाओ का कुछ वर्णन बहुत ही दुःख के साथ किया है और साथ ही शाहनवाज की वीरता और शूरता का भी उल्लेख किया है। अन्त मे लिखा है कि खानखानॉ योग्यता और गुणो मे सारे संसार मे अनुपम था। अरबी, तुरकी, फारसी और हिन्दी भाषाऍ जानता था। अनेक प्रकार की विद्याओ और साथ ही भारतीय विद्याओ का भी बहुत अच्छा ज्ञान रखता था। शूरता, वीरता और सरदारी मे झडा बल्कि ईश्वरीय कृति का झंडा था। फारसी और हिन्दी मे बहुत अच्छी कविता करता था। पूज्य पिताजी की आज्ञा से वाकआत बाबरी का फारसी भाषा मे अनुवाद किया था। कभी कोई शेर, कभी कोई रुबाई और कभी कोई गजल भी कहता था। और उदाहरण स्वरूप एक गजल और एक रुबाई भी उद्धृत की है।

निजामउद्दीन बख्शी ने तबकाते नासिरी मे अपने समय के अमीरो के जो सक्षिप्त वर्णन दिए है, उनमे इनका भी वर्णन है। उसका अनुवाद यहाँ दिया जाता है—

'इस समय खानखानॉ की अवस्था ३७ वर्ष की है। आज दस वर्ष हुए, इसने खानखानॉ का मन्सब और सेनापति का पद प्राप्त किया था। इसने बहुत बडी-बडी सेवाएँ की है और

बड़े-बड़े युद्धो में विजयी हुआ है। इस सुयोग्य और मान्य पुरुष के ज्ञान, विद्या और गुणो के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखें, वह सब सौ मे एक और बहुत मे से थोडे हैं। इसने सब लोगों पर दया करने का गुण, बड़े-बड़े विद्वानो और पंडितो की शिक्षा, फकीरो का प्रेम और कवि का हृदय या प्रकृति मानो अपने पिता से उत्तराधिकार मे पाई है। लौकिक ज्ञान और गुण की दृष्टि से इस समय दरबार में इसके जोड़ का और कोई अमीर नही है।"

बहुत सी ऐसी बातें थीं जो विशेष रूप से मानो इन्हीं के वंश के लिये थीं और कहीं नही पाई जाती थीं। और उनमे से भी प्राय: बातें ऐसी थी जिनका आविष्कार स्वयं इनकी बुद्धि और प्रकृति ने किया था। और कुछ बातें ऐसी थीं जो बादशाही विशेषता की मोहर रखती थी। दूसरे लोगों को वह मर्यादा प्राप्त ही नहीं हुई थी। उदाहरणार्थ हुमा के पर की कलगी बादशाह और शाहजादों के सिवा और कोई अमीर नही लगा सकता था। पर इनके वंश के लोगों को वह कलगी लगाने की भी आज्ञा थी।

खानखानाँ का धर्म

मआसिर उल् उमरा के लेखक लिखते हैं कि ये अपने आप को लोगों पर सुन्नत सम्प्रदाय का अनुयायी प्रकट करते थे और लोग कहते थे कि शीया हैं, तकैया * करते हैं। पर इसमें सन्देह नहीं कि इनसे शीया और सुन्नी दोनो ही सम्प्रदायो के

---

* अपने प्राणों तथा धन के नाश के भय से अपना वास्तविक धार्मिक सिद्धान्त प्रकट न करना।

लोगों को समान रूप से लाभ पहुँचा करता था। इनकी उदारता किसी विशेष सम्प्रदाय के लिये नहीं होती थी। हाँ, इनके लड़के कुछ ऐसे धार्मिक पक्षपात की बातें करते थे, जिनसे प्रमाणित होता था कि वे सुन्नी सम्प्रदाय के अनुयायी है। खानखानाँ साधारणतः शरअ की सभी आज्ञाओं को मानते थे, और जहाँ तक हो सकता था, उनका पालन भी करते थे। परन्तु यदि दरबार की मद्य-पानवाली मंडली मे पहुँच जाते थे, तो शराब भी पी लेते थे। जिस समय खानखानाँ को दक्खिन और कन्धार आदि पर चढ़ाई करने के लिये खान्देश से बुलाया गया था और वे डाक की चौकी बैठा कर आए थे, उस समय यहाँ एकान्त मे मन्त्रणा करने के लिये सभाएँ हुई थीं। एक रात को खानखानाँ और मानसिंह आदि विशेष विशेष और बड़े अमीरों को भी एकत्र किया गया था। इसका वर्णन करते हुए मुल्ला साहब कैसे मजे से चुटकी लेते है—"इसी जलसे मे एक दिन मुहर्रम की नवीं तारीख की रात थी, मद्य पिलानेवाले ने बादशाह के सामने मद्य का पात्र उपस्थित किया। उन्होंने वह पात्र खानखानाँ को दे दिया।" मुल्ला साहब जो चाहे, सो कहे। पर यह भी तो कहे कि वह कैसा समय था, जब मंडली मे एकत्र होने पर शरीयत के प्रधान और समस्त इस्लाम के मुफ्ती, जिनका धार्मिक अधिकार सारे भारत पर था, स्वयं माँग कर मद्य का पात्र ले, वहाँ यदि बादशाह का दिया हुआ मद्य का पात्र लेकर खानखानाँ पी न जायँ, तो क्या करें? और यदि सच पूछो तो अकबर भी परम पवित्र बननेवाले धर्माधिकारियों से व्यर्थ ही दुःखी नहीं था। उन लोगों ने उसके साम्राज्य का नाश करने मे कौन सी कमर उठा रखी थी?

शील और स्वभाव

ये लोगो के साथ मित्रता करने और मित्रता का निर्वाह करने मे परम कुशल और निपुण थे। शील और स्वभाव बहुत ही अच्छा था और सबके साथ बहुत ही प्रेम और तपाक से मिलते थे। अपनी मनोहर और मनोरंजक बातो से अपने और पराए सभी लोगों को अपना दास बना लेते थे। बातो-बातों में कानों के मार्ग से लोगों के हृदय मे उतर जाते थे। बहुत ही मिष्ट-भाषी थे, सदा सुन्दर और चोज भरी बातें कहते थे और बहुत ही तेज और चलते हुए थे। दरबार और बादशाही न्याया-लयों के समाचारो का इन्हे बहुत अधिक ध्यान रहता। यदि सच पूछो तो ये सदा सभी प्रकार की बातें और समाचार जानने के लिये परम उत्सुक और लालायित रहते थे। राजधानी में इनके कई ऐसे नौकर रहते थे जो दिन और रात के सभी समाचार बराबर डाक चौकी मे भेजते जाते थे। अदालतों, कचहरियों, चौकियो, चबूतरों यहाँ तक कि चौक और गली-बाजारो में भी जो कुछ सुनते थे, वह सब इनके पास लिख भेजते थे। खानखानाँ रात के समय बैठकर वे सब पत्र पढ़ा करते थे और पढ़कर उन्हे जला देते थे।

बादशाह के साथ सम्बन्ध रखनेवाले अथवा अपने किसी निजी विषय में वे किसी की ओर प्रवृत्त होने मे अपने उच्च पद का कभी ध्यान नहीं करते थे। वे अपने शत्रुओं के साथ भी कभी बिगाड़ नहीं करते थे। परन्तु यदि अवसर पाते थे, तो फिर चूकने भी नहीं थे। ऐसा हाथ मारते थे कि उसे साफ ही कर देते

लोगों को समान रूप से लाभ पहुँचा करता था। इनकी उदारता किसी विशेष सम्प्रदाय के लिये नहीं होती थी। हाँ, इनके लड़के कुछ ऐसे धार्मिक पक्षपात की बातें करते थे, जिनसे प्रमाणित होता था कि वे सुन्नी सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। खानखानाँ साधारणतः शरअ की सभी आज्ञाओं को मानते थे, और जहाँ तक हो सकता था, उनका पालन भी करते थे। परन्तु यदि दरबार की मद्य-पानवाली मंडली में पहुँच जाते थे, तो शराब भी पी लेते थे। जिस समय खानखानाँ को दक्खिन और कन्धार आदि पर चढ़ाई करने के लिये खान्देश से बुलाया गया था और वे डाक की चौकी बैठा कर आए थे, उस समय यहाँ एकान्त में मन्त्रणा करने के लिये सभाएँ हुई थीं। एक रात को खानखानाँ और मानसिंह आदि विशेष विशेष और बड़े अमीरों को भी एकत्र किया गया था। इसका वर्णन करते हुए मुल्ला साहब कैसे मजे से चुटकी लेते हैं—"इसी जलसे में एक दिन मुहर्रम की नवीं तारीख की रात थी, मद्य पिलानेवाले ने बादशाह के सामने मद्य का पात्र उपस्थित किया। उन्होंने वह पात्र खानखानाँ को दे दिया।" मुल्ला साहब जो चाहें, सो कहें। पर यह भी तो कहें कि वह कैसा समय था, जब मंडली में एकत्र होने पर शरीयत के प्रधान और समस्त इस्लाम के मुफ्ती, जिनका धार्मिक अधिकार सारे भारत पर था, स्वयं माँग कर मद्य का पात्र लें, वहाँ यदि बादशाह का दिया हुआ मद्य का पात्र लेकर खानखानाँ पी न जायँ, तो क्या करें? और यदि सच पूछो तो अकबर भी परम पवित्र बननेवाले धर्माधिकारियों से व्यर्थ ही दुःखी नहीं था। इन लोगों ने उसके साम्राज्य का नाश करने में कौन सी कसर उठा रखी थी?

शील और स्वभाव

ये लोगो के साथ मित्रता करने और मित्रता का निर्वाह करने मे परम कुशल और निपुण थे। शील और स्वभाव बहुत ही अच्छा था और सबके साथ बहुत ही प्रेम और तपाक से मिलते थे। अपनी मनोहर और मनोरंजक बातो से अपने और पराए सभी लोगों को अपना दास बना लेते थे। बातों-बातों में कानों के मार्ग से लोगों के हृदय मे उतर जाते थे। बहुत ही मिष्ट-भाषी थे, सदा सुन्दर और चोज भरी बातें कहते थे और बहुत ही तेज और चलने हुए थे। दरबार और बादशाही न्यायालयों के समाचारो का इन्हें बहुत अधिक ध्यान रहता। यदि सच पूछो तो ये सदा सभी प्रकार की बातें और समाचार जानने के लिये परम उत्सुक और लालायित रहते थे। राजधानी मे इनके कई ऐसे नौकर रहते थे जो दिन और रात के सभी समाचार बराबर डाक चौकी मे भेजते जाते थे। अदालतो, कचहरियो, चौकियो, चबूतरो यहाँ तक कि चौक और गली-बाजारों मे भी जो कुछ सुनते थे, वह सब इनके पास लिख भेजते थे। खानखानाँ रात के समय बैठकर वे सब पत्र पढा करते थे और पढ़कर उन्हे जला देते थे।

बादशाह के साथ सम्बन्ध रखनेवाले अथवा अपने किसी निजी विषय मे वे किसी की ओर प्रवृत्त होने मे अपने उच्च पद का कभी ध्यान नहीं करते थे। वे अपने शत्रुओ के साथ भी कभी बिगाड़ नहीं करते थे। परन्तु यदि अवसर पाते थे, तो फिर चूकने भी नहीं थे। ऐसा हाथ मारते थे कि उसे साफ ही कर देते

थे। इन्हीं सब बातों के कारण लोग कहते हैं कि वे जमाना-साज आदमी थे, जब जैसा समय देखते थे, तब वैसा काम करते थे। और उनकी नीति का यही मुख्य सिद्धान्त था कि शत्रु को उसका मित्र बनकर मारना चाहिए। और इसका कारण यह है कि वे अपने पद और मर्यादा की वृद्धि तथा सम्पत्ति और वैभव अर्जित करने के हर समय इच्छुक रहते थे। मआसिर उल् उमरा में लिखा है कि वीरता, उदारता, बुद्धिमत्ता, युक्ति और सेना तथा देश का प्रबन्ध करने में वे परम प्रवीण थे। भिन्न-भिन्न समयों पर वे तीस बरस तक दक्खिन में रहे थे और ऐसे ढंग से रहे थे कि दक्खिन के बादशाहों और अमीरों को अपने मेल-मिलाप के द्वारा सदा अपनी अधीनता और प्रेम के फन्दे में फँसाए रहते थे। बादशाही दरबार में जो अमीर या शाहजादा जाता था, वह यही कहता था कि ये शत्रु-पक्ष के साथ मिले हुए हैं। ये चगताई साम्राज्य के बहुत बड़े और उच्च अमीरों में से थे। प्रसिद्धि के पृष्ठ पर इनके प्रसिद्ध नाम ने चिरस्थायी स्थान प्राप्त किया है। इन सब बातों के उपरान्त मआसिर उल् उमरा में एक शेर भी लिखा है, जो किसी शत्रु या शत्रुओं के खुशामदी ने कहा था और जो इस प्रकार है—

یک وجب قد و صد گرہ در دل -
مشتکے استخوان و صد مشکل -

अर्थात्—यह छोटी सी आकृति और दिल में सौ गाँठें। मुट्ठी भर हड्डी और उसपर सौ कठिनाइयाँ हैं।

मैं कहता हूँ कि हाय-हाय, निर्दय संसार और कठोर-हृदय सांसारिक लोग, गड्ढों में बसनेवाले और मोरियों में सड़नेवाले

लोग वादशाही महलों मे रहनेवाले लोगो पर बातें बनाते हैं। उन्हे इस बात की क्या खबर कि बादशाहो को राजसिहासन पर बैठानेवाले उस अमीर के सामने कैसे-कैसे कठिन अवसर और पेचीले मामले आते थे और वह साम्राज्य की समस्याओं को युक्ति के हाथो से किस प्रकार सँभालता था ! यह कमीना, गन्दा और अपवित्र संसार ! इसकी बस्ती उपद्रव और उत्पात का मैला है। अधिकांश लोग बुरी नीयतवाले, दूसरो की बुराई की बातें सोचनेवाले और बुरे कर्म करनेवाले हैं। उनके अन्दर कुछ है और बाहर कुछ। हृदय मे कपट, जवान पर क़समें, तिस पर वे अयोग्य लोग स्वयं कुछ भी नहीं करते, वल्कि यों कहना चाहिए कि कुछ कर ही नहीं सकते। और फिर योग्य व्यक्तियो और काम करनेवाले लोगों को देख भी नहीं सकते। वे लोग जान लड़ाकर जो परिश्रम और काम करते हैं, उन्हे मिटाकर भी वे लोग सन्तोप नहीं करते। वल्कि उसके पुरस्कार के स्वयं अधिकारी वनते हैं। यदि ऐसे दुष्टों के मुकाबले मे मनुष्य स्वयं भी वैसा ही न वन जाय, तो उसका किस प्रकार निर्वाह हो सकता है ? यूनान के हकीम अरस्तू ने क्या अच्छा कहा है कि मनुष्य के सज्जन और भले वने रहने के लिये यह आवश्यक है कि जिन लोगों के साथ उसे व्यवहार करना पडे, वे लोग भी सज्जन और भले हों। नहीं तो उसकी सज्जनता और भलाई कभी निभ ही नहीं सकती। इसमें सन्देह नहीं कि उसका यह कहना बहुत ही ठीक है। यदि मनुष्य स्वयं अपनी ओर से सदा सज्जन और भला वना रहे तो दुष्ट शैतान उसके कपड़े क्या वल्कि खाल तक नोच ले जाय। इसलिये उचित है कि बेईमानों के साथ उनसे भी बढ़कर बेईमान वने।

खानखानाँ यद्यपि नाम को सात हजारी मन्सबदार थे, पर देशों में वे स्वाधीन शासकों की भाँति शासन करते थे। सैकड़ों हजारी मन्सबदारों से उन्हें काम पड़ता था। यदि वे इस प्रकार काम न निकालते तो देश का शासन कैसे कर सकते थे? यदि वे ऐसे कायरों से इस प्रकार अपने प्राण न बचाते तो वे कैसे जीवित रहते? यदि वे ठट्ठ के ठट्ठ शत्रुओं को इस पेच से न मारते, तो स्वयं क्योंकर जीवित रहते? वे स्वयं ही अवश्य मारे जाते। बैठकर कागजों पर लिखना और बात है और लड़ाइयाँ जीतना तथा साम्राज्य के कार्यों का निर्वाह करना और बात है। वही थे जो सब कर गए और नेकी ले गए। स्मृति के लिये अपना सुनाम छोड़ गए। उस समय भी बहुत से अमीर थे और उसके बाद अब तक भी बहुतेरे अमीर हुए, पर किसी के जीवन-चरित्र में उसके कार्यों का पासंग भी तो दिखला दो।

विद्वत्ता और रचनाएँ

इसकी विद्या सम्बन्धी योग्यता के विषय में हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि यह अरबी भाषा बहुत अच्छी तरह समझता था और बोलता था। फारसी और तुर्की तो इसके घर की भाषाएँ थीं। यद्यपि उसे अन्न देनेवाला स्वामी भारतीय था, परन्तु उसका सारा घर, दरबार और नौकर-चाकर आदि सब तुर्क और ईरानी थे। उसका स्वभाव और विचार बहुत उच्च तथा विस्तृत थे। मैंने इसके बहुत से ऐसे निवेदन-पत्र आदि देखे हैं जो उसने बादशाह या शाहजादों के नाम भेजे थे। वे खरीते आदि भी देखे हैं जो अपने मित्र अमीरों के पास भेजे थे,

और वे निजी पत्र आदि भी देखे हैं जो मिरजा ईरज आदि पुत्रों के नाम लिखे थे। उन सबसे यही प्रमाणित होता है कि यह फारसी भाषा का बहुत अच्छा लेखक था। उस समय के लोग अपने पूर्वजो की सभी बातों की और विशेषत: उनकी भाषा की बहुत अधिक रक्षा करते थे। और सबसे बड़ी बात यह थी कि उस समय का बादशाह तुर्क था। जहाँगीर अपनी बाल्यावस्था का वर्णन करता हुआ लिखता है कि मेरे पिता को इस बात की बहुत चिन्ता थी कि मुझे तुर्की भाषा आ जाय। इसी कारण उसने मुझे फूफी को सौंप दिया था; और उनसे कह दिया था कि इससे तुर्की मे ही बाते किया करो और तुर्की ही बुलवाया करो।

मआसिर उल् उमरा मे लिखा है कि खानखानाँ अरबी, फारसी और तुर्की भाषाएँ बहुत अच्छी तरह जानता था, और अनेक भाषाएँ जो संसार मे प्रचलित हैं, उनमें भी बातें करता था।

(१) तुजुक बाबरी नामक ग्रन्थ तुर्की भाषा में था। अकबर की आज्ञा से फारसी भाषा में इसका अनुवाद करके सन् ९९७ हि० मे भेंट किया और प्रशंसा तथा धन्यवाद के बहुत से फूल समेटे। इसकी भाषा बहुत ही सरल और सब लोगों के समझने योग्य है। बाबर के विचार इसने बहुत सुन्दरतापूर्वक प्रकट किए हैं। यह स्पष्ट ही है कि उस ऊँचे दिमागवाले श्रेष्ठ अमीर ने न आँखों का तेल निकाला होगा और न दीपक का धूआँ खाया होगा। मुफ्त का माल खानेवाले बहुत से मुन्शी साथ रहते थे। किसी से कह दिया होगा। एक दो उजबक उनके साथ कर दिए होंगे। सब मिल-जुलकर लिखते होंगे। आप सुना करता होगा और सूचनाएँ देता जाता होगा। तब यह

खानखानाँ यद्यपि नाम को सात हजारी मन्सवदार थे, पर देशो मे वे स्वाधीन शासको की भॉति शासन करते थे। सैकडो हजारी मन्सवदारो से उन्हे काम पडता था। यदि वे इस प्रकार काम न निकालते तो देश का शासन कैसे कर सकते थे ? यदि वे ऐसे कायरो से इस प्रकार अपने प्राण न वचाते तो वे कैसे जीवित रहते ? यदि वे ठट्ठ के ठट्ठ शत्रुओ को इस पेच से न मारते, तो स्वयं क्योकर जीवित रहते ? वे स्वयं ही अवश्य मारे जाते। वैठकर कागजो पर लिखना और वात है और लडाइयॉ जीतना तथा साम्राज्य के कार्यों का निर्वाह करना और वात है। वही थे जो सव कर गए और नेकी ले गए। स्मृति के लिये अपना सुनाम छोड़ गए। उस समय भी वहुत से अमीर थे और उसके वाद अव तक भी वहुतेरे अमीर हुए, पर किसी के जीवन-चरित्र मे उसके कार्यों का पासंग भी तो दिखला दो।

विद्वत्ता और रचनाऍ

इसकी विद्या सम्वन्धी योग्यता के विपय मे हम केवल इतना ही कह सकते है कि यह अरवी भापा वहुत अच्छी तरह समझता था और वोलता था। फारसी और तुर्की तो इसके घर की भापाऍ थीं। यद्यपि उसे अन्न देनेवाला स्वामी भारतीय था, परन्तु उसका सारा घर, दरवार और नौकर-चाकर आदि सव तुर्क और ईरानी थे। उसका स्वभाव और विचार वहुत उच्च तथा विस्तृत थे। मैने उसके वहुत से ऐसे निवेदन-पत्र आदि देखे है जो उसने वादशाह या शाहजादो के नाम भेजे थे। वे खरीते आदि भी देखे है जो अपने मित्र अमीरो के पास भेजे थे,

और वे निजी पत्र आदि भी देखे हैं जो मिरजा ईरज आदि पुत्रों के नाम लिखे थे। उन सवसे यही प्रमाणित होता है कि यह फारसी भाषा का वहुत अच्छा लेखक था। उस समय के लोग अपने पूर्वजों की सभी वातों की और विशेषतः उनकी भाषा की वहुत अधिक रक्षा करते थे। और सवसे वड़ी वात यह थी कि उस समय का वादशाह तुर्क था। जहाँगीर अपनी वाल्यावस्था का वर्णन करता हुआ लिखता है कि मेरे पिता को इस वात की वहुत चिन्ता थी कि मुझे तुर्की भाषा आ जाय। इसी कारण उसने मुझे फूफी को सौंप दिया था; और उनसे कह दिया था कि इससे तुर्की मे ही वाते किया करो और तुर्की ही वुलवाया करो।

मआसिर उल् उमरा मे लिखा है कि खानखानाँ अरवी, फारसी और तुर्की भाषाएँ वहुत अच्छी तरह जानता था, और अनेक भाषाएँ जो संसार में प्रचलित हैं, उनमे भी वातें करता था।

(१) तुजुक वावरी नामक ग्रन्थ तुर्की भाषा मे था। अकवर की आज्ञा से फारसी भाषा में इसका अनुवाद करके सन् ९९७ हि० में भेंट किया और प्रशंसा तथा धन्यवाद के वहुत से फूल समेटे। इसकी भाषा वहुत ही सरल और सव लोगो के समझने योग्य है। वावर के विचार इसने वहुत सुन्दरतापूर्वक प्रकट किए हैं। यह स्पष्ट ही है कि उस ऊँचे दिमागवाले श्रेष्ट अमीर ने न आँखो का तेल निकाला होगा और न दीपक का धूआँ खाया होगा। मुफ्त का माल खानेवाले वहुत से मुल्ला साथ रहते थे। किसी से कह दिया होगा। एक दो उजवक उनके साथ कर दिए होंगे। सव मिल-जुलकर लिखते होंगे। आप सुना करता होगा और सूचनाएँ देता जाता होगा। तव यह

इतनी सुन्दर और उत्तम प्रति प्रस्तुत हुई होगी। भला मौलवियों और मुल्लानों से क्या हो सकता था!

(२) अकबर का शासन-काल मानों नई रोशनी का समय था। उसने संस्कृत विद्या का भी ज्ञान प्राप्त किया था। ज्योतिष सम्बन्धी उसकी एक मसनवी है जिसमें एक चरण फारसी का और एक संस्कृत का है।

(३) फारसी में कोई दीवान नहीं है। फुटकर गजलें और रुबाइयाँ है। पर जो कुछ है, वे बहुत अच्छी है। वे स्वयं भी बहुत अच्छी है और उनकी बाते भी बहुत अच्छी है *।

सन्तान

पिता तो प्राय युद्धों आदि पर रहता था और बच्चों का पालन-पोषण अकबर के हुजूर मे ही होता था। खानखानाँ अपने लडको आदि के साथ बहुत प्रेम रखता था। इसी लिये अकबर भी अपने प्राय आज्ञापत्रों मे किसी न किसी प्रकार ईरज और दाराब आदि का नाम ले दिया करता था। अब्बुलफजल को ये नाम अकबर की अपेक्षा भी अधिक लेने पडते थे, क्योंकि उन दिनों उसमें और खानखानाँ मे बहुत अधिक प्रेम था। सन ९९८ हि० मे अब्बुल फजल अकबरनामे मे लिखते हैं कि खान-खानाँ को पुत्र की बडी कामना थी। जब तीसरा पुत्र हुआ, तब अकबर ने उसका नाम कारन रखा। आनन्द और प्रसन्नता की धूमधाम से जशन किया और हुजूर को भी बुलाया। प्रार्थना

---

* 'रहीम' के नाम से खानखानाँ की हिन्दी में जो अनेक उत्तमोत्तम रचनाएं है, उनसे कदाचित् हजरत आजाद परिचित नहीं थे। —अनुवाद

स्वीकृत हुई। उनका मान-सम्मान भी बहुत बढ़ाया गया। लेखों के ढंग से ऐसा जान पड़ता है कि खानखानाँ अपने लड़को आदि के साथ जितना प्रेम रखता था, उतना ही उनकी शिक्षा-दीक्षा आदि पर भी ध्यान रखता था।

मिरज़ा ईरज सब लड़कों में बड़ा था। इसकी शिक्षा-दीक्षा आदि के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है। जिन दिनों खानखानाँ और अब्दुलफज़ल मे बहुत अधिक प्रेम था, उन दिनों अब्दुल-फजल ने खानखानाँ के नाम एक पत्र भेजा था। उसमें वे लिखते हैं कि दरबार मे ईरज को भेजने की क्या आवश्यकता है? तुम समझते हो कि इससे उसके धार्मिक विचार और विश्वास में सुधार होगा? पर यह आशा व्यर्थ है।

जो लोग शेख पर बे-दीन या धर्म-भ्रष्ट होने का अभियोग लगाते हैं, वे उसके इन शब्दों को देखें, और इस बात पर विचार करें कि उसके मन में दरबार की ओर से इन विषयों में क्या विचार थे जो उसकी कलम से ये वाक्य निकले थे।

अकबर के राज्यारोहण के ४० वें वर्ष खानखानाँ दक्खिन मे था। उस समय ईरज भी उसके साथ था। अम्बर हब्शी सेना लेकर तिलंगाने को मारता हुआ चपरे आया। अमीरों ने खानखानाँ के पास लगातार पत्र भेजकर उससे सहायता के लिए सेना माँगी। खानखानाँ ने ईरज को भेजा। वहाँ बहुत मारके की लड़ाई हुई। नवयुवक वीर ने ऐसी वीरता से तलवारें मारीं कि बाप-दादा का नाम रोशन हो गया। पुराने-पुराने सैनिक उसकी प्रशंसा करते थे। इसी तलवार की सिफारिश ने उसे दरबार मे बहादुर की उपाधि दिलवाई थी।

सन् १०१२ हि० मे जब आदिलशाह ने शाहजादा दानियाल के साथ अपनी कन्या का विवाह करना स्वीकृत किया, तब यह कुछ अमीरो के साथ अपने पॉच हजार सैनिको को लिए हुए बरात मे गया, और वहॉ से दुलहिन की पालकी के साथ दहेज की बहुत सी बहुमूल्य सामग्री लिए हुए आनन्द की शहनाइयॉ बजाता हुआ आया। जब बारात पास पहुँची, तब खानखानॉ चौदह हजार सवारो को साथ लिए नगाड़े बजाते हुए गए और बारात को वापस लेकर लश्कर मे आए।

जहॉगीर के शासन काल मे भी इसने और उसके दाराव तथा दूसरे भाइयो ने भी ऐसे-ऐसे काम कर दिखलाए कि उसके पिता का हृदय और दादा की आत्मा परम प्रसन्न और सन्तुष्ट होती थी। विशेषत ईरज की वीरता, साहस और ऊँचा दिमाग देखकर सभी लोग लिखते है कि यह दूसरा खानखानॉ कहॉ से आ गया! जहॉगीर अपनी तुजुक में स्थान-स्थान पर उसकी बहुत प्रशंसा करता है, और ऐसा जान पडता है कि वह बहुत ही प्रसन्न हो-होकर वह प्रशसा करता है और भविष्य के लिए आशा रखता है कि यह जान लडाकर बहुत से अच्छे-अच्छे काम करेगा।

जब एशिया के प्राचीन बादशाहो के सिद्धान्तो और नियमो आदि की आज-कल के नियमो और सिद्धान्तो के साथ तुलना करते है, तो बहुत से अन्तर देखने मे आते है। पर विशेष रूप से दिखलाने के योग्य बात यह है कि वे लोग अपने सेवको के गुण, सेवाऍ और सम्पन्नता आदि देखकर उसी प्रकार प्रसन्न होते थे, जिस प्रकार कोई जमींदार अपने उपजाऊ खेत को हरा-

भरा देखकर प्रसन्न होता है, या माली अपने लगाए हुए वृक्ष की छाया में बैठकर प्रसन्न होता है, या कोई स्वामी अपने घोड़ो, गौओं और बकरियो आदि को अच्छा या अधिक दूध देनेवाली देखकर प्रसन्न होता और उनके लिए अभिमान करता है। यह अलौकिक पदार्थ है जो भाग्यवान जान निछावर करनेवालो को प्राप्त होता है, और जिसकी हम लोगो को कदापि आशा नहीं हो सकती। इसका कारण क्या है? कारण यही है कि वे जान निछावर करनेवाले अपने बादशाह के सामने जान लड़ाया करते थे। इसी लिए उन्हे उन बादशाहो तथा उसकी सन्तान से स्वयं अपने लिए ही नहीं, वल्कि अपनी सन्तान के लिए भी हजारों आशाएँ होती थीं। और हम? हमारा बादशाह तो वह हाकिम है, जिसकी थोडे ही दिनो बाद बदली हो जायगी या जो विलायत चला जायगा। फिर वह कौन और हम कौन।

सन् १०२० हि० मे ईरज को जहाँगीर ने शाहनवाजखाँ की उपाधि दी। सन् १०२१ हि० में तीन हजारी जात, तीन हजारी मन्सब की उपाधि दी। सन् १०२४ हि० मे उसने अम्बर पर ऐसी अच्छी विजय प्राप्त की, जिसकी हजारो प्रशंसाएँ और साधुवाद तलवार और कटार की जबान से भी निकले। और दाराव ने तो इस प्रकार जान लड़ाकर युद्ध किया कि वह ईर्ष्या की सीमा के भी उस पार पहुँच गया। सन् १०२६ हि० मे उसे बहुत अच्छे-अच्छे घोड़ोंवाले बारह हजार बहादुर सवार प्रदान किए गए। उसने बालाघाट पर घोड़े उठाए। इसी सन् मे इनकी कन्या का शाहजादा शाहजहान के साथ विवाह हुआ था।

सन् १०२७ हि० मे इसे पंज-हजारी मन्सब मिला था

और साथ ही दो हजार ऐसे सवार मिले थे जिनके पास दो-दो और तीन-तीन घोडे थे।

सन् १०२८ हि० मे जहाँगीर लिखता है कि जब वह शिक्षक के पद पर नियत होकर विदा होने लगा, तब मैने उसे बहुत ही ताकीद के साथ कह दिया था कि सुना है कि शाहनवाजखाँ शराब पीने का शौकीन हो गया है और बहुत शराब पीता है। यदि यह बात सच हो तो बहुत दुःख है कि वह इसी अवस्था मे अपने प्राण गँवा बैठेगा। उसे बिलकुल स्वच्छन्द मत छोड़ देना। यदि स्वयं भली भाँति उसकी रक्षा न कर सको, तो हमे स्पष्ट लिखो। हम उसे अपनी सेवा मे बुला लेंगे और उसकी अवस्था सुधारने पर ध्यान देंगे। जब वह बुरहानपुर पहुँचा, तब उसने देखा कि लडका बहुत ही दुर्बल और अशक्त हो गया है। चिकित्सा की गई, परन्तु कई दिनो के बाद वह बहुत ही अशक्त होकर बिस्तर पर पड गया। हकीमो ने बहुत कुछ चिकित्सा, उपचार और उपाय आदि किए, पर कुछ भी लाभ नहीं हुआ। ठीक युवावस्था मे और वैभव तथा प्रताप की दशा मे तेंतिस वर्ष की उम्र मे सहस्रो कामनाएँ और अभिलाषाएँ लेकर परलोकवासी हुआ। यह दुःखद समाचार सुन कर मुझे बहुत ही दुःख हुआ। सच तो यह है कि वह बहुत बडा वीर था। यदि वह जीवित रहता तो इस साम्राज्य की बहुत अच्छी सेवाएँ करता और अपनी स्मृति के बहुत बडे-बडे काम करके छोड जाता। इस मृत्यु के मार्ग पर तो सभी को चलना है और ईश्वर की आज्ञा के सामने किसी का कुछ वश नहीं चलता। परन्तु इस प्रकार किसी का संसार से उठ जाना तो अवश्य ही बहुत बुरा लगता है। आशा है कि

ईश्वर उसकी आत्मा पर अनुग्रह करेगा। राजा रंगदेव बहुत पास के और घनिष्ट सेवकों में से है। उसे मैंने खानखानाँ के पास मातम-पुरसी करने के लिये भेजा है। मैंने उस पर बहुत अनुग्रह किया और उसका हृदय शान्त तथा सुखी करना चाहा। शाहनवाज का मन्सब उसके भाइयों और लड़कों में बाँट दिया। दाराब को पंज-हजारी जात और सवार कर दिया और खिलअत, हाथी, घोड़ा तथा जड़ाऊ तलवार देकर उसके पिता के पास भेज दिया, जिसमें वह वहाँ जाकर शाहनवाजखाँ के स्थान पर बरार और अहमदनगर का सूबेदार होकर रहे। उसके दूसरे भाई रहमान दाद को दो हजार आठ सौ सवार, शाहनवाज के लडके मनोचर को दो हजारीजात, हजार सवार और दूसरे बेटे तुगरल को हजारी जात और पाँच सौ सवार का मन्सब प्रदान किया। सच बात तो यह है कि युवावस्था में मरनेवाले इस अमीरजादे ने जान लड़ा-लड़ा कर जहाँगीर के हृदय पर अपनी वीरता और योग्यता की बहुत अच्छी छाप बैठा दी थी। जहाँगीर ने अपनी तुजुक मे इसकी वीरता का कई स्थानो पर बहुत अच्छा उल्लेख किया है, और वह हर जगह यही लिखता है कि यदि यह अधिक समय तक जीवित रहता, तो साम्राज्य की बहुत अच्छी-अच्छी सेवाएँ करता।

दाराब—सन् १०२९ मे खानखानाँ का प्रार्थनापत्र आया कि दक्खिन के बरकी आदि के सरदार अनेक जंगली जातियों को अपने साथ लेकर उपद्रव कर रहे हैं। थानेदार उठ कर दाराब के पास चले आए हैं। बादशाह ने दो लाख रुपए भेजे। दाराब ने कई बार अमीरों को भेजा था। वे लोग जाते थे और

अपने सैनिक कटवा कर चले आते थे। अन्त मे इस बार वह स्वयं गया। उन्हे मारता-मारता उनके घरो तक जा पहुँचा। सबको मार-काटकर और उनका माल-असबाब लूट कर उन्हे विकल कर दिया। अन्त मे उसकी जो दु:खद अवस्था हुई थी, उसका उल्लेख उसके पिता के प्रकरण मे हो चुका है। बार-बार सन्तोष के हृदय मे कटार मारने की क्या आवश्यकता है।

रहमान दाद—जिन फूलो को हम जानते हैं, वे साधारण रग और सुगन्ध रखते थे। परन्तु यह फूल अनेक प्रकार के गुणो आदि से युक्त तथा सज्जित था। अभागा पिता इसी के साथ सबसे अधिक प्रेम करता था। इसकी माता जाति की सूद्रिया थी और अमरकोट नामक स्थान की रहनेवाली थी। वह इस बात का अभिमान किया करता था कि बादशाह का जन्म मेरी ननिहाल मे हुआ था। जिस समय वह मरा था, उस समय किसी को यह साहस नही होता था कि खानखानाँ के पास जाकर उसकी मृत्यु का समाचार उसे सुनावे। सिन्ध के रहनेवाले हजरत शाह ईसा नामक एक महात्मा थे। महलवालो ने उन्ही से कहला भेजा कि आप ही जाकर खानखानाँ को यह परम दु:खद समाचार दीजिए। उन्होने भी केवल इतना किया कि शोकसूचक वस्त्र पहन कर गए। केवल फातिहा पढा। एकाध आयत और एकाध हदीस कही और पुण्यवान होने के लिये धैर्य और सान्त्वना के कुछ वाक्य कहे और उठकर चले आए। जहाँगीर अपनी तुजुक मे लिखता है कि सन् १०२९ हि० मे खानखानाँ को फिर पुत्र-शोक देखना पडा। इस बार उसका लडका रहमान दाद बालापुर मे मर गया। कई दिनो तक ज्वर

आया था। केवल दुर्बलता ही रह गई थी। एक दिन शत्रु-पक्ष के लोग सेना का दस्ता बाँधकर प्रकट हुए। बड़ा भाई दाराब सेना लेकर सवार हुआ। जब इसे यह समाचार मिला, तब यह भी वीरता के आवेश मे आकर उठ खड़ा हुआ और सवार होकर घोड़ा दौडाता हुआ अपने भाई के पास जा पहुँचा। शत्रु को मार भगाया। विजय के आनन्द में लहरों की तरह लहराता हुआ लौटा। घर आकर जिस प्रकार सचेत रहना चाहिए था और शरीर की रक्षा करनी चाहिए थी, उस प्रकार सचेत नहीं रहा और शरीर की रक्षा नहीं की। आते ही कपड़े उतार डाले। हवा लगने के कारण शरीर ऐंठने लगा। जवान बन्द हो गई। दो दिन तक यही दशा रही। तीसरे दिन मर गया। बहुत वीर युवक था। तलवार चलाने और अच्छे काम कर दिखलाने का इसे बहुत शौक था। इसका जी चाहता था कि अपना गुण तलवार मे दिखलावें। आग तो सूखे और गीले दोनों को समान रूप से जलाती है। पर मेरे हृदय को बहुत अधिक दु.ख होता है कि उसके बुड्ढे पिता की क्या दशा हुई होगी। उसका हृदय तो पहले से ही भग्न था। अभी शाहनवाजखाँ का घाव भरा ही नहीं था कि एक और घाव आ लगा। ईश्वर उसे इसके सहन करने के योग्य धैर्य और साहस प्रदान करे।

अमरउल्ला—नाम का एक और लडका भी था जो दासी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। यह शिक्षा आदि से वंचित रहा। यह भी युवावस्था में ही मरा था। इसके विषय मे जहाँगीर ने प्रसन्न होकर लिखा था कि इसने खान्देश के गोडाना नामक स्थान में जाकर वहाँ की हीरे की खान पर अधिकार किया था।

हैदर कुली—पिता इसे प्रेम से हैदरी कहा करता था। यह कई भाइयो से पीछे आया था और सबमे पहले गया।

सन् १००४ हि० की बातो का उल्लेख करते समय इसका वर्णन किया जा चुका है। पाठक वहीं देख ले। ईश्वर ऐसा शोक शत्रु को भी न दे।

दो लडकियो के वर्णन भी ग्रन्थो मे काली नकाबे डाले हुए दिखाई देते हैं। एक तो वही थी जिसका दानियाल के साथ विवाह हुआ था और जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। दुःख है कि जिस जाना बेगम के सिर से सुहाग के इत्र टपकते थे, निर्दय विधि ने उसमे दुर्भाग्य के हाथो से रँडापे की धूल डाली। इस बेचारी धर्म्मनिष्ठ ने ऐसा शोक किया कि कोई क्या करता। इसने दहकती हुई आग से अपना सारा शरीर दागा था। वृद्धा होकर मरी थी, पर जब तक जीती रही, तब तक सफेद गजी-गाढा ही पहनती रही। कभी सिर पर रगीन रूमाल तक न डाला। इसके कृत्य और आचरण पुरुषो तक के लिये आदर्श हैं।

जहाँगीर दौरा करने के लिये दक्खिन की ओर गया था। वहाँ खानखानाँ ने बादशाह, उसके समस्त दरबारियो और सारे लश्कर की दावत की थी। सयोग यह कि उन दिनो पतझड ने वृक्षो के कपडे उतार लिए थे। इस सदाचारिणी स्त्री ने उन्हे भी वस्त्रो आदि से सुसज्जित किया था। दूर दूर से चित्रकार आदि बुलवाए थे। उनसे कागजो और कपडो के फूल कतरवाए थे। मोम और लकडी के फल तरशवाए थे और उन पर ऐसा रग रोगन किया था कि असल और नकल मे कोई अन्तर ही नहीं दिखाई देता था। जिस समय बादशाह आए, उस समय सभी

वृक्ष हरे थे और अपनी झोलियाँ फलों से भरे हुए खड़े थे। बादशाह बहुत ही चकित हुए। रविश पर चले जा रहे थे। जब उन्होंने एक फल पर हाथ डाला, तब उन्हें पता चला कि यह सारा कारखाना केवल सब्ज बाग है। बहुत प्रसन्न हुए।

इनकी दूसरी लड़की का नाम नहीं ज्ञात है। फरहंग जहाँगीरी के लेखक मीर जमालउद्दीन अंजू अकबर के अमीरों में से एक थे। उनके दो लड़के थे, जिनमें से एक का नाम मीर अमीरउद्दीन था। उनकी पितृ-भक्ति और आज्ञाकारिता उन्हे पिता की सेवा से क्षण भर भी अलग नहीं होने देती थी। यह लड़की उन्हीं से ब्याही थी। दुःख है कि यह बेचारी भी ठीक युवावस्था मे विधवा हो गई थी।

मियाँ फहीम

ये वही मियाँ फहीम हैं जिनके सम्बन्ध में भारत की स्त्रियों और पुरुषों में यह कहावत प्रसिद्ध है कि—"कमावें खानखानाँ और लुटावें मियाँ फहीम।" खानखानाँ के कुछ निवेदन-पत्र और चिट्ठियाँ मैंने देखी हैं। वे भी इन्हे मियाँ फहीम ही लिखते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि वे भी इन्हे मियाँ ही कहते होंगे। बस ये मियाँ ही प्रसिद्ध हो गए। लोग इन्हे खानखानाँ का दास समझते हैं। पर वास्तव मे ये दास नहीं थे, बल्कि एक राजपूत के लड़के थे। बहुत ही आस्तिक, ईश्वर का भय करनेवाले, मुरव्वतदार और गुण-ग्राही थे। खानखानाँ ने इन्हें अपने पुत्रो की तरह पाला था और पुत्रो के साथ ही इन्हें शिक्षा आदि दिलाई थी। इन्हें साहस और वीरता से दूध पिलवाया था,

और योग्यता तथा शिष्टाचार से शिक्षा दिलवाई थी। अपने स्वामी की कृपा से इनका नाम भी प्रसिद्धि के आकाश में ऐसा चमका, जैसे चन्द्रमा के पास का तारा चमकता है। लड़के का कोई नाम भी नहीं जानता। इन सब गुणों के अतिरिक्त मियाँ फहीम बहुत संयमी, सज्जन और सत्कृत्य करनेवाले थे। मरने के दिन तक आधी रात की और सवेरे ९ बजे की नमाज आदि (जो साधारण पाँचों नमाजों के अतिरिक्त होती हैं) नहीं छूटी। साधुओं की संगति इन्हें बहुत प्रिय थी। सैनिकों के साथ ये बिलकुल भाइयों का सा व्यवहार करते थे। खानखानाँ की सरकार के सभी काम केवल इन पर निर्भर करते थे। खूब खिलाते थे, लुटाते थे, अपना चित्त प्रसन्न करते थे और स्वामी का नाम उज्वल करते थे। युद्धों आदि में ये तलवार और तीर की तरह खानखानाँ के साथ रहते थे। मैंने अकबर के नाम लिखा हुआ खानखानाँ का एक निवेदन-पत्र देखा है। उससे पता चलता है कि सहेल की लड़ाई में यह हरावल में था और इसी ने आगे बढ़कर आक्रमण किया था। पर साथ ही स्वभाव कुछ तीखा था और दृष्टि भी बहुत अधिक ऊँची थी। जब जाओ, तब उसकी ड्योढ़ी पर कोड़ा ही चटकता हुआ सुनाई देता था।

एक दिन दाराब और शाहजहानवाले विक्रमाजीत एक ही मसनद पर बैठे हुए बातें कर रहे थे। इतने में फहीम आ गया और इन लोगों को इस प्रकार बैठे हुए देखकर आग-बबूला हो गया। उसने बहुत बिगड़ कर दाराब से कहा कि अच्छा होता कि इरज के बदले तू ही मर जाता। यह डाकू ब्राह्मण और बैरमखाँ के पोते के बराबर बैठे! (मआसिर उल उमरा)

अन्त मे खानखानाँ इससे कुछ अप्रसन्न हो गए थे; इसलिए इसे बीजापुर की फौजदारी पर भेज दिया था। कुछ दिनों के बाद हिसाब-किताब माँगा। हाफिज नसरउल्लाखाँ उन दिनों खानखानाँ के ऐसे दीवान थे, जिन्हे सब प्रकार के अधिकार प्राप्त थे और जो बहुत ही प्रतिष्ठित आदमी थे। वही हिसाब लेने लगे। किसी रकम के सम्बन्ध मे कुछ कहा-सुनी हो गई। फहीम ने भरे दरबार मे हाफिज साहब के मुँह पर तमाचा खींच मारा और आप उठकर चला गया। पर धन्य है खानखानाँ का हौसला। वे आधी रात के समय आप गए और जाकर उसे मना लाए। (मआसिर उल् उमरा)

जिस समय महाबतखाँ ने खानखानाँ को कैद करना चाहा था, उस समय फहीम की ओर से उसे कुछ खटका था। वह सोचता था कि यह मन-चला जवान है। कहीं ऐसा न हो कि अधिक आग भड़क उठे। इसलिए उसने सोचा कि पहले मन्सब और पुरस्कार आदि का लोभ देकर इसे बुला लेना चाहिए। पर फहीम ने नहीं माना। महाबतखाँ ने बहुत-बहुत सँदेसे भेजे; और अन्त मे यहाँ तक कहला भेजा कि यह सिपाहगिरी का घमंड कब तक काम देगा। तुम व्यर्थ ही अपने प्राण गँवा बैठोगे। फहीम ने कहा कि यह खानखानाँ का दाम है। इतना सस्ता भी हाथ नहीं आवेगा।

जिस समय खानखानाँ को महाबतखाँ ने बुलवाया था, उसी समय फहीम ने कह दिया था कि इसमे कुछ छल-कपट जान पड़ता है। ऐसा न हो कि अप्रतिष्ठा और दुर्दशा की नौबत पहुँचे। अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित और सब प्रकार से तैयार

और योग्यता तथा शिष्टाचार से शिक्षा दिलवाई थी। अपने स्वामी की कृपा से इनका नाम भी प्रसिद्धि के आकाश में ऐसा चमका, जैसे चन्द्रमा के पास का तारा चमकता है। लड़के का कोई नाम भी नहीं जानता। इन सब गुणों के अतिरिक्त मियाँ फहीम बहुत संयमी, सज्जन और सत्कृत्य करनेवाले थे। मरने के दिन तक आधी रात की और सवेरे ९ बजे की नमाज आदि (जो साधारण पाँचों नमाजों के अतिरिक्त होती हैं) नहीं छूटी। साधुओं की संगति इन्हें बहुत प्रिय थी। सैनिकों के साथ ये बिलकुल भाइयों का सा व्यवहार करते थे। खानखानाँ की सरकार के सभी काम केवल इन पर निर्भर करते थे। खूब खिलाते थे, लुटाते थे, अपना चित्त प्रसन्न करते थे और स्वामी का नाम उज्वल करते थे। युद्धों आदि में ये तलवार और तीर की तरह खानखानाँ के साथ रहते थे। मैंने अकबर के नाम लिखा हुआ खानखानाँ का एक निवेदन-पत्र देखा है। उससे पता चलता है कि सेहल की लड़ाई में यह हरावल में था और इसी ने आगे बढ़कर आक्रमण किया था। पर साथ ही स्वभाव कुछ तीखा था और दृष्टि भी बहुत अधिक ऊँची थी। जब जाओ, तब उसकी ड्योढ़ी पर कोड़ा ही चटकता हुआ सुनाई देता था।

एक दिन दाराब और शाहजहानवाले विक्रमाजीत एक ही मसनद पर बैठे हुए बातें कर रहे थे। इतने में फहीम आ गया और उन लोगों को इस प्रकार बैठे हुए देखकर आग-बबूला हो गया। उसने बहुत बिगड़ कर दाराब से कहा कि अच्छा होता कि ऐरज के बदले तू ही मर जाता। यह डाकू ब्राह्मण और बैरमखाँ के पोते के बराबर बैठे। (मआसिर उल उमरा)

अन्त मे खानखानाँ इससे कुछ अप्रसन्न हो गए थे, इसलिए इसे बीजापुर की फौजदारी पर भेज दिया था। कुछ दिनो के बाद हिसाब-किताब माँगा। हाफिज नसरउल्लाखाँ उन दिनों खानखानाँ के ऐसे दीवान थे, जिन्हे सब प्रकार के अधिकार प्राप्त थे और जो बहुत ही प्रतिष्ठित आदमी थे। वही हिसाब लेने लगे। किसी रकम के सम्बन्ध में कुछ कहा-सुनी हो गई। फहीम ने भरे दरबार मे हाफिज साहब के मुँह पर तमाचा खींच मारा और आप उठकर चला गया। पर धन्य है खानखानाँ का हौसला। वे आधी रात के समय आप गए और जाकर उसे मना लाए। (मआसिर उल् उमरा)

जिस समय महाबतखाँ ने खानखानाँ को कैद करना चाहा था, उस समय फहीम की ओर से उसे कुछ खटका था। वह सोचता था कि यह मन-चला जवान है। कहीं ऐसा न हो कि अधिक आग भड़क उठे। इसलिए उसने सोचा कि पहले मन्सब और पुरस्कार आदि का लोभ देकर इसे बुला लेना चाहिए। पर फहीम ने नहीं माना। महाबतखाँ ने बहुत-बहुत सँदेसे भेजे; और अन्त में यहाँ तक कहला भेजा कि यह सिपाहगिरी का घमंड कब तक काम देगा। तुम व्यर्थ ही अपने प्राण गँवा बैठोगे। फहीम ने कहा कि यह खानखानाँ का दाम है। इतना सस्ता भी हाथ नहीं आवेगा।

जिस समय खानखानाँ को महाबतखाँ ने बुलवाया था, उसी समय फहीम ने कह दिया था कि इससे कुछ छल-कपट जान पड़ता है। ऐसा न हो कि अप्रतिष्ठा और दुर्दशा की नौबत पहुँचे। अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित और सब प्रकार से तैयार

होकर हुजूर की सेवा मे चलना चाहिए। पर खानखानाँ ने उसकी बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया। महाबतखॉ ने खानखानाँ को नजर-बन्द करते ही फहीम के डेरे पर आदमी भेजे। उसने अपने लडके वजीरखॉ से कहा कि समय आ पहुँचा है। थोडी देर तक इन्हे रोको जिसमे मै वजू करके ईश्वर से यह प्रार्थना कर लूॅ कि वह मेरा ईमान और नीयत ठीक रखे। नमाज पढ चुकने के उपरान्त स्वयं अपने लडके और जान निछावर करनेवाले चालिस सैनिको को साथ लिए हुए तलवार हाथ मे लेकर निकला और अपने प्राणो को प्रतिष्ठा पर निछावर कर दिया। जरा सोचो कि खानखानॉ को उसके मरने का कैसा दुःख हुआ होगा। उसकी लाश भी दिल्ली भेजवाई थी, क्योकि वहॉ की मिट्टी को वह सुखद शयन का स्थान समझता था।

बागे-फतह या विजय-उपवन—खानखानाँ ने अहमदाबाद के पास, जहॉ मुजफ्फर पर विजय प्राप्त की थी, एक बाग लगाया था और उसका नाम बाग-फतह या विजय-उपवन रखा था। देखो, भारत मे आकर इतना रग बदला था। बैरमखॉ के समय तक जहाँ-जहॉ विजय होती थी, वहॉ-वहाँ कल्ला मुनार बनते थे, क्योकि ईरान और तूरान की यही प्रथा थी। पर भारत के जल-वायु ने बाग हरा-भरा किया था।

दक्षिण भारत का दौरा करते समय जहाँगीर गुजरात भी गया था। उस समय वह इस बाग मे भी गया था। वह लिखता है कि खानखानाँ ने युद्ध के स्थान पर जो बाग बनवाया, वह साबरमती नदी के किनारे पर है। भवन बहुत अच्छा और ऊँचा है और एक अच्छे तथा उपयुक्त चबूतरे के साथ बढिया बारादरी

है जिसका मुँह नदी की ओर है। सारे बाग के चारों ओर पत्थर और चूने की मजबूत दीवार खिची है। क्षेत्रफल १२० जरीब है। सैर करने की बहुत अच्छी जगह है। दो लाख रुपये खर्च हुए होंगे। मुझे बहुत पसन्द आया। ऐसा बाग सारे गुजरात में न होगा। दक्षिण के लोग इसे फतह बाड़ी कहते हैं।

अमीरी और उदारता के कृत्य

दान आदि करने के समय खानखानाँ अपने आपे में नहीं रह जाता था। उसके साहस और हौसले के आवेश फुहारे की तरह उछले पडते थे और लोगो को पुरस्कार तथा दान आदि देने के लिए बहाने ढूँढते रहते थे। इसके अमीरों के स्वभाव बल्कि बादशाहो के से मिजाज की प्रशंसा करते-करते कवियों और लेखको के मुँह सूखते हैं। विद्वानों, फकीरों और शेखों आदि सबको प्रकट रूप से भी और गुप्त रूप से भी हजारो रुपए, अशर्फियाँ और धन-सम्पत्ति देता था। कवियों और गुणियों का तो मानों माता-पिता था। जो आता था, वही आकर इनकी सरकार मे इस प्रकार उतरता था कि मानों स्वयं अपने ही घर में आया हो, और इतना अधिक धन आदि पाता था कि फिर उसे बादशाह के दरबार मे जाने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती थी। मआसिर उल् उमरा में लिखा है कि इसके समय में गुणियों की बड़ी भीड़-भाड़ रहती थी जो सुलतान हुसैन मिरजा और अमीर अली शेर के समय में होती थी। पर मैं कहता हूँ कि उन लोगो के दरबारो मे उदारता रूपी नदी की यह लहर-बहर भला कहाँ देखने में आती थी। कई कवियों को अशर्फियों से तुलवा दिया।

इसकी उदारता की बाते प्राय कहानियो और चुटकुलो के रंग और रूप मे महफिलो और जलसो मे फूल बरसाती है। मैं भी इसके गुलदस्तो से अकबरी दरबार को सजाऊँगा। कवियो ने जितने प्रशसात्मक पद्य इस के सम्बन्ध मे कहे है, उतने कदाचित् अकबर की ही प्रशसा मे कहे हो तो कहे हो। और खानखानाँ ने भी उन्हे लाखो ही रुपए पुरस्कार स्वरूप प्रदान किए थे। गुणी, पडित, कवीश्वर बल्कि भाट तक हजारो श्लोक, दोहे और कवित्त लिखकर लाते थे और हजारो रुपए ले जाते थे। पुरस्कार देने मे भी यह ऐसी नजाकत और सुन्दरता का ढग दिखला गया है कि भविष्य मे देनेवालो के हाथ काट डाले है। मुल्ला अब्दुलबाकी ने इनके सम्बन्धी की इस प्रकार की सभी सच्ची बातो को एकत्र करके एक बडी पुस्तक प्रस्तुत कर दी है और उसमे प्रत्येक कवि का हाल उसकी कविता या कसीदे आदि के साथ दिया है। और यह भी बतलाया है कि किस अवसर पर या किस उपलक्ष मे यह प्रशसात्मक कविता या कसीदा कहा गया था और उसके कर्त्ता ने क्या पुरस्कार पाया था। इससे बहुत सी फुटकर ऐतिहासिक बातो का भी पता चलता है। उस पुस्तक का नाम मआसिर रहीमी है।

खानखानाँ का दस्तरख्वान बहुत विस्तृत हुआ करता था। उसपर अनेक प्रकार के बहुत ही उत्तमोत्तम भोजन परोसे जाते थे। जिस प्रकार इनकी उदारता से सभी प्रकार के लोगो को लाभ पहुँचता था, उसी प्रकार इनका दस्तरख्वान भी सदा सभी लोगो के लिए खुला रहता। जिसकी इच्छा होती थी, वही इनके यहाँ भोजन करने के लिए चला आता था। जिस समय यह

दस्तरखान पर बैठता था, उस समय मकानों मे अपने अपने पद और मर्यादा के अनुसार सैकडो आदमी भोजन करने के लिए बैठते थे और स्वादिष्ट भोजन करते थे। प्राय खाद्य पदार्थों की रिकावियों मे कहीं कुछ रुपये और कहीं कुछ अशर्फियाँ रख देते थे। जो जिसके कौर मे आवे, वह उसके भाग्य का है। आज तक यह कहावत प्रसिद्ध है कि—"खानखानाँ जिसके खाने में बताना"।

एक वार खिदमतगारो में एक नया आदमी भरती हुआ। दस्तरख्वान सजाया गया और उसपर अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम भोजन रखे गए। जिस समय खानखानाँ आकर बैठा, उस समय सैकड़ो अमीर और बड़े-बड़े गुणी उपस्थित थे। सब लोग भोजन करने लगे। उस समय वही नया खिदमतगार खानखानाँ के सिर पर रूमाल हिला रहा था। वह अचानक रोने लगा। सब लोग चकित हो गए। खानखानाँ ने पूछा कि क्या वात है? उसने निवेदन किया कि मेरे वडे लोग भी अच्छे अमीर और उदार थे। मेरे पिता को भी आगत लोगों का आतिथ्य-सत्कार करने का बहुत अनुराग था। समय ही मुझ पर यह विपत्ति लाया है। इस समय आपका दस्तरख्वान देख कर मुझे वह समय स्मरण हो आया। खानखानाँ ने भी दु ख किया। सामने एक भुना हुआ मुर्ग रखा हुआ था। खानखानाँ की उसी पर दृष्टि जा पड़ी। उन्होंने पूछा—अच्छा बतलाओ, मुर्ग में कौन सी चीज मजे की होती है? उसने कहा—खाल। खानखानाँ ने कहा कि यह सच कहता है। यह खाने-पीने की चीजो का स्वाद जानता है। मुर्ग की खाल उतार कर पकाओ। फिर चाहे उसके पकाने मे कितना

ही घी और मसाला आदि क्यो न लगाओ, उसमे वह स्वाद और नमकीनी नही रहती। बहुत प्रसन्न हुआ और उसे अपने पास दस्तरख्वान पर बैठा लिया। उसे ढारस दिया और अपने मुसाहिबो मे सम्मिलित कर लिया।

दूसरे दिन जब दस्तरख्वान पर बैठे, तब एक और खिदमतगार रोने लगा। खानखानां ने उससे भी रोने का कारण पूछा। उसने कल जो पाठ पढा था, वही सुना दिया। खानखानाँ हँसा और एक जानवर का नाम लेकर उसने पूछा कि बताओ, इसमे क्या चीज मजे की होती है ? उसने कहा कि खाल। सब लोग उसे धिक्कारने लगे। खानखानाँ बहुत हँसा और उसे कुछ पुरस्कार देकर किसी और विभाग मे भेज दिया, क्योकि ऐसा व्यक्ति हुजूर की सेवा के योग्य नही था।

एक दिन खानखानाँ बैठे हुए सेवको की चिट्ठियो पर हस्ताक्षर कर रहे थे। किसी प्यादे की चिट्ठी पर हजार दाम की जगह हजार रुपए लिख दिए। दीवान ने निवेदन किया। कहा कि अब जो कलम से निकल गया, वह उसका भाग्य।

एक दिन नेशापुरवाले नजीरी ने कहा कि नवाब साहब, मैने लाख रुपए का ढेर कभी नही देखा कि कितना होता है। उन्होने खजानची को आज्ञा दी। उसने लाकर रुपयो का ढेर सामने लगा दिया। नजीरी ने कहा कि ईश्वर को धन्यवाद है कि आज आप की कृपा से मैने लाख रुपए देख लिए। खानखानाँ ने कहा कि इतनी सी बात के लिये ईश्वर सरीखे दानी को क्या धन्यवाद देते हो। सब रुपए उसको दे दिए और कहा कि हाँ, अब ईश्वर को धन्यवाद दो तो एक बात भी है।

एक दिन जहाँगीर बादशाह तीर चला रहा था। किसी भाट के बढ-चढ़कर व्यंग्य बोलने पर रुष्ट होकर आज्ञा दी कि इसे हाथी के पैरों के तले कुचलवा दो। भाटों की हाजिर-जवाबी उनके बढ बढकर बोलने से भी बढ़ी हुई होती है। उसने निवेदन किया कि हुज़ूर, इस तुच्छ सेवक के लिये हाथी की क्या आवश्यकता है। वह क्या करेगा। इसके लिए तो एक चूहे या चिड़े का पैर भी बहुत है। हाथी का पैर तो खानखानाँ के लिए चाहिए, जो बहुत बड़े आदमी हैं। खानखानाँ पास पी खड़ा था। जहाँगीर ने यह जानने के लिये इनकी ओर देखा कि भाट के इन शब्दो का इनके हृदय पर क्या प्रभाव पड़ा है। जहाँगीर ने पूछा—कहो क्या कहते हो ? इन्होंने कहा कि कुछ भी नहीं। दारोगा ने पूछा कि तू ही बतला दे। खानखानाँ स्वयं बोले कि हुजूर के सदके से ईश्वर ने मुझ तुच्छ व्यक्ति को ऐसा कर दिया कि यह बड़ा आदमी समझता है। मैंने उसी समय ईश्वर को धन्यवाद दिया और कहा कि जब इसका अपराध क्षमा हो, तब इसे पाँच हजार रुपए पुरस्कार दे देना। हुजूर की जान और माल को दुआ देगा।

भारतवासी यह समझते हैं कि सूर्य नित्य सन्ध्या के समय सुमेर पर्वत के पीछे चला जाता है; और सुमेर सोने का पर्वत है। इन्होंने यह भी कल्पना कर ली है कि चकवा और चकवी दिन के समय तो साथ रहते हैं और रात के समय दोनों एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। उनमें से एक नदी के इस पार रहता और दूसरा उस पार चला जाता है। इस प्रकार वे दोनों जागकर रात काटते हैं। एक भाट ने चकवा और चकवी की जबानी

एक कवित्त कहा जिसका आशय यह था कि ईश्वर करे, खानखानाँ की विजय का घोड़ा सुमेर पर्वत तक जा पहुँचे। वह बहुत बड़ा दानी है। वह सारा सुमेरु पर्वत दान कर देगा। उसके उपरान्त फिर सदा दिन ही दिन रहा करेगा। हम लोग आनन्द करेंगे। कभी हम लोगों का वियोग नहीं होगा। जिस समय यह कवित्त पढ़ा गया, उस समय दरबार में उपस्थित सभी लोगों ने उसकी बहुत प्रशंसा की। कहा कि यह बिलकुल नई कल्पना है। खानखानाँ ने पूछा कि पंडित जी, तुम्हारी उमर क्या है? उसने निवेदन किया पैंतिस बरस। उसकी सारी आयु सौ बरस की लगाई गई और पाँच रुपये रोज के हिसाब से पैंसठ बरस का जो कुछ हुआ, वह सब जोड़कर खजाने से उसे दिलवा दिया।

एक भूखा ब्राह्मण खानखानाँ के द्वार पर आया। दरबान ने उसे रोका। उसने कहा कि जाकर अपने स्वामी से कह दो कि तुम्हारा साँढ़ू तुमसे मिलने के लिए आया है, और उसकी स्त्री अर्थात् तुम्हारी साली भी उसके साथ है। दरबान ने ज्यों का त्यों जाकर निवेदन कर दिया। खानखानाँ ने उसे बुलाकर अपने पास बैठाया और पूछा कि हमारा तुम्हारा किस प्रकार का सम्बन्ध है? उसने कहा कि विपत्ति और सम्पत्ति ये दोनों बहनें हैं। पहली मेरे घर में है और दूसरी आप के घर में। इस प्रकार आप और हम साँढ़ू नहीं तो और क्या हैं? नवाब ने बहुत प्रसन्न होकर उसे खिलअत पहनाई और खासे के घोड़े पर सुनहला साज सजवाकर उसे सवार कराया और बहुत कुछ धन-सम्पत्ति तथा सामग्री आदि देकर बिदा किया।

खानखानाँ एक दिन दरबार में बैठा था। आस-पास छोटे-

वड़े निवेदन करनेवाले, माँगनेवाले आदि सभी प्रकार के लोग बैठे हुए थे। एक दरिद्र भी फटे पुराने वस्त्र पहने हुए वहाँ आ बैठा। ज्यों-ज्यों उसे स्थान मिलता गया, त्यों-त्यों वह आगे बढ़ता गया। जब वह खानखानाँ के बहुत पास पहुँच गया, तब उसने बगल में से तोप का एक गोला निकाल कर लुढ़काया जो खान-खानाँ के घुटने के साथ आ लगा। नौकर उसकी ओर बढ़े। खानखानाँ ने उन्हें रोका और आज्ञा दी कि इस गोले के बराबर सोना तौल दो। मुसाहबों ने पूछा यह क्यों? उसने कहा कि यह कवि के इस शेर की सत्यता की परीक्षा करता है—

آهن که بپارس آشنا شد - فی‌الحال به صورت طلا شد-

अर्थात्—जब लोहे का पारस पत्थर के साथ स्पर्श होता है, तब वह लोहा भी तुरन्त सोना हो जाता है।

एक बार खानखानाँ बादशाह के दरबार से विदा होकर बुरहानपुर की ओर चले। पहले ही पड़ाव पर डेरे पड़े थे। सन्ध्या के समय सरा-परदा के सामने शामियाना लगा हुआ था और फर्श बिछा हुआ था। खानखानाँ बाहर निकल कर कुरसी पर बैठे। मुसाहब और नौकर लोग भी अपने-अपने स्थान पर बैठे थे और दरबार लगा हुआ था। इतने में एक स्वतन्त्र प्रकृति का दरिद्र मनुष्य सामने से निकला और पुकार-पुकार कर यह शेर पढ़ता हुआ चला—

منعم بکوه و دشت و بیابان غریب نیست-
هر جا که رفت و خیمه زد و بارگاه ساخت -

अर्थात्—मुनइम (धन-सम्पन्न) व्यक्ति के लिए पहाड़, जंगल

और उजाड स्थान मे भी किसी बात की कमी नहीं रहती। वह जहाँ जाता है, वहीं खेमा खडा कर लेता है और बारगाह बना लेता है।

इन्हे भी मुनइम खाँ की उपाधि मिल चुकी थी और इनसे पहलेवाले मुनइम खाँ मितव्ययी थे। इन्होने अपने खजानची को आज्ञा दी कि इसे एक लाख रुपए दे दो। वह भिक्षुक बहुत आशीर्वाद देता हुआ धन लेकर चला गया। दूसरे पडाव पर वे फिर उसी प्रकार बाहर निकल कर बैठे। वही फकीर फिर सामने से निकला और उसने वही शेर पढा। उन्होने फिर कह दिया कि इसे लाख रुपए दे दो। इस प्रकार वह सात दिन तक बराबर आता रहा और नित्य लाख रुपए ले जाता था। फिर आप ही उसने अपने मन मे सोचा कि ऐसा दान और पुरस्कार मैंने आज तक किसी दूसरे से नहीं पाया। यह अमीर है। ईश्वर जाने इसका ध्यान किसी समय किसी दूसरी ओर हो और यह बिगड कर कह बैठे कि इसका सारा धन छीन लो। इसलिए अधिक लोभ करना अच्छा नहीं है। जो कुछ मिल गया, इसी को बहुत समझना चाहिए। आठवें दिन खानखानाँ फिर उसी प्रकार निकल कर बैठे। फकीर के आने का जो समय था, उससे अधिक समय बीत गया। पर फिर भी इन्होने दरबार बरखास्त नहीं किया। जब बिलकुल मन्द्या हो गई, तब कहने लगे कि आज वह हमारा फकीर नहीं आया। बुरहानपुर से आगरे तक सत्ताइस पडाव है। हमने तो पहले ही दिन खजाने से सत्ताइस लाख रुपए अलग करा दिए थे। पर वह फकीर सकीर्ण-हृदय था। ईश्वर जाने उसने अपने मन मे क्या समझा।

खानखानाँ बहुत अधिक सुन्दर और रूपवान था। उसके

गुण आदि सुनकर एक स्त्री को उसके प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। वह भी बहुत सुन्दरी थी। उसने अपना एक चित्र बनवाया और वह चित्र एक बुढिया के हाथ खानखानाँ के पास भेजा। वह बुढ़िया एकान्त मे आकर खानाखानाँ से मिली और उसने अपना अभिप्राय इस प्रकार प्रकट किया कि यह एक बेगम का चित्र है। इन्होंने आप के पास यह सँदेसा भेजा है कि आपकी प्रशंसाएँ सुनकर मेरा चित्त बहुत अधिक प्रसन्न होता है। मेरी कामना यह है कि मेरे यहाँ भी आपके ही समान एक पुत्र उत्पन्न हो। आप बादशाह की आँखें हैं, जवान हैं, भुजा हैं और बल हैं। इसलिये यह बात कुछ भी कठिन नहीं है। खानखानाँ ने कुछ सोचकर कहा कि माई, तुम मेरी ओर से उनसे कहना कि यह बात तो कुछ भी कठिन नहीं है। पर कठिनता यह है कि ईश्वर जाने सन्तान हो या न हो। यदि हो भी तो कौन कह सकता है कि लडका ही हो और वह भी जीवित रहे। फिर ईश्वर जाने, वह मेरे समान रूपवान् और सुन्दर भी हो या न हो। यदि मान लो कि वह सुन्दर भी हो, तो भला प्रताप पर किसका अधिकार है ? यदि ईश्वर चाहे तो दे और न चाहे तो न दे। यदि उन्हे मेरे ही समान पुत्र प्राप्त करने की कामना है, तो उनसे कहना कि तुम माता हुई और मैं तुम्हारा पुत्र हुआ। ईश्वर को धन्यवाद दो जिसने ऐसा पाला-पोसा हुआ लड़का तुम्हें दिया। मैं जितने रुपए प्रति मास अपनी माता को भेजा करता हूँ, उतने ही रुपए प्रति मास तुम्हें भी भेजा करूँगा।

एक व्यक्ति ने खानखानाँ के पास आकर नीचे लिखे दो शेर (किता) लिखकर उन्हें दिए—

اے خان جہاں خانخاناں -
دارم صنمے که رشک چیں است -
گرجاں طلبد مضایقه نیست -
زرمے طلبد سخن دریں است -

अर्थात्—हे सारे संसार के खान खानखानाँ, मेरी एक ऐसी प्रेमिका है जिसे देख कर बड़ी-बड़ी सुन्दरियाँ ईर्ष्या करती हैं। यदि तुम मुझसे मेरे प्राण माँगो तो कोई हानि नहीं है। पर यदि तुम धन माँगो तो इसमे मुझे आपत्ति होगी।

खानखानाँ ने पूछा कि वह क्या माँगते हैं? कहा गया कि एक लाख रुपए। आज्ञा दी कि सवा लाख रुपए दे दो।

एक दिन खानखानाँ की सवारी चली जा रही थी। एक बहुत ही दरिद्र आदमी ने एक शीशी मे एक बूँद पानी डाल कर दिखलाया और वह शीशी झुकाई। जब उसमे से पानी गिरने को हुआ, तब उसने शीशी को सीधा कर दिया। उसके रूप-रंग से जान पड़ता था कि वह किसी अच्छे कुल का आदमी है। खानखानाँ उसे अपने साथ ले आए और उसे बहुत कुछ पुरस्कार आदि देकर विदा किया। लोगो ने पूछा कि यह क्या? खानखानाँ ने कहा कि तुम लोगो ने समझा नहीं। उसका अभिप्राय यह था कि एक बूँद प्रतिष्ठा ही किसी प्रकार बची हुई है, और अब यह भी गिरना ही चाहती है।

एक दिन सवारी मे किसी ने खानखानाँ पर ढेला खींच मारा। सिपाही दौड़ कर उसे पकड़ लाए। इन्होने कहा कि इसे हजार रुपए दे दो। सब लोग चकित हुए। कुछ लोगो ने

निवेदन किया कि जो अयोग्य आदमी गाली देने के योग्य भी न हो, उसे इतना पुरस्कार देना आपका ही काम है। खानखानाँ ने कहा कि लोग फले हुए वृक्ष पर पत्थर मारते हैं। इसने मुझे पत्थर मारा है। इसलिये जो मेरा फल है, वह इसे देना उचित है।

एक दिन सवारी से उतर रहे थे। एक बुढ़िया पास आ खड़ी हुई। उसकी बगल में एक तवा था। वही तवा निकाल कर वह इनके शरीर के साथ मलने लगी। नौकर हाँ-हाँ करके दौड़े। खानखानाँ ने सबको रोका और आज्ञा दी कि इसी तवे के बराबर इसे सोना तौल दो। जब मुसाहबों ने कारण पूछा, तो कहा कि यह बुढ़िया यह देखना चाहती थी कि बड़े लोग जो यह कहा करते थे कि बादशाह और उनके अमीर लोग पारस हुआ करते हैं, उनका वह कहना ठीक है या नहीं; और अब भी वैसे लोग हैं, या कोई नहीं रह गया।

खानखानाँ दरबार की ओर जा रहे थे। एक सवार सैनिकों के से सब हथियार लगा कर सामने आया और सलाम करके खड़ा हो गया। इन्होंने उससे हाल पूछा। उसने कहा कि मैं नौकरी करना चाहता हूँ। उसमें बाँकपन यह था कि उसने अपनी पगड़ी मे दो कीलें भी बाँध रखी थीं। खानखानाँ ने पूछा कि ये दोनों कीलें तुमने क्यों बाँध रखी हैं? उसने निवेदन किया कि इनमें से एक कील तो उस आदमी के वास्ते है जो नौकर रखे और वेतन न दे, और दूसरी उस नौकर के वास्ते है जो वेतन तो ले, पर काम करने में जी चुरावे। खानखानाँ ने उसका वेतन नियत कर दिया और अपने साथ ले लिया। वह भी उनके साथ

दरबार मे गया। सब लोग उसके बाँकपन का ढग देखने लगे। खानखानाँ ने उससे पूछा कि मनुष्य की आयु बहुत से बहुत कितनी हो सकती है? उसने कहा कि प्रकृति की ओर से मनुष्य की आयु १२० बरस की होती है। खानखानाँ ने खजानची को आज्ञा दी की इसकी उमर भर का वेतन चुका दो, और उस सिपाही से कहा कि लीजिए हजरत, एक कील का बोझ तो आप अपने सिर से उतार दीजिए। अब दूसरी कील का आप-को अधिकार है।

एक दिन खानखानाँ दरबार जा रहे थे। एक चित्रकार ने कोई चित्र लाकर भेट किया। उस चित्र मे यह दिखलाया गया था कि एक बहुत ही सुन्दरी स्त्री नहा कर उठी है और कुरसी पर बैठी है। एक ओर को झुकी हुई सिर के बाल फटकार रही है। दासी उसके पैर धो रही है और झाँवें मे रगड रही है। खानखानाँ वह चित्र देखते हुए दरबार चले गए। वहाँ से लौट कर आने पर आज्ञा दी कि उस चित्रकार को बुलाओ और उसे पाँच हजार रुपए पुरस्कार दो। चित्रकार ने निवेदन किया कि यह सेवक पुरस्कार तो तभी लेगा, जब हुजूर यह बतला दे कि इस चित्र मे कौन सी ऐसी प्रशसा के योग्य बात है जिसके कारण मुझे यह पुरस्कार दिया जा रहा है। सब मुसाहबो का ध्यान उसी ओर आकृष्ट हो गया। खानखानाँ ने सब लोगो से कहा कि इस चित्र मे इस सुन्दरी के होठो पर जो मुस्कराहट है और इसके चेहरे का जो भाव है, वह आप लोगो ने देखा? सब लोगो ने कहा कि जी हाँ, देखा, बहुत अच्छा और बहुत सुन्दर है। खानखानाँ ने कहा कि इसका

कारण जानना हो तो इसके पैरों की ओर देखो। वहाँ गुदगुदियाँ हो रही हैं। ऐसे कोमल भाव पर पाँच हजार रुपया क्या चीज है, पाँच लाख भी थोड़ा है। चित्रकार ने कहा कि बस हुजूर, मैंने अपना पुरस्कार पा लिया। और अब मैं सदा के लिये आपका दास हो गया। मैं यह चित्र लेकर सभी अमीरों के यहाँ हो आया। परन्तु किसी ने इसका यह मर्म नहीं जाना। हम लोग तो केवल गुण-ग्राहक के दास हैं।

जब मुजफ्फर पर विजय प्राप्त करके खानखानाँ लौटे, तब वे बादशाह के लिये खान्देश, दक्खिन और फिरंग देश के अनेक अद्भुत तथा बहुमूल्य पदार्थ उपहार-स्वरूप लाए थे। उनमें से एक विलक्षण उपहार के रूप में इन्होंने गुजरात के राजा रायसिंह झाला को भी बादशाह की सेवा में उपस्थित किया। पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह युवावस्था में बरात लेकर अपना विवाह करने गया था। जब वहाँ से आनन्द के बाजे बजाता हुआ लौटा, तब अपने चचेरे भाई और कच्छ के राजा जस्सा के देश से होकर जा रहा था। जब जस्सा राजा के महलों के पास बारात पहुँची, तब वहाँ से सँदेसा आया कि या तो यहाँ नगाड़े मत बजाओ और या दूर दूर रहकर निकल जाओ। और यदि वीर हो तो तलवार निकालो और लड़ो। यद्यपि युद्ध की कोई सामग्री साथ नहीं थी, पर फिर भी दूल्हा रायसिंह ने लड़ना ही निश्चित किया। वह जिस स्थान पर था, वहीं तलवार खींच कर खड़ा हो गया। जस्सा भी चट अपनी सेना लेकर निकल आया। बहुत अधिक मार-काट और रक्त-पात हुआ। इस लड़ाई में जस्सा शीघ्र ही युद्ध-क्षेत्र से निकल कर परलोक चला

गया। उसका छोटा भाई राव साहब आया, पर वह भी थोड़ी देर मे अपने भाई के पास पहुँच गया। राजपूतो मे यह प्रथा है कि जब आवेश मे आते है, तब तलवारे सौत कर कूद पड़ते है। वे सोचते है कि कही ऐसा न हो कि घोडा अपने वश मे न रहे और हमे लेकर भागे। या अपनी रान के नीचे घोड़ा देखकर अपनी ही नीयत बिगड जाय और हम अपने प्राण लेकर युद्ध-क्षेत्र से भाग खड़े हो। इस युद्ध मे दोनो ओर के वीर इसी प्रकार अपने प्राण हथेली पर लेकर और घोडे से कूदकर युद्ध-क्षेत्र मे उतर पड़े थे। इस प्रकार दूल्हा और उसके साथी विजयी होकर मूँछो पर ताव देते हुए अपने अपने घोड़ो पर चढ़े। पराजित सैनिको के जो प्यादे घोड़े लिए हुए खडे थे, उन्हे भी आवेश आ गया। उन्होने भी घोडो को छोडकर तलवारे ले ली। अब फिर लडाई होने लगी। ऐसा भारी रण पडा कि दूल्हा घायल होकर गिर पडा। किसी को किसी की खबर न रही। किसी ने किसी को न पहचाना कि किसकी लाश कहाँ है। दूल्हा बहुत घायल हुआ था और उसकी केवल साँस ही साँस बच रही थी। रात के समय कोई जोगी उधर से आया। वह इन्हे उठाकर अपनी मढ़ी मे ले गया। वहाँ उसने इनकी मरहम-पट्टी की। ईश्वर ने इनके प्राण बचा दिए। यह परम कृतज्ञ व्यक्ति उसी साधु का शिष्य हो गया और उन्नीस बरस तक उसकी सेवा करता रहा और उसके साथ-साथ जगलो मे घूमता रहा। घर के सब लोगो ने यही समझ लिया था कि यह युद्ध-क्षेत्र मे वीर गति को प्राप्त हुआ। कई रानियाँ सती हो गई। परन्तु दुलहिन रानी अपने सतीत्व के भरोसे उसके ध्यान मे मग्न रहती थी और ईश्वर को स्मरण करती

थी। उसे कभी इस बात का विश्वास ही न होता था कि मेरा पति मर गया है। खानखानाँ अमीरों की अपेक्षा फकीरों और त्यागियों आदि के कहीं अधिक मित्र और साथी थे। इनकी सरकार मे अमीर, फकीर और योगी सभी बराबर थे। कहीं खानखानाँ को उन योगी जी के भी दर्शन हुए और उनसे इनका सारा हाल मालूम हुआ। इसलिये वे गुरु और चेले दोनों को अपने साथ लेकर दरबार मे उपस्थित हुए थे। अकबर को भी इस प्रकार की बातों से बहुत अधिक अनुराग रहता था। यह विलक्षण और अद्भुत घटना सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। यह अवधूत चेला फिर राजा रायसिंह बनकर बहुत सम्मान और प्रतिष्ठापूर्वक अपने राज्य की ओर चला। जब वहाँ पहुँचा, तब सम्बन्धी और सेवक आदि एकत्र हुए और उन लोगों ने इन्हें देखकर पहचाना। सब लोगों ने बहुत आनन्द मनाया। और सबसे अधिक आनन्द उस रानी ने मनाया जो मारे लज्जा के अपने मुँह से कुछ भी नहीं कह सकती थी और जो अब तक अपने स्वामी का स्मरण करती हुई बैठी थी। देखो रसम का सत तो मार चुका था, पर प्रेम का सत काम कर गया। राजा ने अपना राज्य सँभाला और राजा के शुभचिन्तकों ने ईश्वर को धन्यवाद देने के साथ ही साथ खान-खानाँ को भी बहुत अधिक धन्यवाद दिया।

कवित्व शक्ति

यह उच्च विचारोंवाला अमीर मानवी गुणों का एक सन्दूक ही था। ऐसी श्रेष्ठ और उत्तम आत्माएँ उपरवाले लोक से इस मिट्टीवाले लोक मे बहुत ही कम आती हैं, जिनमें सभी प्रकार के

गुण और सभी प्रकार की योग्यताएँ हो। यद्यपि इसका मस्तिष्क कविता पर मरने-मिटनेवाला नहीं था, पर फिर भी यह कभी हो ही नहीं सकता कि फूल अपना रंग न दिखलावे या अपनी सुगन्धि न फैलावे। उसके हृदय का कमल भी कभी तो स्वयं अपने ही शौक से और कभी बादशाह या मित्रों के कहने से कविता रूपी वायु से खिलता था। या तो इसे कवियों की तरह सिर-पच्ची करने का अवकाश न मिलता होगा या उतना अधिक शौक ही न होगा कि अपनी रचनाओं के दीवान आदि प्रस्तुत करता। इसकी एक फारसी गजल, कुछ फुटकर शेर और रुबाइयाँ मेरे देखने में आई है जो हफ्त अकलीम, तजकिरै पुर-जोश और तुजुक जहाँगीरी आदि में दी है। वह कविताएँ भी अपने कोमल और सूक्ष्म भावों के कारण फूलों का तुर्रा हो रही है।

(इसके आगे आजाद साहब ने खानखानाँ की फारसी की एक गजल और कुछ फुटकर कविताएँ उद्धृत की हैं जो यहाँ छोड़ दी गई हैं। खानखानाँ को हिन्दी कविताओं का जो अनुराग था और हिन्दी में उन्होंने जो कुछ कविताएँ की हैं, उनसे आजाद साहब परिचित नहीं है, पर हिन्दीवाले उनसे बहुत भली भाँति परिचित है। इनकी दोहावली या सतसई, बरवै नायिका-भेद, शृंगार सोरठ, मदनाष्टक आदि अनेक ग्रन्थ प्रसिद्ध है और रहीम-रत्नावली के नाम से इनकी समस्त हिन्दी रचनाओं का एक संग्रह प्रकाशित भी हो चुका है। हिन्दी के ये बहुत उच्च कोटि के कवि थे। —अनुवादक)

॥ समाप्त ॥

सूर्यकुमारी पुस्तक-माला

---
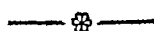
(१) ज्ञान-योग

पहला खंड

सूर्यकुमारी पुस्तकमाला का पहला ग्रंथ स्वामी विवेकानंदजी के ज्ञानयोग संबंधी व्याख्यानों का संग्रह है। इसमें स्वामीजी के निम्नलिखित १६ व्याख्यान हैं—(१) धर्म्म की आवश्यकता, (२) मनुष्य की वास्तविक प्रकृति, (३) माया और भ्रम, (४) माया और ईश्वर की भावना, (५) माया और मोक्ष, (६) पूर्ण ब्रह्म और अभिव्यक्ति, (७) ईश्वर सर्वमें है, (८) साक्षात्कार, (९) भेद में अभेद, (१०) आत्मा की स्वतंत्रता, (११) सृष्टि [स्थूल जगत्], (१२) अंतर्जगत् वा अंतरात्मा, (१३) अमृतत्व, (१४) आत्मा, (१५) आत्मा, उसका बंधन और मोक्ष, (१६) दृश्य और वास्तव ब्रह्म। पृष्ठसंख्या ३७१, सुन्दर रेशमी जिल्द, मूल्य २॥) । इस समय यह अप्राप्य है। अब इसका नया संस्करण होनेवाला है।

(२) करुणा

यह प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता स्व० श्रीयुक्त राखालदास बन्द्योपाध्याय के ऐतिहासिक उपन्यास का अनुवाद है। इसमें दिखलाया गया है कि किसी समय गुप्त-साम्राज्य कैसा वैभवशाली था और अंत में किस प्रकार उसका नाश हुआ। इस पुस्तक में आपको गुप्त-कालीन भारत का बहुत

अच्छा सामाजिक तथा राजनीतिक चित्र मिलेगा। आप समझ सकेंगे कि यहा का वैभव किस प्रकार एक ओर बर्वर हूणो के बाहरी आक्रमण तथा दूसरी ओर वैदिक धर्म्म मे द्वेष रखनेवाले बौद्धो के आतरिक आक्रमण के कारण नष्ट हुआ। बढ़िया एंटिक कागज और रेशमी कपडे की सुनहरी जिल्द, पृष्ठ-सख्या सवा छ सौ के लगभग। मूल्य ३॥)। अब घटाकर ३) कर दिया गया है।

(३) शशांक

यह भी उक्त राखाल बाबू का ऐतिहासिक उपन्यास है। गुप्त साम्राज्य के ह्रास-काल से इसका सबध है। इसमे सातवी शताब्दी के आरभ के भारत का जीता-जागता सामाजिक और ऐतिहासिक चित्र दिया गया है। जिन लोगो ने 'करुणा' को पढा है, उनसे इस सबध मे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। पर जिन लोगो ने उसे नहीं देखा है, उनसे हम यही कहना चाहते है कि इन दोनों उपन्यासो के जोड के ऐतिहासिक उपन्यास आपको और कहीं न मिलेंगे। मूल्य ३)। पर इस समय घटाकर २) कर दिया गया है।

(४) बुद्ध-चरित्र

यह ॲगरेजी के प्रसिद्ध कवि सर एडविन आर्नल्ड के "लाइट आफ एशिया" के आधार पर स्वतत्र ललित काव्य है। यद्यपि इसका ढग एक स्वतत्र हिंदी काव्य के रूप पर है, किन्तु साथ ही मूल पुस्तक के भावो को स्पष्ट किया गया है। प्राय शब्द भी वही रखे गए है जो बौद्ध शास्त्रो मे व्यवहृत होते है। कविता बहुत ही मधुर सरस और प्रसाद-गुणमयी है जिसे पढते ही चित्त प्रसन्न हो जाता है। छप्पन पृष्ठो की भूमिका में काव्य-भाषा पर बडी मार्मिकता से विचार किया है। दो रगीन और चार सादे चित्र भी दिए गए है जिनमे दो सहस्र वर्ष

पहले के दृश्य हैं। एंटिक कागज और कपड़े की सुनहरी जिल्द, पृष्ठ-संख्या लगभग तीन सौ। मूल्य केवल २॥), इस समय यह अप्राप्य है। इसका नया संस्करण निकलनेवाला है।

(५) ज्ञान-योग

दूसरा खंड

यह स्वामी विवेकानंदजी के ज्ञान-योग संबंधी व्याख्यानों का, जो स्वामी जी ने समय समय पर युरोप और अमेरिका में दिए थे, संग्रह है। इसमें कर्म वेदांत की मीमांसा करते हुए बतलाया गया है कि विश्वव्यापी धर्म का आदर्श, उसकी प्राप्ति का मार्ग और सुख का मार्ग क्या है, आत्मा और परमात्मा का क्या स्वरूप है, विश्व का क्या विधान है, धर्म्म का लक्षण क्या है, आदि आदि। जो लोग वेदांत का रहस्य जानना चाहते हों, उनके लिये यह ग्रंथ बहुत ही उपयोगी है। वेदांत दर्शन के प्रेमियों और स्वामीजी के भक्तों को इस ग्रंथ का अवश्य संग्रह करना चाहिए। पृष्ठ-संख्या ३२६ के लगभग, मूल्य २॥)।

(६) मुद्रा-शास्त्र

हिंदी में मुद्रा-शास्त्र संबंधी यह पहला और अपूर्व ग्रंथ है। मुद्रा-शास्त्र के अनेक विदेशी विद्वानों के अच्छे अच्छे ग्रंथों का अध्ययन करके यह लिखा गया है। मुद्रा का स्वरूप, उसके विकास की रीति, उसके प्रचार के सिद्धान्त, उत्तम मुद्रा के कार्य्य, मुद्रा के लक्षण और गुण, राशि-सिद्धांत, उसके विकास की कथा, क्रय-शक्ति पर उसके प्रभाव, मूल्य संबंधी सिद्धांत, मूल्य-सूची और उसका उपयोग, द्विधातवीय मुद्रा-विधि का स्वरूप आदि का इसमें विस्तृत विवेचन है। मुद्रा-शास्त्र की सभी बातें इसमें बतलाई गई हैं। विद्या-प्रेमियों को इस नए विज्ञान से

परिचित होना चाहिए। पृष्ठ-संख्या ३२५ के लगभग, मूल्य २॥) । पर इस समय घटाकर २) कर दिया गया है।

(७) अकबरी दरबार

पहला भाग

उर्दू फारसी आदि के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय शम्सुल उल्मा मौलाना मुहम्मद हुसैन साहब आजाद कृत 'दरबारे अकबरी' का यह अनुवाद है। इसमें बादशाह अकबर की जीवनी विस्तार के साथ देकर बतलाया गया है कि उसने कैसे कैसे युद्ध किए, किस प्रकार राज्य-व्यवस्था की, और उसका धार्मिक विश्वास आदि कैसा था। इससे उसके दरबार के वैभव का परिचय हो जाता है। प्रत्येक साहित्य-प्रेमी के काम की पुस्तक है। पृष्ठ-संख्या चार सौ से ऊपर, मूल्य २॥)।

(८) पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास

विषय नाम से ही प्रकट है। इसमें लेखक ने पाश्चात्य दर्शन-शास्त्र की आलोचना करके बतलाया है कि किस सिद्धान्त को किस दार्शनिक ने कब स्थापित किया। वहाँ के दर्शन-शास्त्रियों की मुख्य शाखा-प्रशाखाओं का विवेचन पढ़ लेने से पाठक को उनका ज्ञान हो जाता है। एंटिक कागज, पृष्ठ-संख्या पौने पाँच सौ, अच्छी जिल्द, मूल्य २॥) इस समय घटा कर २) कर दिया गया है।

(९) हिन्दू राज्यतन्त्र

पहला खंड

इसके मूल लेखक श्रीयुक्त काशीप्रसाद जायसवाल, एम० ए०, बार-एट-ला हैं। इस ग्रंथ में लेखक ने वेद, वेदांग और पुराण आदि के

प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि भारतीय आर्यों में वैदिक समितियों की, गणों की और एकराज तथा साम्राज्य-शासन-प्रणालियाँ मौजूद थीं। इस पुस्तक ने उन सब विदेशी आक्षेपों का खडन कर दिया है जो भारतीय शासन-प्रणालियों का अस्तित्व स्वीकृत नहीं होने देते थे। अपने ढग की विचित्र पुस्तक है। देश-विदेश में सर्वत्र इस ग्रथ की प्रशसा हो रही है। एंटिक कागज, पृष्ठ-सख्या ४००, सुन्दर जिल्द। मूल्य सिर्फ ३॥) ।

(१०) अकबरी दरबार

दूसरा भाग

जिन्होंने इस दरबार का प्रथम भाग देखा है, उनको इसका परिचय देने की आवश्यकता नहीं। इसमें मुगल बादशाह अकबर के प्रसिद्ध दरबारियों की जीवनियाँ और खास खास घटनाओं का वर्णन है। स्वर्गीय शम्सुल् उल्मा मौलाना मुहम्मद हुसेन साहब आजाद इसके मूल लेखक हैं। पृ० स० सवा पाँच सौ से ऊपर। मूल्य ३॥)

(११) कर्मवाद और जन्मान्तर

इसके मूल-लेखक प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् बाबू हीरेन्द्रनाथ दत्त, एम० ए०, बी० एल्०, वेदान्तरत्न हैं। इस पुस्तक का वङ्ग-भाषा-भाषियों में खासा आदर है। इसमें लेखक ने भारतीय और पाश्चात्य सभी प्रामाणिक ग्रन्थों से प्रमाण देकर हिन्दू सिद्धान्तों का प्रतिपादन 'थियासफी' के ढग पर किया है। इसके पढने से कर्म के सम्बन्ध की बहुत सी बातें मालूम होंगी और जन्मान्तर होने के विलक्षण उदाहरण देखने को मिलेंगे। पुस्तक अपने ढग की बिलकुल नई है। पृष्ठ-सख्या पौने चार सौ से ऊपर। मूल्य केवल २॥) दो रुपये आठ आने।

(१२) हिन्दी साहित्य का इतिहास

इसका विषय नाम से ही प्रकट है। इसमें पूर्व काल से लेकर आधुनिक काल तक के कवियों तथा लेखकों का परिचय और उनकी कृतियों के सुन्दर उदाहरण तो हैं ही, किन्तु लेखक ने विशेष काम किया है समय की प्रवृत्ति का पता लगाकर विचारधारा के विकास को व्यक्त करने में। यह संग्रह-ग्रन्थ नहीं, इतिहास है और अपने ढंग का बिलकुल पहला ग्रन्थ है। इसका तीसरा संस्करण अभी हाल ही में छपकर तैयार हुआ है। पृष्ठ-संख्या ५५७ + ४६ + १८। सजिल्द पुस्तक का मूल्य सिर्फ ४) चार रुपये।

(१३) हिन्दी-रसगंगाधर

प्रथम भाग

यह संस्कृत के उद्भट विद्वान जगन्नाथ पण्डितराज के ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तर है। संस्कृत के जानकारों को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि 'रसगंगाधर' संस्कृत साहित्य का एक अत्यन्त प्रामाणिक लक्षण ग्रन्थ है। अलंकार संबंधी स्वतन्त्र आलोचनाओं से भरा हुआ इतना पाण्डित्य-पूर्ण ग्रन्थ संस्कृत में इसके सिवा दूसरा नहीं है। इसी ग्रन्थरत्न का यह हिन्दी रूपान्तर है। इसमें उदाहरण के मूल श्लोक तो हैं ही, उनका हिन्दी रूपान्तर भी छन्दोबद्ध ही है। इस भाग में काव्य का लक्षण, काव्यों के भेद, ध्वनिकाव्य के भेद, रस का स्वरूप और तत्संबंधी भिन्न-भिन्न मतों का निरूपण तथा स्वमत-प्रस्थापन, स्थायी भाव, रसों के भेद, रस नौ ही क्यों हैं, रसों का परस्पर विरोध और अविरोध, रसवर्णन में दोष, गुण सम्बन्धी भिन्न-भिन्न मतों का निरूपण, भाव का लक्षण तथा उसके उदाहरण, रसाभास इत्यादि अत्यन्त महत्वपूर्ण विषयों का बड़े विस्तार के साथ मार्मिक वर्णन

किया गया है। कविता-प्रेमियों को इस ग्रन्थ की एक प्रति अपने संग्रह में अवश्य रखनी चाहिए। पृष्ठ-संख्या सवा चार सौ। मूल्य सिर्फ ३॥) तीन रुपया आठ आना।

(१४) हिन्दी की गद्य-शैली का विकास

इस पुस्तक में हिन्दी गद्य का विकास क्रम दिखलाया गया है और आरम्भ से लेकर अब तक के प्रायः सभी प्रधान गद्य लेखकों के चित्र देकर उनकी शैली की मार्मिक समीक्षा की गई है। इसके भूमिका-लेखक हैं पण्डित रामचन्द्र शुक्ल। पुस्तक हिन्दी की ऊँची परीक्षाओं की पाठ्य-पुस्तक है और इसका दूसरा संस्करण भी अब समाप्त-प्राय है। पृ० सं० २०० से ऊपर। छपाई जिल्द आदि उत्तम। मूल्य केवल २)

मिलने का पता—

...री-प्रचारिणी-सभा, काशी।